श्री भगवती सूत्र भाग-२

शतक-१३ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशक हक्त जिनमें चार उद्देशकों में स क्षिप्त सूचन मात्र है, शेष ६ उद्देशकों में अनेक प्रकीर्ण विषयों का आकलन है। शतक के प्रार भ में उद्देशक नाम-विषय सूचक एक स ग्रहणी गाथा है, उसके अनुसार उद्देशक नाम एव विषय इस प्रकार हक्त-

(१) पृथ्वी- ७ नरक के नरकावासों में उत्पन्न होते समय में, मरते समय में एव स्थान स्थित यों तीनों अवस्था के जीवों में स ख्या, लेश्या आदि १४ द्वारों के ३९ बोलों की विचारणा की गई है ।

(२) देव- चार जाति के देवों की तीनों अवस्था में ३९ बोलों की विचारणा है ।

(३) अन तर- आहार, शरीर निष्पति आदि क्रम का वर्णन भलावण युक्त है ।

(४) पृथ्वी- नरकावासों के विस्तार, दिशा-विदिशा, लोकमध्य, प चास्तिकाय की स्पर्शना, अवगाहना आदि अनेक विषय हक्त ।

(५) आहार- नैरयिकों के आहार स ब धी **स क्षिप्त** पाठ है ।

(६) उपपात- जीवों की सा तर निर तर उत्पत्ति, चमरेन्द्र का आवास, उदायन राजा और अभिचिकुमार का वृत्ता त इत्यादि विषय है ।

(७) भाषा- भाषा, मन, काया स ब धी अनेक विचारणाएँ तथा पाँच प्रकार के मरण का विस्तृत वर्णन है ।

(८) कर्म- कर्मब ध स्थिति का स क्षिप्त सूचन है ।

(९) अणगार- विकुर्वणा क्षमता स ब धी वर्णन है ।

(१०) समुद्घात- छाद्मस्थिक समुद्घात स ब धी स क्षिप्त सूचन है ।

प्रश्न-२ : नरकावासों एव देवावासों में जन्म समय, मृत्यु समय और स्थान स्थित जीवों में लेश्या आदि बोल किस प्रकार पाये जाते हक्त ?

उत्तर- प्रस्तुत प्रथम उद्देशक में इन तीनों अवस्था वाले जीवों की १४ द्वार एव ३९ बोलों से विचारणा की गई है वे इस प्रकार हक्त- (१) स ख्या (२) लेश्या (३) पक्ष-२ (४) स ज्ञा-४ (५) सन्नी-२ (६) भवी-२ (७) ज्ञान-३ (८) अज्ञान-३ (९) दर्शन-३ (१०) वेद-३ (११) कषाय-४ (१२) इन्द्रिय नोइन्द्रिय-६ (१३) योग-३ (१४) उपयोग-२=३९ ।

(१) स ख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में उत्कृष्ट स ख्यात जीव उत्पन्न होते हक्त, उत्कृष्ट स ख्यात जीव मरते हक्त एव जघन्य-उत्कृष्ट स ख्यात जीव वहाँ शाश्वत मिलते हक्त । अस ख्य योजन विस्तार वाले नरकावासों में उत्कृष्ट अस ख्याता जीव उत्पन्न होते हक्त एव उत्कृष्ट अस ख्य जीव ही मरते हक्त और जघन्य-उत्कृष्ट शाश्वत अस ख्य जीव वहाँ रहते हक्त ।

इसी प्रकार सात नरक, भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी एव आठवें देवलोक तक समझना । आगे के देवलोकों में स ख्याता योजन के विस्तार वाले विमानों में और अस ख्यात योजन के विस्तार वाले विमानों में उत्कृष्ट स ख्याता ही जन्मे एव मरे; वहाँ उत्कृष्ट भी अस ख्य नहीं कहना । वहाँ रहने की अपेक्षा स ख्यात योजन वालों में स ख्यात और अस ख्य योजन वालों में अस ख्य जीव पाये जाते हक्त ।

(२) लेश्या- देवता-नारकी के जन्म मृत्यु और स्थान स्थित तीनों अवस्था में कोई भी एक ही लेश्या होती है ऐसा अनुत्तर विमान तक जानना। एक लेश्या भी अपने स्थान की जो निश्चित्त है वही होती है।

(३) पक्ष- सात नरक एव नवग्रैवेयक तक के देव कृष्णपक्षी एव शुक्लपक्षी दोनों होते हक्त । पाँच अनुत्तर विमान में एक शुक्लपक्षी होते हक्त । तीनों अवस्थाओं में ऐसा ही समझना ।

(४) स ज्ञा- नारकी देवता सभी में चारों स ज्ञा तीनों अवस्था में है ।

(५) सन्नी- पहली नारकी और भवनपति व्य तर में **जन्म समय** में

सन्नी-असन्नि दोनों । शेष नारकी देवों में सन्नी ही होते हक्त । **मृत्यु समय** में भवनपति से दूसरे देवलोक तक सन्नी-असन्नि दोनों (पृथ्वी,पानी वनस्पति में जाने की अपेक्षा) शेष सभी देवलोक एव सातों नरक में सन्नी । स्थान स्थित में- पहली नरक एव भवनपति, व्य तर में असन्नि की भजना(होवे भी, नहीं भी होवे) । शेष नरक देवता में असन्नि नहीं होवे । सन्नी की सभी नारकी देव के स्थान स्थित में नियमा ।

(६) भवी- नवग्रैवेयक तक सभी में तीनों अवस्था में भवी अभवी दोनों । अणुत्तर विमान में मात्र भवी; अभवी नहीं होवे ।

(७) ज्ञान- १,२,३ नरक एव वैमानिक देवों में सर्वत्र अणुत्तर विमान तक तीन ज्ञान तीनों अवस्था में होवे । चौथी, पाँचवीं, छट्ठी नरक में एव भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी में जन्मते समय ३ ज्ञान, मरते समय २ ज्ञान और स्थान स्थित में ३ ज्ञान । सातवीं नरक में जन्मते-मरते समय ज्ञान नहीं होवे एव स्थान स्थित में ३ ज्ञान होवे ।

(८) अज्ञान- अणुत्तर विमान में अज्ञान नहीं होवे, तीनों अवस्था में । **प्रथम नरक** में जन्मते समय विभ गज्ञान भजना से(असन्नि की अपेक्षा) २ अज्ञान नियमा । मरते समय दो अज्ञान नियमा । स्थान स्थित में सभी जीवों की अपेक्षा विभ गज्ञान सहित तीनों अज्ञान नियमा । इसी तरह भवनपति व्य तर में कहना । शेष ६ नरक एव ज्योतिषी, वैमानिक देवों में नव ग्रैवेयक तक मरते समय २ अज्ञान होवे । शेष दोनों अवस्था में ३ अज्ञान होवे ।

(९) दर्शन- जन्मते-मरते समय चक्षुदर्शन नहीं होवे । मरते समय चौथी से सातवीं नरक तथा भवनपति से दूसरे देवलोक तक अवधिदर्शन नहीं होवे । तीन नरक (१, २, ३) एव तीसरे देवलोक से लेकर उपर के देवों में मरते समय अवधिदर्शन होवे । **स्थानस्थित** में सभी में ३ दर्शन नियमा होवे ।

(१०) वेद- नरक में दो वेद नहीं । देवों में दूसरे देवलोक तक दो वेद, आगे एक वेद । ऐसा तीनों ही अवस्था में समझना ।

(११) कषाय- सर्वत्र ४ कषाय होते हक्त । नारकी के स्थान स्थित

में क्रोध कषायी की नियमा, शेष तीन कषाय की भजना । देवों में स्थान स्थित में लोभ कषाय की नियमा, शेष तीन कषाय की भजना ।

(१२) इन्द्रिय- जन्मते मरते इन्द्रिय नहीं(द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा) । स्थान स्थित में पाँचों इन्द्रिय नियमा मिले । जन्मते मरते समय अनिन्द्रिय है। स्थान स्थित में अनिन्द्रिय भजना(इन्द्रिय अपर्याप्ता तक की अपेक्षा) ।

(१३) योग- जन्मते-मरते दो योग नहीं । काय योग मात्र है । स्थान स्थित में तीन योग होवे ।

(१४) उपयोग- सर्वत्र दोनों उपयोग होवे तीनों अवस्था में ।

प्रश्न-३ : अन तरोत्पन्नक आदि १० बोल कौन से हक्त और उनका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- वे दस बोल इस प्रकार है- (१) अन तरोत्पन्नक=आयुष्य का प्रथम समय । (२) अन तरावगाढ=क्षेत्र में पहुँचने का प्रथम समय । (३) अन तराहारक=आहार का प्रथम समय । (४) अन तर पर्याप्त= पर्याप्त होने का प्रथम समय। (५-८) पर परोत्पन्नक आदि चारों द्वितीय आदि समय वाले । (९) चरम=वापिस वहाँ नहीं जन्मने वाले, निकट में मोक्षगामी । (१०) अचरम=उस स्थान में पुनः जन्मने वाले ।

इन दस में से प्रथम के चार बोल नारकी देवता में अशाश्वत है । अत: भजना से पावे । पर पर के चार बोल शाश्वत है अत: नियमा पावे। चरम, नारकी देवता सभी में होवे। अचरम, सर्वार्थसिद्ध विमान में नहीं होवे, शेष सर्वत्र होवे । स्थान स्थित नारकी, देवता में ३९+ये १० = ४९ कुल बोलों का निरूपण है । जन्मने-मरने में इन दस की विवक्षा नहीं की गई है ।

प्रश्न-४ : दृष्टि और लेश्या के स ब ध में देव-नारकी के लिये यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- यहाँ प्रथम एव द्वितीय उद्देशक में ३९+१० बोलों के निरूपण के बाद दृष्टि स ब धी स्वत त्र निरूपण इस प्रकार है- नरक-१ से ६ तक जन्म एव मरण समय में दृष्टि-२, मिश्रदृष्टि नहीं होती । सातवीं नरक में जन्म-मरण समय में एक मिथ्यादृष्टि ही होती है । स्थान

स्थित में सातों नरक में तीन दृष्टि होती है, दो दृष्टि शाश्वत और मिश्रदृष्टि अशाश्वत होती है ।

देवों में ग्रैवेयक तक जन्म–मरण समय में दो दृष्टि, मिश्रदृष्टि नहीं होती । स्थान स्थित में **तीनों दृष्टि** होती है । पाँच अणुत्तर विमान में एक सम्यग्दृष्टि ही होती है, **दो दृष्टि** कभी भी होती ही नहीं है ।

लेश्या– छहों लेश्या वाले मनुष्य और तिर्यंच कापोत आदि किसी भी लेश्या वाले नरक में उत्पन्न हो सकते हक्त । इसका कारण स क्लिश्य मान या विशुद्धचमान परिणामों से लेश्या परिवर्तित होकर जहाँ जाना हो उसके योग्य लेश्या में मरण होता है तदनुसार नरक या देव में उस लेश्या में जीव जाता है । फिर नारकी देवता में जन्म–मरण और स्थान स्थित तीनों अवस्था में एक ही (द्रव्य) लेश्या रहती है । पुन: मरकर मनुष्य–तिर्यंच में जाने पर अ तर्मुहूर्त के बाद वह द्रव्य लेश्या शुभ या अशुभ किसी भी लेश्या में परिवर्तित हो सकती है ।

प्रश्न–५ : उपयोग स ब धी गतागत २४ द डक की किस प्रकार है ?

उत्तर– उपरोक्त नरक देव स ब धी वर्णन में तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन स ब धी निरूपण है उसी का स्वत त्र स कलन करके उपयोग की गतागत कही जाती है । मनुष्य तिर्यंच के स ब ध में यहाँ वर्णन नहीं है तो भी अन्य आगम वर्णनाधार से उसे जोडकर चारों गति के जीवों स ब धी उपयोग का थोकडा प्रसिद्ध है, यथा–

(१) प्रथम तीन नरक में– ८–७(८७) अर्थात् आठ उपयोग की आगत सात उपयोग की गत । प्रथम नरक में उत्पन्न होने वाले कोई तीन ज्ञान दो दर्शन लेकर जन्मते हक्त कोई तीन अज्ञान दो दर्शन लेकर जन्मते हक्त और कोई दो अज्ञान एक दर्शन(अचक्षु)लेकर जन्मते हक्त कुल मिलाकर प्रथम नरक में आने वालों में ८ उपयोग में से कोई भी हो सकता है– ३ ज्ञान+३ अज्ञान+२ दर्शन ।

प्रथम नरक की गत अर्थात् अन्य गति में जाते समय कुल ७ उपयोग हो सकते हक्त– ३ ज्ञान+२ अज्ञान+२ दर्शन ।

नरक से निकलने वाला कोई भी जीव विभ गज्ञान साथ नहीं

ले जाता है और चक्षुदर्शन तो वाटे वहेता में होता ही नहीं है । अवधि दर्शन तो अवधिज्ञान लेकर निकलने वाले तीर्थंकर आदि के साथ होता ही है । इसी तरह आगे भी स्पष्टीकरण समझ लेना ।

(२) चौथी से छट्ठी तक नरक में– ८–५(८५) अर्थात् आठ उपयोग लेकर आवे, पाँच उपयोग लेकर निकले । ८=पूर्ववत् । ५= दो ज्ञान+ २ अज्ञान+१ दर्शन(अचक्षु) ।

(३) सातवीं नरक में– ५–३(५३) अर्थात् पाँच उपयोग लेकर आवे, तीन उपयोग लेकर निकले । ५=तीन अज्ञान+२ दर्शन । ३=२ अज्ञान+१ दर्शन ।

(४) भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी में– ८–५(८५) अर्थात् आठ उपयोग लेकर आवे ५ उपयोग लेकर निकले, चौथी नरकवत् ।

(५) पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक में– ८–७(८७) अर्थात् आठ उपयोग लेकर आवे और सात उपयोग लेकर निकले । खुलासा प्रथम नरक के समान ।

(६) अनुत्तर विमान में– ५–५(५५) अर्थात् तीन ज्ञान+दो दर्शन लेकर ही आवे और निकले ।

(७) पाँच स्थावर में– ३–३(३३) अर्थात् दो अज्ञान+१ दर्शन=३ उपयोग लेकर ही आवे और ३ उपयोग लेकर ही निकले ।

(८) तीन विकलेन्द्रिय और असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय में– ५–३(५३) अर्थात् ज्ञान+२ अज्ञान+१ दर्शन लेकर आवे और २ अज्ञान+१ दर्शन लेकर निकले ।

(९) सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय में– ५–८(५८) अर्थात् २+२+१ लेकर आवे तथा ३+३+२ लेकर निकले ।

(१०) मनुष्य में– ७–८(७८) अर्थात् ३+२+२ लेकर आवे और ३+ ३+२ लेकर निकले ।

यह गतागत ८ उपयोग की है क्यों कि (१) केवलज्ञान (२) केवलदर्शन, (३) मन:पर्यवज्ञान और (४) चक्षुदर्शन, ये चार उपयोगों की २४ द डक में गतागत नहीं होती है; स्थान स्थित में ही ये चारों

होते हक्त । सिद्धों का कथन किया जाय तो २ उपयोग की आगत कही जा सकती है । उसमें केवलज्ञान केवलदर्शन लेकर जीव सिद्ध बनता है । पहले दूसरे उद्देशक में मिलकर यह उपयोग स ब धी स कलन पूर्ण होता है, जिसमें मनुष्य-तिर्यंच स ब धी उपयोगों का अन्यत्र से स कलन किया गया है ॥ उद्देशक-१,२ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-३ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-६ : लोक मध्य और तीनों लोक के मध्य कहाँ है ?

उत्तर- (१) **चौदह राजुप्रमाण लोक का मध्य-** पहली नरक के नीचे जो आकाशा तर आता है उसमें अस ख्यातवें भाग के अस ख्य योजन जाने पर लोकमध्य आता है । (२) **अधोलोक का मध्य-** चौथी नरक के नीचे के आकाशा तर में करीब आधा जाने पर आता है । (३) **तिरछा लोक का मध्य-** मेढ पर्वत के बीच समभूमि पर आने वाले दो क्षुल्लक प्रतरों के आठ ढचक प्रदेश तिरछालोक का मध्य है । वहीं से १० दिशाएँ निकलती है।अत: वह स्थल दिशाओं का भी मध्य केन्द्र है । (४) **ऊँचालोक का मध्य-** पाँचवें देवलोक के तीसरे रिष्ट पाथडे में है, वहीं तमस्काय की उपरी सतह है ।

दिशाओं का आकार स स्थान- ४ दिशाएँ, सगडुद्धि स स्थान-गाडी के जूए (धूँसर)के समान है । ४ विदिशाएँ छिन्न मुक्तावली स स्थान वाली है । ऊँची-नीची दिशा चारप्रदेशी होने से ढचक स स्थान वाली है । १४ राजु लोक सबसे कम चौडा **तिरछालोक के क्षुल्लक प्रतर में है ।** उत्कृष्ट चौडा सातवीं नरक के आकाशा तर में है । मध्यम चौडाई वाला विस्तृत पाँचवें देवलोक में है । क्षेत्रफल की अपेक्षा तिरछालोक सबसे अल्प है, उर्ध्वलोक उससे अस ख्यगुणा है और अधोलोक उससे विशेषाधिक है ।

प्रश्न-७ : प चास्तिकाय के गुण क्या है और छ द्रव्यों के साथ उसकी स्पर्शना किस प्रकार है ?

उत्तर- प चास्तिकाय के गुण- (१) जीवों का गमनागमन, भाषा, उन्मेष, योगप्रवृत्ति आदि जितने भी चल भाव हक्त वे धर्मास्तिकाय के द्वारा होते हक्त । (२) जीव ों का स्थित रहना, बैठना, सोना, मन का एकाग्र होना आदि जितने भी स्थिर भाव हक्त वे अधर्मास्तिकाय के

आधार से हक्त । (३) आकाशास्तिकाय का गुण जगह देने का है एक आकाश प्रदेश में एक परमाणु रह सकता है, उसी में १०० या १००० परमाणु आ जाय तो भी समाविष्ट हो जाते हैक्त । एक साथ अनेक पुद्गल वर्गणाएँ आकाश में रहती है । एक ही आकाश क्षेत्र में अन त सिद्ध भगवान के आत्म प्रदेश रह सकते हक्त । (४) जीवास्तिकाय में ज्ञान दर्शन का उपयोग होना यह गुण है । चेतना भी इसका लक्षण है । (५) पुद्गलास्तिकाय का 'ग्रहण' गुण है उससे पाँच शरीर, पाँच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोश्वास आदि विभिन्न रूप में पुद्गल ग्रहण होते रहते हक्त ।

अस्तिकाय स्पर्श- एक धर्मास्तिकाय का प्रदेश लोक मध्य में है तो अन्य ६ धर्मास्तिकाय के प्रदेशों का स्पर्श करता है; लोका त में है तो ३-४ या ५ का । लोक मध्य में अधर्मास्तिकाय के ७ प्रदेश का, आकाशास्तिकाय के ७ प्रदेश का स्पर्श करता है । जीवास्तिकाय के अन त प्रदेशों का एव पुद्गलास्तिकाय के भी अन त प्रदेशों का स्पर्श करता है । काल द्रव्य से कहीं स्पृष्ट है, कहीं नहीं है । जहाँ है वहाँ अन त काल से स्पृष्ट है ।

अलोकाकाश में कोई अस्तिकाय नहीं है केवल आकाश है वह किसी से भी स्पृष्ट नहीं है ।

लोक के किनारे पर सभी अन्य अस्तिकाय आकाश के सात प्रदेश ही स्पर्श करती है ३-४ आदि नहीं । क्यों कि लोक अलोक दोनों में ही आकाश तो है ही ।

प्रश्न-८ : द्वि प्रदेशी पुद्गल स्क ध की जघन्य उत्कृष्ट स्पर्शना क्या है ?

उत्तर- दो प्रदेशी स्क ध जघन्य-६ (लोक के किनारे) उत्कृष्ट-१२ (लोक के बीच) प्रदेश का स्पर्श करता है ।

तीन प्रदेशी स्क ध जघन्य आठ उत्कृष्ट १७ प्रदेश का स्पर्श करता है । चार प्रदेशी जघन्य १० उत्कृष्ट २२ प्रदेशों का स्पर्श करता है । प्रत्येक अगले प्रदेशी स्क ध में पूर्व स्क ध की अपेक्षा जघन्य स्पर्श में २ प्रदेश अधिक करना चाहिये, उत्कृष्ट स्पर्श में ५ बोल बढाना चाहिये । यथा-

प्रदेश स ख्या	जघन्य स्पर्श	उत्कृष्ट स्पर्श
पाँच प्रदेशी	१२	२७
छ प्रदेशी	१४	३२
सात प्रदेशी	१६	३७
आठ प्रदेशी	१८	४२
नौ प्रदेशी	२०	४७
दस प्रदेशी	२२	५२

सरल नियम– जितने प्रदेशी स्क ध है उसके दुगुणे से दो अधिक करने पर जघन्य स्पर्श निकल जाते हैक्त । पाँच गुणे से दो अधिक करने पर उत्कृष्ट स्पर्श निकल जाते हक्त । यही नियम स ख्यात अस ख्यात अन त प्रदेशी तक समझना ।

इन अस्तिकायों के प्रदेश परस्पर समझने में यह ध्यान रखना कि १. लोका त में जघन्य स्पर्श होंगे बीच में उत्कृष्ट स्पर्श होंगे २. अलोक में आकाश मात्र है ३. काल ढाई द्वीप में ही है, ४. जीव, पुद्गल और काल जहाँ है वहाँ जघन्य भी अन त प्रदेश है । धर्मास्ति-काय, अधर्मास्तिकाय, जीव और पुद्गल स पूर्ण लोक में है ।

प्रश्न–९ : प चास्तिकायों के प्रदेशों की और स पूर्ण की परस्पर अवगाढता किस प्रकार है ?

उत्तर– सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय–अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय के अस ख्य प्रदेश स्पर्श करती है शेष तीन के अन त प्रदेश स्पर्श करती है स्वय का स्पर्श नहीं कहना । इसी तरह अन्य पाँचों का समझ लेना।

अस्तिकाय अवगाढ– पहले स्पर्श का कथन किया गया है अब अवगाढ का वर्णन किया जाता है ।(१) स्वय का स्वय में अवगाहन नहीं कहना (२) धर्मास्तिकाय आदि के एकप्रदेश में अन्य दो का एक–एक प्रदेश अवगाढ कहना (३) शेष तीन के अन तप्रदेश अवगाढ कहना ।

पुद्गल– जितने प्रदेशी स्क ध है इसमें उत्कृष्ट उतने ही प्रदेश अवगाढ कहना, जघन्य एक प्रदेश अवगाढ कहना ।

सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय में– अधर्मास्तिकाय के अस ख्य, आकाशास्तिकाय

के अस ख्य प्रदेश अवगाढ है । तीन अस्तिकाय के अन त प्रदेश अवगाढ है । स्वय को अवगाढ नहीं कहना । इसी प्रकार छहों स पूर्ण अस्तिकायों का कथन कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–१० : एक आकाशप्रदेश पर पृथ्वी आदि के कितने जीव अवगाढ रहे हुए हैं और धर्मास्तिकाय पर जीव किस तरह रहे हुए हैं ?

उत्तर– सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा एक आकाश प्रदेश पर अस ख्य पृथ्वीकाय के जीव रहे हुए(अवगाढ) होते हक्त । उसी तरह अप्काय, तेउकाय, वायुकाय के जीव भी अस ख्य होते हक्त और वनस्पति के जीव प्रत्येक आकाशप्रदेश पर अन त होते हैं । धर्मास्तिकाय आदि पर जीव बैठ–सो नहीं सकते किंतु उसमें अन त जीव रहे हुए होते हक्त । अ धकार, प्रकाश, हवा आदि रूपी पदार्थ है तो भी उन पर जीव बैठना–सोना आदि नहीं कर सकते हक्त तो धर्मास्तिकाय आदि तो अरूपी अस्तित्व वाले हक्त । अतः उन पर सोना आदि क्रियाएँ शक्य नहीं है । बैठना–सोना आदि क्रियाएँ मात्र रूपी स्थूल पुद्गल पर ही हो सकती है ।

॥ उद्देशक–४ स पूर्ण ॥ उद्देशक–५ स क्षिप्त ॥

प्रश्न–११ : चमरेन्द्र का चमरच च उत्पात पर्वत और चमरच च आवास अलग–अलग है ?

उत्तर– ज बूद्वीप से अस ख्यातवें अढणोदक समुद्र में ४२ हजार योजन जाने पर चमरच च उत्पात पर्वत है । वहाँ से ६,५५,३५,५०,००० योजन दक्षिण में जाने पर चमरच चा राजधानी का मार्ग है और इस मार्ग से दक्षिण–पश्चिम में ६,५५,३५,५०,००० योजन जाने पर चमरच चा नामक आवास है जो असुरकुमारों के घूमने फिरने, सैर–सपाटा करने हेतु बगीचे–उद्यानवत् है । (निवास के लिये उनके लाखों भवन है जो समभूमि से ४० हजार योजन नीचे हक्त ।)

प्रश्न–१२ : भगवती सूत्र में भगवान महावीर स्वामी के श्रावक दो उदायन राजाओं का वर्णन है वे अलग–अलग है क्या ?

उत्तर– शतक–१२–१३ में आये दोनों उदायन राजा अलग–अलग है वह इस प्रकार समझें–

	शतक-१२ का उदायन	शतक-१३ का उदायन
नगरी	कौशा बी नगरी	वीतिभयनगर, सि धुसौवीर १६ देश का अधिपति
राणी	वर्णन नहीं	प्रभावती देवी
माता	मृगावती (चेडाराजा की पुत्री)	वर्णन नहीं
भुआ	जय ति श्रमणोपासिका	वर्णन नहीं
पुत्र	वर्णन नहीं	अभिचिकुमार
भाणेज	वर्णन नहीं	केशिकुमार
गति	वर्णन नहीं(कथा में है)	मोक्ष
पिता	शतानीक	वर्णन नहीं
दादा	सहस्रानीक	वर्णन नहीं
समय	भगवान महावीर का	भगवान महावीर का

इस तरह आगम वर्णन अनुसार दोनों एक ही नाम वाले समकालीन राजा थे एव भगवान महावीर स्वामी के परम श्रद्धालु श्रावक थे ।

प्रश्न-१३ : अपने पारिवारिक व्यक्ति की कोई प्रवृत्ति से उत्पन्न र जभाव=वैमनस्य को नहीं मिटाने में धार्मिक नुकशान क्या है?

उत्तर- किसी भी एक या अनेक व्यक्ति से रखा गया र जभाव वैमनस्य, अनमनापन व्यक्ति की धर्म आराधना को विनष्ट-विफल बनाता है । क्यों कि एक वर्ष के बाद भी इस प्रकार का रखा गया वैमनस्य अन तानुब धी कषाय में समाविष्ट होता है, जो मिथ्यात्व मूलक होता है । ऐसे दीर्घ कषाय वालों की समकित नष्ट हो जाती है । उनका किया गया व्रत, महाव्रत, स लेखना, स थारा आदि का आचरण भी सफल नहीं होता है।

प्रस्तुत कथानक से भी यही बोध मिलता है । जैन कहे जाने वाले और अपने को श्रावक साधु की कोटी में मानने वाले अनेक

साधक पक्खी, चौमासी, स वत्सरी कितनी ही बीत जाय, उपरी खमत खामणा कर लेते हुए भी एक स प्रदाय-स घ के साधु-श्रावक दूसरे स घ-स प्रदाय से वैरझेर, मन-मुटाव, ईर्ष्या-द्वेष, तिरस्कारभाव आदि को किंचित् भी नहीं मिटाते हुए उल्टा बढाते ही जाते हक्त । उसी प्रकार कई स सारी लोग भी अपने भाई, परिवार, पडोसी आदि के वैर-झेर को मिटा कर समन्वय करते ही नहीं है और अन्य लोगों से या प्रतिक्रमण में जोर-जोर से और पत्रिकाओं के माध्यम से दिखावे के खमत-खामणा करते हक्त तथा अपने श्रावक-सम्यग्दृष्टि या साधु होने का स तोष करते हक्त । पर तु वास्तव में ऐसे साधक अपनी आत्मा को ***'अन तानुब धी कषाय के वशीभूत होकर एव सच्चे अर्थ में मिथ्यात्व दशा में अनुगमन करते हुए'*** धोखा देते हक्त । ऐसे साधकों में समकित भी मूल में नहीं रहती हक्त। पढें- यह अभिचिकुमार का जीवन...

घटना ऐसी बनी थी कि उदायन राजा भगवान के उपदेश से विरक्त बने । पुत्र को राज्य देकर दीक्षा लेने का विचार भगवान के समक्ष रखकर घर गये । फिर विचार आया कि "पुत्र भी राज्य में फँस जायेगा तो नरकगामी बनेगा । अत: उसे राज्य नहीं देकर भाणेज केशिकुमार, जो उसके पास ही बडा हुआ था, शिक्षित और योग्य बना था, उसे राज्य पर आसीन करना चाहिये ।" इन विचारों के दृढ हो जाने पर उदायन ने वैसा ही किया और दीक्षा लेकर आराधना करके मोक्ष भी चले गये ।

उस समय तो पुत्र अभिचिकुमार शर्म से कुछ बोल नहीं सका । किंतु समय जाने पर उसे पिता के इस कृत्य पर बहुत ही र जभाव बढने लगा । वह अब वहाँ रह भी नहीं सकता था । आखिर अपना परिवार लेकर वह चल दिया और राजा कोणिक के पास च पानगरी में आकर रहने लगा । भगवान महावीर का पदार्पण च पा में होता ही था । वह व्रतधारी श्रमणोपासक बना । अनेक वर्ष तक श्रावकव्रत तथा तप-त्याग बढाते हुए अ त में विधि सहित स लेखना स थारा किया । बाह्यरूप से सबसे खमत खामणा की औपचारिकता तो स थारे की विधि में, पच्चक्खाण के पाठ में आ ही जाती है । शुद्ध भावों से शारीरिक समाधिपूर्वक १५ दिन स थारा चला ।

इतना सब कुछ करते हुए भी उस श्रावक ने अपने पिता के द्वारा किये गये व्यवहार के प्रति वैमनस्य भावों को हृदय से नहीं निकाला। श्रावक के किसी व्रत में या स थारे में कोई भी दोष सेवन नहीं किया तो भी उसकी गति मिथ्यात्वी की गति हुई । वह मर कर **आतापा** नामक असुर जाति के देवों में उत्पन्न हुआ । उसकी करणी (क्रिया) अनुसार तो वैमानिक देव में ही उसकी गति होनी चाहिये थी किंतु पिता के प्रति र जभाव-मनमुटाव को दूर नहीं किया तो उसकी समस्त दिखने वाली आराधनाएँ विराधना रूप ही बनी ।

इसलिये धर्म की आराधना के इच्छुक साधक को अपने मन में किसी के प्रति भी र जभाव अनमनापन नहीं रखकर, सरल, स्वच्छ, नम्र व्यवहार बना लेना चाहिये । पर तु अनमना, अबोला कायम रखना या वैर विरोधभाव बढाते ही रहना, भले चौमासी प्रतिक्रमण करलो या स वत्सरी प्रतिक्रमण, अपने मन का रागद्वेष का ढर्रा ज्यों का त्यों चलाते रहना, एक स प्रदाय के श्रावक दूसरी स प्रदाय के श्रावक, साधु, स घ आदि से जलन, ईर्ष्या बढाते जाय, उनके मिथ्यात्व का अ त भी नहीं आ सकता है तो फिर समकित, श्रावकपन और साधुपन तो दुर्लभ ही समझना चाहिये ।

इसी हेतु से जिनशासन में व्रत शुद्धि और कषाय मुक्ति के लिये साधुओं के उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक रखा गया है और व्रतधारी श्रावकों के पाक्षिक प्रतिक्रमण आवश्यक है एव धर्मी सामान्य श्रावकों के स वत्सरी प्रतिक्रमण आवश्यक है । यह तीनों कोटी के साधकों के लिये प्रतिक्रमण पूर्ण सावधानी और सफल हेतुपूर्वक होने चाहिये । अन्यथा प्रतिक्रमण तो यथासमय कर लेवे पर तु भावों की पवित्रता नहीं करे और कषायों के ढर्रे ज्यों के त्यों आत्मा में रखे तो प्रतिक्रमण का सच्चा फल मिल नहीं सकता एव समकित भी रह नहीं सकती ।

साधु के स ज्वलन कषाय को ठाणा गसूत्र में पानी की लकीर की उपमा दी गई है । उसका कषाय सुबह शाम के प्रतिक्रमण के आगे चल नहीं सकता और चलावे तो साधुपन रहता नहीं है । श्रावक के कषाय को बालु रेत की लकीर की उपमा दी गई है । वह

लकीर १५ दिन से ज्यादा नहीं रहती है, हवा चलने से, लोगों के आवागमन से समाप्त हो ही जाती है । उसी तरह श्रावक का कषाय-किसी के प्रति र जभाव, वैर-विरोधभाव पाक्षिक प्रतिक्रमण से आगे नहीं चल सकता । कोई चलावे तो उसका गुणस्थान छूट जाता है ।

इसीतरह सम्यग्दृष्टि का कषाय र जभाव आदि स वत्सरी प्रतिक्रमण के बाद नहीं चल सकते । जो लोग वर्षों तक भी किसी के साथ र जभाव, वैमनस्य, वैर-झेर नहीं छोडते; धर्मस घों में भी ऐसे झगडे, वैमनस्य चलते रहते हैं तो उसमें समाविष्ट होने वाले सभी साधु-साध्वियाँ एव गृहस्थ अपनी समकित से, चौथे गुणस्थान से च्युत हो जाते हक्त। भले ही वे अपने को कुछ भी समझे या स तोष माने पर तु यह कषाय के परिणाम वाला सिद्धा त तो अपना काम करता ही है । भगवान महावीर स्वामी की हाजरी में, उनका १२ व्रतधारी श्रावक १५ दिन के स थारे से काल करके भी धर्म से अनुत्तीर्ण-नापास हो जाता है । यह इस अभिचिकुमार के आगम वर्णन से स्पष्ट होता है ।

सार यही है कि सरलता, नम्रता, क्षमा आदि गुण धर्म में मौलिक गुण है । इन्हें धारण करते हुए किसी के प्रति भी वैमनस्य बन जाय तो उसे कर्म सिद्धा त, वैराग्य तथा उपरोक्त आगम वर्णन को स्मृति में लेकर शुद्ध पवित्र हृदयी बन जाना चाहिये । **'सभी को माफ करते चलो और अपना हृदय साफ रखते चलो'** यही ज्ञान का और साधनाओं का परम रस है, मुक्ति की साधना में सफल सहायक पोइ ट-तत्त्व है । मन में किसी के प्रति **खटक** रख ली तो अपनी धर्म आराधना **अटक** जायेगी, ढक जायेगी, यह ध्रुव सत्य है ।

प्रश्न-१४ : अभिचिकुमार विराधक हुआ तो भी देव बना और एक भव करके मोक्ष कैसे जायेगा ?

उत्तर- कक्षा में एक लडका पास होता है, एक नापास होता है; फिर भी नौकरी-व्यापार में कोई भी आगे बढ सकता है किंतु नापास वाला नापास ही कहलायेगा । अभिचिकुमार का स सार सीमित था, पापानुब धी रौद्र परिणाम थे नहीं । माया-प्रप च के भाव थे नहीं, अतः नरक, तिर्यंच गति में नहीं गया । फिर भी व्रत-प्रत्याख्यान,

स थारा आदि श्रेष्ठ साधनाएँ होते हुए भी वह धर्म की परीक्षा में नापास होने वाली गति में गया, पास नहीं कहलाया ।

प्रश्न-१५ : तीर्थंकर भगवान ने अभिचिकुमार को श्रावक बनाया तब यह बात नहीं समझाई ?

उत्तर- छद्मस्थों का व्यवहार पुढषार्थ प्रधान होता है, सर्वज्ञों का या विशिष्ट ज्ञानियों का व्यवहार ज्ञानप्रधान होता है । भगवान ने कोणिक-चेडा राजा को या दोनों इन्द्रों को भी स ग्राम नहीं करने हेतु कोई आदेश नहीं दिया । गौशालक को भी शिष्य बनाकर अपने साथ रखा था । जो स्वय बाद में झूठा ही २४ वाँ तीर्थंकर बन गया था । इत्यादि कितनी ही घटनाएँ होनी होती है, उसमें ज्ञानी ज्ञाता दृष्टाभाव रखते हक्त । वे सागरवर ग भीरा होते हक्त, तभी उनका ज्ञान स्थिर रहता है । उनके आचरण में हम छद्मस्थों का तर्क कोई अर्थ नहीं रखता है ।

अत: उदायन राजा और अभिचिकुमार को भगवान ने कोई आदेश-निर्देश नहीं किया था ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१६ : मन, वचन और काया को आत्मा के साथ स ब धित करके क्या निरूपण किया गया है?

उत्तर- प्रस्तुत सातवें उद्देशक में इस विषयक अनेक प्रश्नोंतरों द्वारा समझाया गया है कि- मन और भाषा के पुद्गल ग्रहण करके उसी समय छोड दिये जाते हक्त, ज्यादा समय उनका आत्मा के साथ अस्तित्व नहीं रहता है । अत: मन और भाषा को आत्मा से भिन्न कहा गया है । काया-आत्मा के साथ दीर्घ समय तक रहती है, काया के स्पर्श एव छेदन का ज्ञान एव अनुभव आत्मा को होता है किन्तु उसके विनाश में आत्मा का विनाश नहीं होता है । इस कारण काया को आत्मा और आत्मा से भिन्न दोनों माना गया है ।

मन और भाषा रूपी है अचित है, मन और भाषा के प्रयोग के समय ही मन और भाषा है पहले पीछे मन-भाषा नहीं है । एव उसी समय उन का भेदन होता है पहले या बाद में नहीं । ये दोनों जीवों के ही होते हक्त । अजीवों के नहीं ।

कार्मण काया अति सूक्ष्म होने से काया अरूपी रूपी दोनों

कही गई है । सचित्त अचित्त दोनों प्रकार काया के हक्त जीवित और मृत शरीर की अपेक्षा । जीवों के भी काया है, अजीवों के भी अपना अस्तित्व अवगाहना रूप काया है । पहले-पीछे भी काया है, पहले पीछे भी इसका भेदन होता है ।

इस प्रकार यहाँ मन वचन की अपेक्षा काया का स्वरूप कुछ अलग ही बताया गया है ।

मन और वचन के सत्य आदि चार-चार भेद हक्त और काया के औदारिक आदि सात भेद हक्त ।

प्रश्न-१७ : मरण के कितने भेद-प्रभेद किये गये हक्त ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक-७ में मरण के अपेक्षा विशेष से मौलिक पाँच भेद कहे हक्त और उसके भेदानुभेद कुल-७४ कहे हक्त ।

पाँच मरण- (१) आवीचिमरण (२) अवधिमरण (३) आत्य तिक मरण (४) बालमरण (५) प डितमरण । इनमें से प्रथम तीन मरण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये पाँच भेद हक्त और पाँचों को चारों गति से स ब धित करने पर ५ X ४ = २० भेद तीनों मरण के होने से कुल २०X३= ६० भेद होते हक्त । बालमरण के १२ और प डित मरण के दो भेद यहाँ कहे हैं, भक्तप्रत्याख्यान और पादपोपगमन। यों कुल पाँचों मरण के भेद २०+२०+२०+१२+२=७४ भेद यहाँ के वर्णन की अपेक्षा होतेहक्त। इन मरणों की परिभाषा स्वरूप के लिये समवायांग प्रश्नोत्तर पृष्ट-२५७ प्रश्न-१३ देखें तथा स्थानांग स्थान-२, उद्देशक-४, पृष्ट-३१ प्रश्न-८ देखें अर्थात् जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-२ में देखना चाहिये । ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-८ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-१८ : भावितात्मा अणगार के वैक्रिय स ब धी वर्णन का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- शतक-३, उद्देशक-५ में और यहाँ दोनों जगह वैक्रिय लब्धि स पन्न भावितात्मा अणगार की वैक्रिय क्षमता दर्शायी गई है । प्रस्तुत उद्देशक-९ के वर्णन का आशय यह है कि वह अणगार, मनुष्य पशु पक्षी के रूप बनाना और आकाश में गमन करना आदि क्रियाएँ कर सकता है; सोना चा दी रत्न धातु आदि की विक्रिया कर

सकता है; उन्हें लेकर आकाश में चल सकता है; पक्षियों की भाँति उड सकता है और रह सकता है; पशुओं की भाँति कूद सकता है, दौड सकता है । ये सब वैक्रिय शक्ति के अस्तित्व की अपेक्षा कथन है । ऐसी विक्रियाएँ मायी प्रमादी साधु करता है, अप्रमादी ग भीर साधु नहीं करते हक्त । ॥ उद्देशक-९ स पूर्ण॥ ॥ उद्देशक-१० स क्षिप्त ॥

शतक-१४ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशकों के माध्यम से अनेकानेक अक्रमिक छुटकर विषय भरे हक्त । शतक के प्रार भ में एक स ग्रहणीगाथा है जिसमें उद्देशकों के नाम तथा मुख्य विषय सूचित किये गये हक्त, तदनुसार उद्देशकों के विषय इस प्रकार है-

(१) **चरम**- आयुष्यब ध तथा गति स ब धी विचारणा है ।

(२) **उन्माद**- अनेक प्रकार के उन्माद २४ द डक में, स्वाभाविक वृष्टि देवकृतवृष्टि एव तमस्काय स ब धी वर्णन है ।

(३) **शरीर**- महाशरीरी देव का अणगार के बीच में से जाना, नैरयिक आदि जीवों का परस्पर सन्मान आदि व्यवहार तथा देवों का देवों के बीच में से जाना आदि विषय निरूपित है ।

(४) **पुद्गल**- पुद्गल परिणाम, जीव के सुख-दुःख तथा परमाणु पुद्गल स ब धी वर्णन है ।

(५) **अग्नि**- जीवों का अग्नि के बीच में से जाना, शब्द आदि इष्ट अनिष्ट का अनुभव, देव का पर्वत उल्ल घन आदि विषय वर्णित है ।

(६) **आहार**- जीवों का आहार एव इन्द्र के भोग स ब धी वर्णन है ।

(७) **स श्लिष्ट**- गौतमस्वामी का भगवान के साथ चिरकाल से स्नेह स श्लिष्ट भवों का निर्देश, द्रव्य-क्षेत्र तुल्यता, स थारेवाले की आगे के भव में आहारादि में मूर्छा एव लवसत्तम देव वगैरह का वर्णन है ।

(८) **अ तर**- नरक पृथ्वियों का एव देवलोकों का अ तराल, शालवृक्ष आदि के भव, अव्याबाध देव, जृ भक देव आदि वर्णन है ।

(९) **अणगार**- अणगार की ज्ञान क्षमता, पुद्गल प्रकाश, २४ द डक में शुभ अशुभ पुद्गल, देव के हजार रूपों की भाषा एक, सूर्य-अर्थ, स यमसुख को देवलोक की उपमा इत्यादि वर्णन है ।

(१०) **केवली**- केवली और सिद्धों के ज्ञान की क्षमता बताई है।

प्रश्न-२ : चरम देवावास-परम देवावास के कथन से अणगार के आयुष्यब ध का क्या निरूपण किया गया हे ?

उत्तर- यहाँ प्रथम उद्देशक के प्रार भ में उक्त प्रकार का कथन है जिसका तात्पर्य इस प्रकार है- भावितात्मा अणगार को आगे के भव का आयुष्यब ध करना है उसके उस समय आत्म परिणामों की धारा एक देवस्थान के आयुष्य ब ध योग्य चरम परिणामों को पार करके आगे बढ गयी है और अगले देवस्थान के ब ध योग्य परिणामों तक नहीं पहुँची है बीच में ही है या रूक गयी है उस समय जीव आयुष्य ब ध करे और मृत्यु प्राप्त करे तो कौन सा आयुष्य बा धेगा और कहाँ उत्पन्न होगा ? इसका उत्तर सीधा और सरल यह है कि जहाँ उसके परिणाम स्थित हक्त, वे पूर्व के चरम देवावास की योग्यता के निकट हक्त तो वहाँ का आयु बा धकर जीव उस स्थान में जायेगा और यदि पूर्व के चरम देवावास से उसके परिणाम ज्यादा आगे बढ गये हैक्त और अगले परम देवावास के आयुब ध की योग्यता के निकट हो गये हक्त तो जीव(अणगार) उस आगे के देवावास का आयुब ध करके मरकर वहाँ परम देवावास में उत्पन्न होगा । **इस बात को समजने के लिये स्थूल दृष्टा त**- हम कहीं चल रहे हक्त, जहाँ थोडी दूरी दूरी पर मकान है और अचानक मूसलधार वर्षा प्रार भ हो जाय तो हम जिधर मकान नजदीक होगा तत्काल उसमें पहुँच जायेंगे । यदि पीछे वाला मकान १० फुट है और आगे वाला ५० फुट है तो हम पीछे के १० फुट दूरी वाले में पहुँच जाते हक्त और कभी आगे वाला स्थान निकट है तो वर्षा से बचने के लिये हम आगे वाले स्थान में भी पहुँच सकते है । ठीक इसी तरह यहाँ भी आयुष्य ब ध में अणगार निकट के देवावास का ही आयुष्यब ध करेगा और तदनुसार ही गति प्राप्त करेगा ।

प्रश्न-३ : जीव की मरने के बाद कहीं भी उत्पन्न होने के लिये कितनी शीघ्र गति होती है ?

उत्तर- कोई व्यक्ति अत्य त स्फूर्ति से हाथ को स कोचे या पसारे, मुट्ठी खोले या ब ध करे, आँख खोले या ब ध करे; इससे भी अधिक शीघ्र गति से जीव परभव में पहुँच जाता है । क्यों कि उपरोक्त सभी कार्यों में कम से कम अस ख्य समय लग जाते हक्त जब कि जीव को परभव में पहुँचने में १, २ या ३ समय ही लगते है एकेन्द्रिय को १, २, ३ या ४ समय अधिकतम लगते हक्त । अर्थात वाटे वहेता में जीव जघन्य १ समय उत्कृष्ट ३ या ४ समय रहता है । त्रस जीव त्रसनाडी में ही होते हक्त, वहाँ से कहीं भी उत्पन्न होने में उन्हें उत्कृष्ट ३ समय लग सकते हक्त । एकेन्द्रिय जीव त्रस नाडी के बाहर स्थावर नाल में भी होते हक्त उन्हें कहीं भी उत्पन्न होने में एक मोड अधिक लगने से उत्कृष्ट ४ समय लग सकते हक्त । किसी अन्य अपेक्षा से एकेन्द्रिय को उत्कृष्ट ५ समय भी लगने का कथन ग्रंथों में है किंतु आगम से उसकी सत्यता सिद्ध नहीं होती है ।

वाटे वहेता जीव को अपेक्षा से अन तर-पर पर-अनुत्पन्नक कहा है । उत्पत्ति स्थान पर प्रथम समयवर्ती जीवों को अन तरोत्पन्नक एव शेष सभी समयवर्ती पर परोत्पन्नक कहे गये हक्त । अन तरोत्पन्नक और अन तर-पर पर-अनुत्पन्नक जीव आयुष्य नहीं बा धते हक्त तथा पर परोत्पन्नक के अ तर्मुहूर्त बीत जाने के बाद आयुष्य का ब ध होता है । दु:खपूर्वक उत्पन्न होने वालों को खेदोत्पन्नक कहा गया है इसके भी अन तर-पर पर आदि तीनों भेद पूर्ववत् होते हक्त । कहीं भी आयुष्य पूर्ण करके जाने वाले को **निर्गत** कहते हक्त । उसमें भी वाटे वहेता जीव अन तर-पर पर अनिर्गत है, उत्पत्ति स्थान में पहुँचा प्रथम समयवर्ती जीव अन तर निर्गत है और अनेक समयवर्ती जीव पर पर निर्गत(पूर्वगति-स्थान की अपेक्षा) कहे गये हक्त ।

प्रश्न-४ : २४ द डक में यक्षावेश-उन्माद किस प्रकार समझना ?

उत्तर- पृथ्वी, पानी आदि में दैविक उपद्रव, इसी तरह विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर में देव प्रवेश एव कुतूहल, नारकी के भी देव द्वारा अशुभ पुद्गल प्रक्षेप से उन्माद शक्य है । देवों में विशिष्ट शक्ति स पन्न देवों के द्वारा सामान्य देवों में उन्माद प्रक्रिया स भव है । यह यक्षावेश उन्माद समझना । मोहावेश उन्माद प्रत्येक जीवों को मिथ्यात्व मोह

और चारित्रमोहजन्य होता है । यह उन्माद अनादिकालीन होता है । इस उन्माद का निकलना अति कठिन होता है, यक्षाविष्ट उन्माद का छूटना उतना कठिन नहीं होता है ।

प्रश्न-५ : देव वृष्टि कब कैसे करते हक्त? तमस्काय क्यों करते हक्त ?

उत्तर- देव कोई भी खुशी में या कुतूहल में कभी भी कहीं भी वृष्टि कर सकते हैं । इन्द्र को कहीं वृष्टि करवाना आवश्यक हो तो उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है- वह आभ्य तर परिषद के देव को कहेगा । फिर वह मध्यम परिषद के देव को, यों क्रमश: बाह्य परिषद फिर बाह्य सामान्य देव को, फिर वह आभियोगिक देव को, फिर वह वृष्टि कर्ता देव को कहेगा और वही वृष्टि करेगा । इसी प्रकार इन्द्र को तमस्काय करनी हो तो भी यही क्रमिक प्रक्रिया होती है । सामान्य देव कभी भी कहीं भी तमस्काय कर सकते हक्त । देवों द्वारा तमस्काय करने के कारण भी अनेक हक्त- (१) रतिक्रीडा करने के लिये (२) विरोधी को विस्मित करने के लिये (३) अपने स रक्षण के लिये (४) छिपने के लिये ॥ उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : जीवों में विनय व्यवहार किस प्रकार का होता है ?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि देव अणगार की अवगणना करके उसके बीच से जा सकता है, सम्यग्दृष्टि देव विनय प्रतिपत्ति करके जाता है । नारकी में विनय, सत्कार, सन्मान, हाथजोडना, आसन देना, प्रणाम करना आदि शिष्टाचार नहीं होते हक्त । देवों और मनुष्यों में होते हक्त । एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय में नहीं होते । तिर्यंच प चेन्द्रिय में आसन प्रदान के अतिरिक्त अन्य शिष्टाचार अस्पष्ट रूप से होते हक्त अर्थात् पशुओं में सामने आना, पहुँचाने जाना आदि हो सकते हक्त । महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देव की अवगणना करके बीच में से जा सकते हक्त किंतु अल्पर्द्धिक देव नहीं जा सकते । समान ऋद्धि वाले एक दूसरे की असावधानी में या शस्त्रप्रयोग करके जा सकते हक्त ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-७ : पुद्गलों में वर्ण आदि का परिवर्तन किस तरह स भव है ?

उत्तर- अनेक वर्ण ग ध वाले पुद्गल कभी एक वर्ण ग ध वाले हो जाते है और एक वर्णादि वाले पुद्गल अनेक वर्णादिमय हो जाते हक्त । ढक्ष पुद्गल कभी स्निग्ध हो जाते हक्त, कभी उभय रूप हो जाते हक्त ।

जीव भी कभी सुखी, कभी दु:खी यों परिवर्तित होते रहते हक्त । कोई जीव सिद्ध बन जाते है वे स्थित(स्थायी) सुखी हो जाते हक्त । परमाणु पुद्‌गल द्रव्य से शाश्वत है पर्याय से अशाश्वत है । परमाणु आदि द्रव्य से अचरम ही होते हक्त, चरम नहीं । क्यों कि वापिस परमाणु आदि जरूर बनते हक्त । क्षेत्र काल भाव से चरम अचरम दोनों होते हक्त केवली की अपेक्षा चरम और सामान्य जीवों की अपेक्षा चरम अचरम दोनों होते हक्त ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-८ : अग्नि में से कौन-कौन जीव जा सकते हक्त ? वे जलते हैं या नहीं ?

उत्तर- वाटे वहेता(एक गति से दूसरी गति में जाते हुए) सभी जीव अग्नि में से जा सकते हक्त और जलते नहीं है स्थूल शरीर नहीं होने से । अविग्रह गति वाले नारकी और पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीव अग्नि में से नहीं जाते । क्यों कि नरक में अग्नि नहीं है और एकेन्द्रिय चलते नहीं है । विकलेन्द्रिय जीव अग्नि में से जावे तो जल जाते हक्त । मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय ऋद्धिस पन्न जावे तो नहीं जलते । ऋद्धि रहित हो वे जावे तो जलते हक्त । देव अग्नि में से जावे तो नहीं जले, क्यों कि वैक्रिय शरीर में भी अग्नि शस्त्र नहीं लगता है ।

प्रश्न-९ : जीव इष्ट-अनिष्ट किन स्थानों का अनुभव करते हक्त?

उत्तर- नारकी जीव प्राय: शब्द-रूप आदि अनिष्ट का अनुभव करते हक्त । देवता प्राय: इष्ट शब्द आदि का ही अनुभव करते हक्त । मनुष्य तिर्यंच इष्ट-अनिष्ट उभय स्थानों का अनुभव करते हक्त । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय आदि योग्य इन्द्रियों के अनुसार ही न्यूनाधिक वर्ण आदि का अनुभव करते हक्त अर्थात् चौरेन्द्रिय जीव शब्दों का अनुभव नहीं करते । तेइन्द्रिय शब्द तथा रूप का, बेइन्द्रिय शब्द, रूप तथा ग ध का अनुभव नहीं करते हक्त । एकेन्द्रिय मात्र स्पर्श का ही इष्टानिष्ट का अनुभव करते हक्त, शब्द, रूप, ग ध, रस का नहीं । इसके अतिरिक्त गति, स्थिति, लावण्य, यश, कीर्ति एव उत्थान आदि पाँचों के इष्टानिष्ट का एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय सभी अनुभव करते हक्त । नारकी अनिष्ट गति आदि का और देवता इष्ट गति आदि का अनुभव करते हक्त । नारकी को कभी देव स योग से इष्ट अनुभव हो भी तो उसे यहाँ

नगण्य किया गया है । वैसे ही देव भी अन्य देव के कोप से अनिष्ट अनुभव कर सकते हक्त ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१० : देवेन्द्रों की भोगपद्धति किस प्रकार की होती है ?

उत्तर- शक्रेन्द्र-ईशानेन्द्र को जब विषय भोग की इच्छा होती है तब अपने विमान में चक्राकार स्थान की विकुर्वणा करते हक्त उसमें प्रासादावत सक(महल) बनाते हक्त और उसमें चबूतरा-मणिपीढिका बनाते हक्त और उसमें शय्या बनाते हक्त । वहाँ उनकी नृत्य और ग धर्व अनिका साथ रहती है । वहाँ वे अपनी आठ अग्रमहिषी सपरिवार के साथ दिव्य भोगों का सेवन करते हक्त अर्थात् परिचारणा करते हक्त । सनत्कुमारेन्द्र आदि शेष इन्द्रों के काय परिचारणा नहीं होने से शय्या की जगह सि हासन की विकुर्वणा करते हक्त, वहाँ सामानिक आदि स पूर्ण स पदा के साथ दिव्यभोग शब्दादि का अनुभव करते हक्त अर्थात् वे इन्द्र देवा गनाओं के रूप, शब्द, स्पर्श परिचारणा मात्र से ही तृप्ति का अनुभव करते हक्त । पहले-दूसरे देवलोक से अपरिग्रहीता देवियाँ याद करने पर वहाँ उपस्थित होती है । इन इन्द्र और देवियों का विशिष्ट अवधिज्ञान से एव अ गस्फुरण से सुमेल हो जाता है । ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न-११ : गौतमस्वामी की मानसिक अधैर्यता की व्यथा का भगवान ने किस प्रकार निवारण किया था ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक-१३/७ अनुसार एक बार राजगृहनगर में प्रवचन हुआ, परिषद चली गई । उस दिन प्रवचन में स भवत: अनेक जीवों के केवली होकर मोक्ष जाने का वर्णन चला होगा या गौतम स्वामी के ९ छोटे साथी गणधरों को केवलज्ञान और मुक्ति हो चुकी होगी। उस विषय से गौतमस्वामी के मनोम थन में खुद को केवलज्ञान नहीं होने की व्यथा अत्य त उग्र बन रही थी । उनके चहेरे में, भावों में खेद-उदासीनता वर्तने लगी और मन आर्तध्यान में तल्लीन हो रहा था । तब भगवान ने गौतमस्वामी को स्वत: स बोधन करते हुए कहा कि हे गौतम! तुम-हम चिरकाल से साथी हक्त, पूर्व देव भव में, उसके पूर्व मानव भव में, यों अनेक ल बे समय से परिचित साथी हक्त और इस भव के बाद भी हम दोनों मोक्ष में भी आत्मस्वरूप से तुल्य बन कर साथ में ही रहेंगे ।

इस कथन से गौतमस्वामी को केवलज्ञान और मुक्ति होने की स्पष्टता हो जाने से उन्हें अत्य त स तुष्टी हो गई कि मैं भी चरम शरीरी हूँ एव इसी भव से स सार का अ त करके मुक्त होने वाला हूँ । इस तरह उनका अधैर्य(व्यथा) मिटकर स तोष एव आन द में परिवर्तित हो गया ।

भगवान एव गौतमस्वामी के इस प्रस ग को अनुत्तर विमान वासी देव अपनी मनोवर्गणा लब्धि से वहाँ रहे हुए जानते हक्त, ऐसा भगवान ने गौतमस्वामी के पूछने पर फरमाया । मनोवर्गणा लब्धि, अवधिज्ञान का ही एक विशिष्ट विभाग है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न-१३ : तुल्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उत्तर- भगवान के गौतमस्वामी को दिये गये उपरोक्त समाधान में दोनों के तुल्य-सरीखे हो जाने का कथन किया गया था । उस तुल्य शब्द को जिज्ञासा में ग्रहण कर गौतमस्वामी ने यह प्रश्न किया था । गौतमस्वामी ऐसे ही शब्द को लेकर प्रस ग को लेकर या प्रश्न करते रहते थे । श ख जी के लिये भगवान ने पुष्कली आदि श्रावकों को फरमाया था कि श ख श्रावक ने रात्रि में पौषध में अच्छी धर्म जागरणा करी । तो वहाँ भी गौतमस्वामी ने जागरणा कितने प्रकार की होती है, ऐसा प्रश्न किया था । कोई व्यक्ति या देव आकर के जाता तो गौतम स्वामी उसके स ब ध में यह श्रावक आपके पास दीक्षा लेगा या नहीं ? यह देव पहले कौन था ? ऐसी ऋद्धि कैसे प्राप्त की ? आगे कब मोक्ष जायेगा ? इत्यादि प्रश्न करते थे ।

प्रभु ने तुल्यता छ प्रकार की कही है- (१) द्रव्य तुल्यता- परमाणु आदि परमाणु आदि के साथ तुल्य होते हक्त । एक शुद्ध आत्मा दूसरी शुद्ध आत्मा के साथ तुल्य होती है, यह द्रव्यतुल्यता है । (२) इसीतरह अवगाहना की अपेक्षा क्षेत्र तुल्यता (३) स्थिति की अपेक्षा काल तुल्यता (४) पुद्गलों के वर्णादि की अपेक्षा और जीवों के गुणों की अपेक्षा भावतुल्यता (५) नरकादि द डकों की अपेक्षा भवतुल्यता (६) परिम डल आदि आकृति की अपेक्षा स स्थानतुल्यता होती है ।

प्रश्न-१४ : परभव में उत्पन्न होते समय प्रथम आहार में जीवों के समानता होती है ?

उत्तर- सामान्य काल करने वालों की अपेक्षा स थारे में काल करके जाने वालों के वहाँ आहार ग्रहण की आसक्ति तल्लीनता एव परिणमन में विशेषता होती है । जिस तरह नित्यभोजी के और तपस्या के पारणे वाले तपस्वी के प्रात:काल आहार ग्रहण और परिणमन की तल्लीनता में फर्क होता है । वैसे ही स थारे में काल करके देवलोक जाने वाले जीवों में अन्य समय की अपेक्षा जन्म समय में आहार के ग्रहण परिणमन की विशेषता होती है वह विशेष तल्लीनता आसक्ति से आहार पुद्गलों को ग्रहण-परिणमन करता है । यह विशेषता जन्म के प्रार भिक समयों में समझना ।

प्रश्न-१५ : 'लवसत्तम देव' ऐसा कथन किनके लिये और क्यों है ?

उत्तर- जो देव पूर्व भव में सात लव जितनी उम्र ज्यादा होती तो मोक्ष चले जाते; ऐसे देवों को शास्त्र में लवसत्तम देव कहा गया है । सर्वार्थसिद्ध विमान के सभी देव लवसत्तम देव कहे जाते हक्त । वे सभी एक मनुष्य भव करके मोक्ष जाने वाले होते हक्त । **एक लव** एक सेक ड से बडा और एक मिनट से छोटा होता है । ४८ मिनट(मुहूर्त) में ७७ लव होते हक्त । ३३ सागरोपम की उम्र में भोगने योग्य पुण्यांशों का तप-स यम से ७ लव में क्षय हो सकता है । जिस तरह सात पीढी चलने वाले धन का प्रच ड अग्नि द्वारा अल्प समय में नाश हो सकता है । वैसे ही ३३ सागर के योग्य पुण्यकर्म, ७ लव के जितने अल्प समय में ध्यान-तप की अग्नि में क्षय हो जाते हक्त ।

चार अनुत्तर विमान के देव लवसत्तम नहीं होते हक्त । उनकी ३१ सागर से ३३ सागर की स्थिति पूर्ण होने पर वे एक भव या उत्कृष्ट १३ भव करके मुक्त होते हक्त । वे चारों अनुत्तर विमान के समस्त देव यदि पूर्व भव में दो दिन की उम्र अधिक होती तो एक छठ-बेले की तपस्या से स पूर्ण कर्म क्षय करके मोक्ष चले जाते । सर्वार्थसिद्ध और ४ अनुत्तर विमान के देवों की आपस में यह भिन्नता यहाँ सातवें उद्देशक में दर्शाई गई है । यों पाँचों ही अणुत्तर विमान कहलाते हक्त । जहाँ स पूर्ण लोक की अपेक्षा सर्वोत्तम, श्रेष्ट, श्रेष्ठतम वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श होते हक्त । उनसे अधिक ऊँचे शब्दादि विषय अन्यत्र

कहीं भी नहीं होते हक्त । इसलिये उन्हें अनुत्तर देव और उनके स्थान अनुत्तर विमान कहे जाते हक्त । ॥ उद्देशक–७ स पूर्ण ॥

प्रश्न–१६ : भगवान महावीर और गौतमस्वामी कभी फुरसत में वार्तालाप करते थे ?

उत्तर– एक बार राजगृहनगर के उद्यान में ऐसा ही प्रस ग था । सामने रहे वृक्ष पर नजर पडी, विचार करते हुए गौतमस्वामी ने पूछा– हे भगवन् ! यह शालवृक्ष का मुख्य जीव काल करके कहाँ जायेगा ? भगवान ने फरमाया कि इसी नगर में शालवृक्ष रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ पर व दित पूजित सन्मानित होगा । वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र से मुक्त होगा ।

दूसरा प्रश्न उस शालवृक्ष की शाखा के मुख्य जीव स ब धी किया था । वह जीव विंद्याचल पर्वत की तलहटी में माहेश्वरीनगर में शालवृक्ष रूप में उत्पन्न होकर व दित पूजित सन्मानित होकर वह भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेगा । **तीसरा प्रश्न** भी सामने दिखने वाले उम्बर वृक्ष के लिये किया था । उसका जीव पाटलीपुत्र नगर में पाटली वृक्ष रूप में उत्पन्न होकर व दित पूजित होकर आयुष्य पूर्णकर महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष जायेगा । इस प्रकार गौतमस्वामी की और भगवान की सामान्य–विशेष विविध चर्चा होती रहती थी ।

प्रश्न–१७ : अ बड सन्यासी का वर्णन यहाँ किस प्रकार है?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक–७ में अ बड के सातसो शिष्यों सहित भगवान के पास श्रावक व्रत स्वीकार करने का, ७०० शिष्यों का ग गा नदी की रेत में स थारा करने का, अ बड का १०० घर में वैक्रिय लब्धि से एक साथ भोजन करने आदि का विस्तृत वर्णन था किंतु औपपातिक सूत्र की रचना हो जाने पर वहाँ यह समस्त वर्णन होने से यहाँ इस उद्देशक में लेखनकाल में औपपातिक का निर्देश करके स क्षिप्त कर दिया गया है । अ बड का जीव पाँचवें देवलोक के बाद महाविदेह क्षेत्र में चारित्र अ गीकार करके मुक्त होगा ।

प्रश्न–१८ : अव्याबाध देव और शक्रेन्द्र की विशिष्ट क्षमता क्या है ?

उत्तर– सातवें लोका तिक देव अव्याबाध देव है । वे अपनी दैविक

शक्ति से किसी व्यक्ति की आँखों की पलकों पर ३२ नाटक दिखा सकते हक्त । ऐसा करते हुए भी उस व्यक्ति को किंचित् भी बाधा–परेशानी नहीं होने देते हक्त ।

शक्रेन्द्र अपनी वैक्रिय शक्ति से किसी व्यक्ति का शिरछेदन कर चूरा–चूरा करके कम डल में भर सकते हक्त और तत्काल पुनः जोड कर रख सकते हक्त । ऐसा सब इतनी शीघ्रता व सफाई के साथ करते हक्त कि उस पुढष को किंचित् भी तकलीफ नहीं होने दे । यह दैविक शक्ति क्षमता दर्शाई गई है । वर्तमान में वैज्ञानिक साधनों से ऐसा बहुत कुछ होने लगा है पर तु उसमें किंचित् भी तकलीफ न हो यह बात नहीं है ।

प्रश्न–१९ : जृ भक देव कहाँ रहते हक्त, उनके कितने प्रकार हक्त?

उत्तर– चार जाति के देवों में जृ भक देवों का समावेश व्य तर देवों में होता है । ये देव क्रीडा में एव मैथुन सेवन प्रवृत्ति में आसक्त बने रहते हक्त । ये तिरछे लोक के वैताढ्य पर्वतों पर रहते हक्त और नीचे भी आते रहते हक्त । ये जिस मानव पर प्रसन्न हो जाय तो उसे धन माल आदि से भरपूर कर देते हक्त और जिस पर ढष्ट हो जाय तो उसे कई प्रकार से हानि पहुँचाते हक्त । ये एक प्रकार के व्य तर जाति के देव ही हक्त । १५ कर्मभूमि के क्षेत्रों के वैताढ्य पर्वत पर एव देवकुरू उत्तरकुरू क्षेत्र के क चनगिरि पर्वतों पर तथा चित्र, विचित्र, यमक नामक पर्वतों पर रहते हक्त । इनकी एक पल्योपम की उम्र होती है ।

इन देवों का मनुष्य लोक के आहार, पानी, फल, फूल आदि पर अधिकार होता है । उनमें हानि वृद्धि कर सकते हक्त । इनके दस नाम से ही इनके कार्य स्पष्ट होते हक्त । यथा– (१) अन्नजृ भक (२) पान जृ भक (३) वस्त्रजृ भक (४) लयन(मकान)जृ भक (५) शयनजृ भक (६) पुष्पजृ भक (७) फलजृ भक (८) फल–पुष्पजृ भक (९) विद्या जृ भक (१०) अव्यक्त जृ भक– सामान्य रूप से सभी पदार्थों पर आधिपत्य रखने वाले अव्यक्त जृ भक देव होते हक्त । ॥ उद्देशक–८ स पूर्ण ॥

प्रश्न–२० : अणगार सुखों की देवसुखों से तुलना किस प्रकार की है ?

उत्तर– (१) एक महीना स यम पालन करने वाले अणगार व्य तर देवों

के सुख का उल्ल घन कर जाते हक्त । इसी क्रम से दो महीने से १२ महीने तक समझना चाहिये ।

एक महीना= व्य तर । दो महीना = नवनिकाय । तीन महीना= असुरकुमार । चार महीना= ग्रह नक्षत्र तारा । पाँच महीना= सूर्य, चन्द्र । छ महीना= पहला दूसरा देवलोक । सात महीना= तीसरा चौथा देवलोक । आठ महीना= पाँचवाँ छट्ठा देवलोक। नौ महीना= सातवाँ आठवाँ देवलोक । दस महीना= ९ से १२ देवलोक । ग्यारह महीना= नवग्रैवेयक । बारह महीने स यम पालन करने वाला अणगार अनुत्तर विमान के देवों के सुख का उल्ल घन कर लेता है ।

यह स यम में भावित आत्मा के आत्मिक आन द का एक अपेक्षित मध्यम दर्जे का मानद ड बताया गया है । क्यों कि कई जीव तो अ तर्मुहूर्त में ही मुक्ति प्राप्त कर लेते हक्त ।

प्रश्न–२१ : अन्य किन–किन विषयों का वर्णन इस शतक में है ?

उत्तर– **(१)** अणगार कर्मलेश्या को–भावलेश्या को नहीं जान सकते किंतु भावलेश्या वाले सशरीरी जीव को जानते–देखते हैं। **(२)** सूर्य–चन्द्र के विमान से जो प्रकाश निकलता है वह रूपी द्रव्य लेश्या के पुद्‌गलों का होता है अर्थात् पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर से प्रकाश निकलता है । **(३)** नारकी जीवों के अनिष्ट और दुःखकर पुद्‌गलों का स योग होता है, देवों के इष्ट और सुखकारी पुद्‌गल स योग होता है । मनुष्य तिर्यंच में उभय स योग होता है । **(४)** महर्द्धिक देव हजारों रूप बना कर उन सब से एक साथ बोल सकता है । वह भाषा एक ही होती है, हजार नहीं होती है । **(५)** सूर्य विमान के पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामक पुण्य–प्रकृति का उदय होता है और सूर्य देव ज्योतिषी देवों का इन्द्र भी है अतः सूर्य को और सूर्य के अर्थ को शुभ माना गया है । **(६)** केवली और सिद्ध भगवान ज्ञान में सभी अपेक्षाओं से समान होते हक्त । सिद्धों के उत्थान कर्म बल वीर्य आदि नहीं होने से वे वचन प्रयोग नहीं कर सकते और शरीर के अभाव में उठना बैठना चलना आदि शारीरिक चेष्टाएँ नहीं कर सकते । केवली मनुष्य बोलकर ज्ञान का कथन कर सकते हक्त और उक्त सभी चेष्टाएँ भी कर सकते हक्त ।

शतक–१५

प्रश्न–१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस शतक में उद्देशक नहीं है और पूरे शतक में गौशालक का विषय कथानक रूप में वर्णित है । जिसमें गौशालक का परिचय, भगवान महावीर का स योग, भगवान के साथ विचरण, वैश्यायन बाल तपस्वी की छेड–छाड, तिल के सात जीवों की घटना, भगवान से पृथक्करण, तेजोलब्धि की प्राप्ति और गौशालक का प्रभाव, भगवान और गौशालक का श्रावस्ति में आगमन और गौशालक द्वारा तेजोलब्धि का प्रयोग, गौशालक की पराजय एव दुर्दशा, अय पुल गौशालक श्रावक, गौशालक का मरण, आगामी भव, भगवान का रोगात क, सि हा अणगार का रेवती गाथापत्नि के घर से औषध लाना और भगवान का रोग निवारण आदि विषयों का विस्तृत वर्णन है ।

प्रश्न–२ : गौशालक का सामान्य परिचय क्या है और उसे भगवान का स योग कैसे हुआ ?

उत्तर– गौशालक के पिता का नाम **म खलि** था । वह म ख भिक्षाचर था । वह चित्रफलक (फोटो की तस्वीर) हाथ में रखकर भिक्षा मा गता था । वह भद्रा भार्या के साथ घूमता हुआ शरवण नगरी में आया । चातुर्मास रहने के लिये कोई स्थान न मिलने पर गोबहुल नामक ब्राह्मण की गौशाला में ही चातुर्मास किया । उसकी भद्रा भार्या गर्भवती थी । उसने वहाँ पुत्र को जन्म दिया और गौशाला में जन्म होने से उसका सार्थक नाम गौशालक रखा । यौवन अवस्था में पहुँचने पर वह भी पिता के समान चित्रफलक हाथ में लेकर आजीविका करने लगा ।

भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षा लेकर प्रथम वर्ष में प द्रह–प द्रह उपवास की तपस्या करने का स कल्प किया । प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में किया । उस चातुर्मास बाद दूसरे वर्ष भगवान ने महीने–महीने की तपस्या प्रार भ की और दूसरा चातुर्मास राजगृही

नगरी के नाल दा पाडे के बाहर त तुवायशाला के एक कमरे में किया ।

स योगवश गौशालक म खलिपुत्र भी अकेला घूमता हुआ वहाँ पहुँच गया । घूमते हुए कोई स्थान न मिलने पर उसी त तुवायशाला में आकर किसी कमरे में ठहर गया ।

भगवान का प्रथम मासखमण का पारणा राजगृहीनगरी में विजय शेठ के घर में हुआ । भगवान को अपने घर में आते देख कर विजय शेठ खुश हुआ, सामने गया, आदरपूर्वक भगवान को शुद्ध भावों से पारणा कराया । तीनों योगों से शुद्ध निर्दोष सुपात्र दान देकर हर्षित हुआ । उस समय उन परिणामों में उसने देवायु का ब ध किया और स सार परित्त किया । उसके घर में प च दिव्य की वृष्टि हुई, जिसमें सोनेया का ढेर हो गया और देव दुंदुभि बजी । वह बात नगर में फैल गई ।

गौशालक ने भी सुना । तत्काल वह घटना स्थल पर पहुँचा; उसने अच्छी तरह वह दृष्य आँखों से देखा और भगवान को भी पारणा करके वहाँ से निकलते हुए देखा । गौशालक अत्य त प्रसन्न एव आन दित हुआ । भगवान को भावयुक्त व दन नमस्कार किया और बोला कि– मक्त आज से आपका शिष्य हूँ , आप मेरे धर्माचार्य हक्त । भगवान ने उसे स्वीकार नहीं किया, अपने स्थान पर पहुँच कर दूसरा मासखमण प्रार भ कर दिया, ध्यान में लीन हो गये । दूसरे मासखमण का पारणा आन द शेठ के घर और तीसरे मासखमण का पारणा सुन द शेठ के घर किया। चौथा पारणा चौमासा पूर्ण कर विहार करके कोल्लाक सन्निवेश में बहुल ब्राह्मण के घर किया । वहाँ भी प च दिव्य प्रगट हुए । पारणा करके भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया ।

गौशालक ने भगवान को वहाँ ततुवायशाला में नहीं देखा तो राजगृही नगरी में बहुत खोज की पर तु कहीं पता नहीं लगा । तब उसने त तुवायशाला में आकर कपडे, जूते आदि ब्राह्मणों को देकर दाढी–मूँछ सहित मस्तक का मु डन करवाया; एव पूर्ण निर्वस्त्र होकर भगवान की खोज में निकला और वह सीधा कोल्लाक सन्निवेश में पहुँचा । वहाँ उसने लोगों से भगवान के पारणे पर प च दिव्य प्रगट

होने की बात सुनी । वह समझ गया कि भगवान यहीं पर आये हक्त । खोज करते करते वह नगरी के बाहर मार्ग में जाते हुए भगवान के पास पहुँच गया । पुनः विनय व दन करके भगवान से निवेदन किया कि मैं आपका शिष्य हूँ आप मेरे धर्माचार्य हक्त । अत्य त आग्रह, लगन एव नग्न देखकर भगवान ने उसे शिष्य रूप में स्वीकार लिया । साथ–साथ विचरण करते हुए समय बीतने लगा ।

प्रश्न–३ : गौशालक का भगवान से पृथक्करण कैसे कब हुआ ? वैश्यायन बाल तपस्वी की घटना क्या बनी ?

उत्तर– गौशालक साधना की ढचि वाला भी था । उसमें भगवान के प्रति लगन भक्ति भी थी । भगवान के तप प्रभाव से बहुत प्रभावित भी था । किंतु मूल प्रकृति से वह उद्दड और दुर्बुद्धि वाला भी था । भक्ति में उसके वे अवगुण दबे रहे । छः वर्ष करीब वह भगवान के साथ विचरण में रहा । भगवान से प्रश्न पूछ–पूछकर वह बहुत अनुभवी, ज्ञानी, बहुश्रुत भी हो गया । भगवान भी यथासमय उसे उत्तर देकर उसकी जिज्ञासाओं का समाधान कर देते थे । उसकी विचित्र प्रकृति के कारण से भगवान ने समय–समय पर लाभ–अलाभ, सुख–दुःख, सत्कार–असत्कार आदि सहन किये एव अनित्य जागरणा में लीन रह कर विचरण किया ।

वैश्यायन :– छट्ठे वर्ष में भगवान और गौशालक एक बार विहार करते हुए कूर्म ग्राम के बाहर पहुँचे जहाँ वेश्यायन बाल तपस्वी बेले–बेले पारणा करते हुए आतापना लेते हुए रहता था । उसके मस्तक की जटा में बहुत जूँए पड गई थी । वे धूप के कारण इधर उधर पडती तो वह तपस्वी उन्हें पुनः मस्तक पर डाल देता था। गौशालक को उसे देखकर कुतूहल उत्पन्न हुआ । भगवान की नजर बचाकर वह उसके पास पहुँचा और बार बार यों कह कर चिढाने लगा कि **तुम साधु हो या जूँओं के घर हो ।** बार बार कहते जाने पर उस तपस्वी की शा ति भ ग हुई, उसने गौशालक पर तेजोलेश्या फेंकी ।

उस लेश्या के गौशालक तक पहुँचने के पूर्व ही भगवान ने शीत लेश्या से उसे प्रतिहत कर दिया । तब तपस्वी ने तेजोलेश्या

को वापिस खींच ली और उसने भगवान को देख भी लिया और कहा- मैं जान गया यह आपका प्रभाव है, आपने ही मेरी लेश्या को प्रतिहत किया है । फिर गौशालक ने भगवान से पूछा कि भगवन् ! यह जूँओं का घर आपको क्या कह रहा है ? तब भगवान ने तेजो लेश्या की बात स्पष्ट कर दी कि हे गौशालक ! तेरी अनुक पा के लिये मैने शीत लेश्या से उसकी तेजोलेश्या को प्रतिहित किया, जिससे तेरा कुछ बिगाड नहीं हुआ अन्यथा अभी राख का ढेर हो जाता ।

गौशालक सुनकर भयभीत हुआ । व दन-नमस्कार कर उसने भगवान से उसी समय पूछ लिया कि यह तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है ? भगवान ने उसे बेले-बेले पारणा करना, आतापना लेना आदि स पूर्ण विधि बता दी ।

पृथक्करण- एक बार भगवान और गोशालक साथ में विहार करते हुए सिद्धार्थ ग्राम से कूर्मग्राम जा रहे थे वर्षा का समय था । मार्ग में एक तिल के पौधे को देखकर गौशालक ने पूछा- हे भगवन् ! इस पौधे के ७ फूल के जीव मरकर कहाँ जायेंगे ? भगवान ने उत्तर दिया- इसी पौधे की एक फली में ७ तिल रूप में उत्पन्न होंगे । गौशालक को यह उत्तर ढचिकर नहीं हुआ । कुबुद्धि उस पर सवार हो गई । भगवान के वचन को असत्य करने के लिये वह किसी बहाने धीरे-धीरे चला और भगवान आगे बढ गये तो वह पीछे गया और तिल के पौधे को उखाड कर फेंक दिया और शीघ्र भगवान के पास आकर चलने लगा ।

दोनों कूर्मग्राम पहुँचे और कुछ दिन वहाँ रहकर पुनः दोनों ने सिद्धार्थ ग्राम तरफ विहार कर दिया । उसी स्थल के पास पहुँचने पर गौशालक ने भगवान से पूर्व बात को स्मरण कराते हुए कहा कि आपने जो कहा था वह मिथ्या हो गया । यहाँ तिल का पौधा है ही नहीं । उत्तर देते हुए भगवान ने स्पष्ट कर दिया कि तूँने पीछे से जाकर उस पौधे को उखाड फेंका था । उसके साथ मिट्टी का बहुत बडा ढेला भी था । थोडी देर बाद मूसलधार वर्षा पडी और वह पौधा वहाँ पर मिट्टी से पुनः जम गया । कुछ ही दूरी पर रहे उस

तिल के पौधे का निर्देश करके भगवान ने बताया कि यह वही पौधा है । इसकी अमुक फली में उन्हीं सात फूलों के जीव मरकर तिल के रूप में उत्पन्न हुए हक्त । गौशालक ने फली तोडकर तिल गिनकर देखे । भगवान का कथन सत्य था । गौशालक अपनी दुर्बुद्धि का भ डा फोड हुआ समझ कर अत्य त शर्मिंदा हुआ और वहीं से वह भगवान को छोडकर चला गया ।

प्रश्न-४ : भगवान को छोडकर चले जाने के बाद गौशालक ने क्या किया ?

उत्तर- अपनी कुबुद्धि और कुतूहल में पकडा गया और भगवान को झूठा करने में खुद झूठा पड गया । इसलिये अति शर्मिंदा हो जाने से वह भगवान के पास नहीं रह सका इसलिये वहाँ से निकल गया किंतु भगवान से जो ज्ञान मिला था और साधना का स कल्प था उसका त्याग नहीं किया । वह उसी साधना से चलता हुआ श्रावस्ती नगरी पहुँचा । वहाँ एक कु भकार की शाला में ठहरा । दृढ स कल्प के साथ तेजोलब्धि प्राप्त करने के लिये भगवान के द्वारा बताई विधि अनुसार बेले-बेले पारणा करने लगा और पारणे में एक मुट्ठी उडद के बाकले तथा एक पसली पानी ग्रहण कर पुनः बेला करता । तपस्या में समय पर आतापना भी लेता । यों ६ महीने निर तर साधना करके उसने तेजोलब्धि प्राप्त कर ली । उसके प्रयोग-परीक्षा के लिये एक पणिहारण के घडे को पत्थर फेंक कर फोडने से उसके द्वारा गाली-गलोच करने पर और हल्ला मचाने पर उस पर तेजोलेश्या फेंकी तो वह स्त्री जलकर भस्म हो गई । लोगों में वह महातपस्वी महात्मा रूप से प्रसिद्ध हो गया । लोगों की श्रद्धाभक्ति बढती गई । तपस्या तो उसने वहीं पर की थी और करता ही रहता था । आतापना भी लेता रहता । अतः प्रभाव ख्याती बढती गई ।

पार्श्वनाथ भगवान के ६ दिशाचर विद्वान स त भी ख्याती सुनकर गौशालक से मिले । गौशालक ने उनसे बहुत प्रेम जमाया । आखिर वे गौशालक के आधीन होकर रहने लगे और यथासमय पूर्वों के ज्ञान में से ८ निमित्त शास्त्र तथा गीत-नृत्य मार्ग का निर्यूहण कर

गौशालक को सिखाया । गौशालक ने अत्य त ध्यान पूर्वक वह ज्ञान हासिल किया और वह भूत-भविष्य, सुख-दु:ख, हानि-लाभ बताने में कुशल हो गया । उसका बताया हुआ पूर्ण सत्य साबित होने लगा, जिससे लोग उसे सर्वज्ञ सर्वदर्शी मानने लगे ।

पार्श्वनाथ भगवान के अनेक स त विचरण करते हुए उससे मिलते और उसका प्रभाव देखकर शिष्यत्व स्वीकार करने लगे । अब वह अपने को २४ वाँ तीर्थंकर कहने लगा और लोग भी उसके ज्ञान, तप, शिष्यस पदा, वक्तव्य आदि से प्रभावित होकर तीर्थंकर मानने लगे । उसका भक्त समुदाय बढने लगा ।

प्रश्न-५ : गौशालक ने इस तरह कितने वर्ष विचरण किया ?

उत्तर- गौशालक ने ६ वर्ष करीब भगवान के साथ विचरण किया और अकेले विचरण करते हुए उसे १८ वर्ष हो रहे थे यों कुल साधनाकाल उसका २४ वर्ष का हो रहा था । वह अपने विशाल आजीविक स घ सहित श्रावस्तीनगरी में आया और हालाहल नामक मुख्य आजीविको- पासिका की कु भारशाला में ठहर कर विचरण कर रहा था ।

प्रभु महावीर स्वामी के दो चातुर्मास बाद गौशालक दीक्षित- मु डित बना था अत: भगवान अपने २६ वें दीक्षा वर्ष में एव १४ वें केवली पर्याय के वर्ष में विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी के कोष्टक उद्यान में पधारे ।

नगरी में बहुत पहले से ही गौशालक आ गया था । अपने को तीर्थंकर होने का निरूपण करने लगा । कई लोग वैसी चर्चा करते हुए मार्गों में खडे अलग-अलग समूह में अपनी असहमती की प्रश्नार्थ बातें करते थे । श्री गौतमस्वामी का बेले के पारणे में नगर में जाना हुआ । लोगों की भीड थी वहीं से वे निकले । लोगों की चर्चा सुनी । गोचरी लेकर उद्यान में आये । भगवान को आहार-पानी दिखाकर ईर्यावहि करके गौशालक स ब धी जनचर्चा का निवेदन करके भगवान से गौशालक के इस प्रकार के उत्थान स ब धी वृत्ता त को सुनने की इच्छा प्रगट करी । भगवान ने उसके जन्म से लेकर आज तक का जीवन वृत्तात कह सुनाया । वहाँ बैठी पर्षदा ने भी वह वृत्तात सुना ।

उसके बाद पर्षदा नगरी में चली गई । नगर में चर्चा होने लगी कि गौशालक अपने तीर्थंकर होने की प्ररूपणा करता है किंतु श्रमण भगवान महावीर स्वामी इस प्रकार कहते हक्त कि यह तीर्थंकर नहीं किंतु म खलिपुत्र है; असत्य प्रलाप करता है ।

यह चर्चा गौशालक ने आतापना भूमि के पास से जाते लोगों के मुख से सुनी । भगवान को उसने गुढ स्वीकारा था तथा वह अपने हाल में मस्त था । किंतु लोगों की ऐसी बातें सुनकर अत्य त कुपित हुआ और वहाँ से निकलकर कु भकारशाला में आकर बैठा और भगवान के प्रति बहुत ही विरोधभाव धारण कर विचारमग्न बना । इस समय गौशालक की उम्र केवल सात दिन की बाकी रही थी । उसे लगा कि ये महावीर भगवान मेरी यशकीर्ति धूमिल करना चाहते हक्त । निरर्थक ही मेरी छेड कर रहे हक्त यदि ये नहीं समझें तो मक्त इन्हें तेजोलेश्या से भस्म कर दूँगा ।

प्रश्न-६ : गौशालक सात दिन में कैसे मर गया ? उसने अपनी तेजोलब्धि का प्रभाव भगवान पर किस प्रकार डाला ?

उत्तर- क्रोधायमान गौशालक उसी दिन थोडे ही समय बाद अपने स घ समुदाय सहित भगवान के पास कोष्टक उद्यान में पहुँचा और भगवान के सामने खडा होकर अनर्गल झूठे बकवास करने लगा । तिरस्कारमय वचन, ढक्ष वचन, पढष वचन भगवान को बोलने लगा । अ त में भगवान को मारने, लेश्या से जलाने की धमकी भी देने लगा कि 'आज तुम्हारी मृत्यु निश्चित्त है' तूँ जिन्दा नहीं रह सकेगा । इस प्रकार के असभ्यता भरे व्यवहार को देखकर सर्वानुभूति अणगार से नहीं रहा गया । वे गौशालक को हित शिक्षामय वचनों से समझाने लगे कि भगवान ने तेरे को दीक्षित किया, शिक्षित किया, मु डित किया, प्रव्रजित किया, बहुश्रुत किया; उन्हीं के सामने तूँ ऐसा अनर्गल बकवास और असभ्य व्यवहार कर रहा है । हे गौशालक ! तुमको ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये । ऐसे शिक्षा वचन मात्र शा ति के शब्दों में कहे तो भी कुपित गौशालक ने एक प्रहार में तेजोलेश्या से उस अणगार को भस्म कर दिया । वे शुभ भावों में मरकर आराधक

होकर आठवें देवलोक में गये वहाँ से एक भव महाविदेह में करके मोक्ष जायेंगे ।

फिर गौशालक भगवान पर टूट पडा और अनर्गल बकवास करने लगा । इतने में सुनक्षत्र अणगार ने भी गौशालक को हितवचन कहे किंतु वह तेजोलेश्या के मद से और अपनी पोल खुलने के गुस्से में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था । क्यों कि जो झूठा ही प्रपोग डा, जानबूझ कर होशियारी से करता है वह सच्ची बात करने वाले को तो अपना क टक-रोडा डालने वाला समझकर मार ही देना चाहता है । सुनक्षत्र अणगार भी गौशालक की लेश्या से अभिहत हुआ और कुछ क्षणों में श्रमणों को क्षमापना व दन करके स थारा करके १२वें स्वर्ग में गया । एक भव करके वह भी मोक्ष जायेगा ।

गौशालक का घम ड शिखर पर चढ गया था । भगवान पर फिर तिरस्कार धमकीमय वाक्यों से बौछार करने लगा । भगवान ने भी उसे वे ही हित वचन कहे जो दो स तो ने कहे थे । गौशालक सात-आठ कदम पीछे गया और पूरी शक्ति से भगवान को मारने के लिये लेश्या का प्रहार किया । तेजोलेश्या भगवान की परिक्रमा लगाकर आकाश में चली गई । और वहाँ से लौटकर गौशालक के शरीर को जलाती-जलाती उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई ।

हारा हुआ गौशालक अपनी ही लेश्या से पराभूत होता हुआ भगवान को कहने लगा कि तूँ मेरी लेश्या के प्रभाव से छ महीने में मर जायेगा । भगवान तो कोई कषाय आवेग में थे नहीं । फिर भी गौशालक का अभिमान ठंडा पटकने हेतु कहा कि हे गौशालक ! मक्त तो तेरी लेश्या के प्रभाव से छ महीने में नहीं मरूँगा अपितु १६ वर्ष जिनेश्वर के रूप में सुखपूर्वक विचरण करूँगा । पर तु तूँ खुद ही हे गौशालक ! अपनी ही लेश्या से जलता हुआ सात दिन के अ दर पित्तज्वर से पीडित होकर मर जायेगा ।

अब गौशालक की शक्ति भी नष्ट हो चुकी थी और जिस प्रयोजन से आया था वह भी सिद्ध नहीं हो सका ।

इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग परम शा त तीर्थंकर प्रभु से

तेजोलेश्या के मद में खोटी टक्कर लेकर गौशालक सात दिन रात में अपनी तेजोलेश्या की महान पीडा से पीडित होता हुआ मर गया । अनुमानतः गौशालक १८-२० वर्ष में कु वारा अवस्था में प्रभु के पास दीक्षित हुआ और २४ वर्ष की पर्याय का पालन कर कुल ४२-४४ वर्ष की अल्प आयु में अभिनिवेश मिथ्यात्व के कारण अर्थात् खोटा होते हुए भी जानबूझकर झूठ-झूठ अपने को सच्चा साबित करने की कुबुद्धि के कारण अपनी लब्धि-शक्ति से बुरी मौत मारा गया ।

प्रश्न-७ : गौशालक दो अणगारों की हत्या करके एव प्रभु पर मारक प्रहार करके मरकर कहाँ गया ?

उत्तर- गौशालक ने गरीब मा गण कुल में जन्म लेकर यौवन के प्रार भ में ही भगवान की भक्ति से परम त्यागी नग्न जीवन में प्रवेश कर दिया । भगवान के साथ रहकर भी उसने तप त्याग एव स यम जीवन जीआ था । सामान्य कुतूहल वृत्ति के कर्तव्य मात्र किये थे । भगवान से अलग होने के बाद भी नग्न ही रहा । तपस्या करने में भी दृढ मनो-बली था। भगवान पर आक्रमण करने आया उस दिन तक भी आतापना भूमि में आतापना ले रहा था । जब कि हजारों लाखों के जनसमुदाय रूप स घ का स चालक था । तीर्थंकर कहलाने और मनवाने जितना मनोबल तपबल और ज्ञानबल भी था । उसने विनयपूर्वक भगवान से एव अन्य श्रमणों से ज्ञान ग्रहण किया था ।

तेजोलब्धि से क्षणिक मान, द भ और क्रोधावेश से प चेन्द्रिय एव श्रमण हत्या की थी और गुढद्रोही और गुढघाती बना था वह एक दिन के कुछ ही क्षणों में । उसके शरीर में लेश्या पुनः प्रविष्ट हो जाने के बाद, हार कर अपने स्थान में आने के बाद तो उसका गुस्सा घम ड कुछ रहा ही नहीं । भगवान की नि दा तिरस्कार भी उसका ब द हो चुका था । रौद्रध्यान भी सात दिन में फिर रहा नहीं । इतना होते भी ऋषिघातक गुढद्रोही होने से अ तिम परिणाम बिगड जाने पर वह नरक में जाने योग्य ही था किंतु अ तिम समय में उसे स्वतः समकित आ गई, अपनी भूल की आत्म स्वीकृति हो गई तथा शिष्यों के सामने स्पष्टीकरण भी कर दिया कि भगवान महावीर ही सच्चे तीर्थंकर है

और मैं उनके कथन अनुसार वही गौशालक म खलिपुत्र ही हूँ और भगवान का शिष्य गौशालक जो बना था वह भी मक्त ही हूँ। मक्त श्रमण घातक गुढद्रोही हूँ ।

इस तरह अपने समस्त झूठ कपट दुराग्रहों का सत्य स्पष्टीकरण मृत्यु के क्षणों में उसने कर दिया था और प्रायश्चित्त-पश्चात्ताप रूप में यह भी कह दिया था कि मरने पर मेरे शरीर को मू ज में बा धकर मु ह में थूकना और पूरी नगरी में घुमाकर मेरी निंदा करना कि यह वही गौशालक है, साधुओं का हत्यारा है, तीर्थंकर नहीं था और छद्मस्थ ही मर गया है, केवलज्ञानी नहीं था । इतना सब कुछ कहना अ तिम मृत्यु क्षणों में उसकी आलोचना प्रायश्चित्त रूप हो जाने से और पूरा जीवन अधिकतम तप त्यागमय होने से उसने शुक्ललेश्या में बारहवें देवलोक का आयुष्य बा धकर शुक्ल लेश्या में ही मर कर बारहवें देवलोक में गया ।

देवलोक से २२ सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके बचे हुए पुण्य क्षय करने हेतु एक मानवभव करेगा जहाँ महान ऋद्धिस पन्न राजा बनेगा । राजसी ऐश्वर्य का स्वामी बन कर सुखोपभोग करेगा । वहाँ पर इस भव में की गई तीर्थंकर की आशातना और श्रमण हत्या के पाप फल स्वरूप साधुओं का द्वेषी, महाद्वेषी बनेगा । अ त में पुण्य नष्ट हो जाने पर एक तपस्वी लब्धिधारी आकाशगामिनी विद्याधारी मुनि के कोप से तेजोलेश्या से जलकर भस्म होगा और वहाँ से नरक में जायेगा । यों फिर एक एक नरक में दो दो बार, बीच में मनुष्य तिर्यंच के भव करते हुए जायेगा । यों आगे अन त जन्म मरण अत्य त दु:खमय व्यतीत करेगा ।

प्रश्न-८ : गौशालक ने भगवान के समोवशरण में आने के पहले कोई सूचना कराई थी ? भगवान को सत्य कथन से रोकने का प्रयत्न किया था ?

उत्तर- गौशालक आतापना भूमि से आकर हैरान सा बैठा उपाय सोच रहा कि किसी भी तरह भगवान मेरी पोल खोलना ब द कर दे । अन्यथा मुझे उन्हें लेश्या से खत्म ही कर देना होगा । ऐसे समय में आन द

नाम के भगवान के स त गोचरी लेकर गौशालक के निकट मार्ग से उद्यान में जा रहे थे कि गौशालक ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा कि आन द ! तुम मेरे से एक दृष्टा त सुनो, यों कहकर उसने दृष्टा त कहना शुढ ही कर दिया ।

किसी एक समय कुछ व्यापारी धन कमाने के लिये यात्रा करने निकले । मार्ग में भय कर अटवी आई । आस-पास कोई गाँव नहीं थे । उनके पास पानी समाप्त हो गया, पानी की शोध करते करते उन्हें एक वल्मीक(बा बी) दिखी । जिसके चार सु दर शिखर लगे हुए थे । परस्पर विचार करके वे वहीं रूके और एक शिखर को पानी की आशा से तोड दिया । इच्छानुसार उन्हें सुन्दर मधुर जल प्राप्त हुआ । सब ने प्यास शा त की और अपने पास के जलकु भों में प्रचुर पानी भर लिया ।

परस्पर विचार वार्ता हुई और दूसरा शिखर सोने की इच्छा से तोडा । उसमें भी उन्हें इच्छित प्रचुर शुद्ध सोना हाथ लगा । अपने पास में रहे गाडों में उन्होंने यथेच्छ सोना भर लिया । फिर रत्नों की आशा से तीसरा शिखर तोडा । उसमें भी उन्हें सफलता मिली । इच्छित रत्नों की राशी भी अपने-अपने गाडों में भर ली । उनकी लोभ स ज्ञा और बढी, चौथा शिखर तोडने की विचारणा चली । तब एक अनुभवी हितप्रेक्षी व्यापारी ने इन्कार कर दिया कि हमें इच्छित सामग्री मिल चुकी है । अब चौथे शिखर को नहीं तोडना चाहिए । स भव है इसे तोडना आपत्ति का कारण बन सकता है । उस अनुभवी व्यक्ति ने अपना पूरा आग्रह किया किन्तु बहुमत के आगे उसकी नहीं चली ।

चौथा शिखर तोड दिया गया । उसमें से दृष्टि विष सर्प निकला और वल्मीक के उपर चढकर सूर्य की तरफ देखा और फिर व्यापारी वर्ग की और अनिमेष दृष्टि से देखा । वणिकों को उनके सारे उपकरण सहित जलाकर भस्म कर दिया । जिसने चौथे शिखर को तोडने का मना किया था उस पर अनुक पा करके नागराज देव ने सामान सम्पत्ति सहित उसे उसके नगर में पहुँचा दिया ।

हे आन द! इसी तरह तेरे धर्माचार्य ने बहुत ही ख्याति आदर सम्मान प्राप्त कर लिया है । अब यदि मेरे विषय में कुछ भी कहेंगे तो उस सर्पराज के समान मैं भी अपने तप तेज से सब को जलाकर भस्म कर दूँगा और यदि तूँने मेरा स देश पहुँचा कर मना कर दिया तो मैं भी उस हित सलाह देने वाले वणिक के समान तेरी रक्षा कर दूँगा । अतः जा, तेरे धर्माचार्य को यह मेरी बात कह देना ।

आन द श्रमण ने आकर सम्पूर्ण वार्ता भगवान के समक्ष निवेदन कर दी और पूछा कि हे भगवन! क्या गौशालक के पास इतनी शक्ति है ? भगवान ने उत्तर में स्पष्टीकरण किया कि गौशालक ऐसा करने में समर्थ तो है किन्तु तीर्थंकर पर उसकी शक्ति नहीं चल सकती, केवल परिताप पहुँचा सकता है । हे आन द! गौशालक से अन तगुणी शक्ति श्रमण-निर्ग्रंथों और स्थविरों के पास है किन्तु ये क्षमाश्रमण होते हक्त, ऐसा आचरण नहीं करते । श्रमण-निर्ग्रंथों से भी अन तगुणी शक्ति तीर्थंकरों के पास होती है किन्तु वे भी क्षमाशील होते हक्त, ऐसे हिंसक आचरण वे नहीं करते । अतः हे आन द ! तुम गौतम आदि सभी श्रमणों को सूचित कर दो कि कोई भी श्रमण-निर्ग्रंथ, गौशालक से किंचित् भी धार्मिक चर्चा भी न करे, क्यों कि वह अभी विरोध भाव में चढा हुआ है । आन द श्रमण ने अन्य श्रमणों को सूचना कर दी एव सम्पूर्ण व्यौरा भी बता दिया । गौशालक से न रहा गया । उसका क्रोध उग्र होता गया और वह अपने स घ के साथ में अत्य त खार खाता हुआ वहाँ पहुँच गया ।

गौशालक का उद्देश्य था कि आन द के द्वारा धमकी से हिंसा के अनर्थ से डरकर महावीर मेरी पोल खोलना, लोगों को सच्ची बात कहना ब द कर देंगे और मक्त भी जाकर डराउँगा तो फिर वे मेरी चर्चा में नहीं पडेंगे । किंतु उसका सोचना सही नहीं हुआ । भगवान को सत्य कथन करने में कोई भय का प्रश्न ही नहीं था । गौशालक के सामने आ जाने पर भी दो अणगारों ने और भगवान ने भी गौशालक को सत्य बात ही कही थी कि तूँ वही गौशालक म खलिपुत्र है, फिजुल ही क्यों छिपना चाहता है ? तेरे को ऐसा करना योग्य नहीं है ।

इस प्रकार गौशालक ने देख लिया कि आन द को इतना समझा कर भेजा तो भी इन लोगों ने मेरी सच्ची बात करनी नहीं छोडी । तब उसके पास अब मारक उपाय के सिवाय अपनी सुरक्षा का कोई उपाय नहीं रह गया था । तभी उसने तेजोलब्धि का प्रयोग करना अनिवार्य समझा ।

गौशालक ने अपने को छिपाने के लिये ग गा नदी की रेत के कण-कण की उपमा से देवलोक का आयुष्य बताकर कहा कि मक्त ऐसे देवलोक के भव सात करके आया हूँ और इस मनुष्य भव में भी मक्तने सात पउट्ट परिहार किये हक्त अर्थात् सात शरीरों में प्रवेश किया है और कुछ कुछ वर्ष उन शरीरों में रहकर कुल १३० वर्ष हुए हक्त । यह सातवाँ प्रवेश मक्तने गौशालक के मृत शरीर में किया है । इसे भी १६ वर्ष हो गये हक्त अतः मक्त आपका शिष्य गौशालक नहीं हूँ उसके शरीर में मेरा प्रवेश है । ऐसा झूठा कल्पित घडकर भगवान को एव श्रोताओं को चक्कर में डाल कर वह यह आशा करता था कि भगवान मुझे अपना शिष्य गौशालक मानना कहना छोड दे । किंतु सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु तो उसके खोटे निरूपण को, 'यह बुद्धि का दुढपयोग कर रहा है' ऐसा स्पष्ट जानते थे । अतः उन्होंने गौशालक की इन कल्पित बातों को नहीं स्वीकारा और उसे झूठ ही अपने को छिपाने वाला घोषित करना चालू रखा ।

भगवान तो सर्वज्ञ थे, वे तो हस्तामलक की तरह भावी स्पष्ट जानते थे कि यह गौशालक आखिर निस्तेज बनकर जाने वाला है। अपने खोटे कर्तव्यों का फल स्वय पाने वाला है, सत्य सामने थोडी देर में ही आने वाला है और गौशालक के सेकडों श्रमण एव हजारो लाखों अनुयायी सही तत्त्व को समझ कर सही मार्ग को स्वीकारने वाले हक्त । अतः वैसी वचन फरसना जानकर भगवान ने मौन नहीं रखकर गौशालक को सत्य बात निडरता से बार बार कही कि तूँ झूठा ही छिप रहा है किंतु है तो वही गौशालक, और वही तेरा यह शरीर है; अन्य तूँ कोई भी नहीं है, चाहे कितनी ही ल बी-चौडी झूठी बातें बनाता जा रहा है तो भी तूँ खुद को धोखा दे रहा है,

सर्वज्ञ सर्वदर्शी को झूठा झाँसा देना तो कुछ भी चल नहीं सकता ।

होना यही था गौशालक भगवान पर लेश्या फेंककर खाली-निस्तेज हो गया । भगवान के श्रमण निर्ग्रंथों ने भी फिर भगवान की अनुमति से गौशालक को धर्मचर्चा कर निढत्तर किया । उसे बहुत गुस्सा चढता गया पर तु अब शक्ति विहीन वह स तो का कुछ भी बाल बा का नहीं कर सका । तब कितने ही गौशालक के स तों ने यह सब देखकर गौशालक को छोडकर वहीं भगवान के पास आकर व दन नमस्कार करके भगवान की निश्रा स्वीकार करी और कितनेक स त गौशालक के साथ चले गये ।

सात दिन में गौशालक के मर जाने पर और उसी के स्वय के अपने को गौशालक स्वीकार लिये जाने के बाद भी अनेक सारे श्रमण भगवान के पास पहुँच कर अपनी सच्ची आराधना में लग गये । भगवान तो सर्वज्ञ होने से यह सब परिवर्तन होना पहले से ही जानते थे । भगवान ने तो ज्ञान में जो फरसना देखी वैसा ही सारा वचन आदि व्यवहार किया, उनमें तो राग-द्वेष-आवेश तो कुछ भी नहीं था । छद्मस्थ काल में स गम के ६ महीने भय कर कष्ट देने पर भी भगवान तो तटस्थ रहे थे । तो अब तो भगवान के मोह, अज्ञान कर्म सर्वथा नष्ट थे, उनमें शा ति, समभाव, ग भीरता का कोई अ त ही नहीं था । फिर भी यह सारी घटना होनहार के अनुसार बने, उसे कोई सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान भी टाल नहीं सकते । अरिष्टनेमि भगवान की उपस्थिति में गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर दीक्षा के प्रथम दिन कोई धधकते अ गारे रखकर मृत्यु कष्ट पहुँचादे तो भी उसे तीर्थंकर टाल नहीं सकते हत्त अत: ऐसी अनहोनी घटनाएँ तो होती रहती है । उसे रोकना किसी के हाथ में नहीं है ।

प्रश्न-९ : गौशालक के श्रावकों में या साधुओं में कोई सही सलाह देने वाला नहीं था ?

उत्तर- प्राय: करके एक सरीखे मिथ्यात्व अज्ञान के उदय वालों का समूह बन जाया करता है । सभी अपने समूह की खामियाँ निभाने के मानस वाले ही प्राय: होते हत्त । कोईक सत्यनिष्ठ प्रकृति का मानव

हो तो वह ऐसे स घ में से निकल जाता है । अत: गोशालक ने जो मन भाया वह चलाया, खोटे निरूपण किये, कल्पित बातें बनाई, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ की, अनर्गल बकवास किया और भगवान पर बहुत खीज-खीजकर तिरस्कारात्मक शब्द बोलकर डराने का धमकी देने का प्रयत्न किया । आदमी बहुत क्रूर बन जाता है तब कोई उसका सामना नहीं करना चाहता है । पक्षाग्रह वृद्धि और मोह भाव घुस जाता है तो भी कोई विरोध नहीं करता है तथा पुण्योदय का जोर हो या शक्ति का जोर हो तब तक भी व्यक्ति जो चलावे वह चल जाता है । ऐसी ही हालत गौशालक की बनी थी । उसके समस्त प्रपोग डों का अ त निकट आ गया था । इसी से एक ही नगर में भगवान और गौशालक का स योग बना ।

गौतमस्वामी तो सदा जिस तरह प्रश्न पूछते थे उसी तरह स्वाभाविक प्रश्न पूछा था और भगवान तो निश्चयज्ञानी, त्रिकालज्ञानी थे, अत: स्वाभाविक ही समाधान किया । उसमें गौशालक की गुप्तता एव असत्यता का प्रगट हुई । एक श्रावक 'अय पुल' ने गौशालक को अपने उपाश्रय में तेजोलेश्या से पीडित पागल जैसा व्यवहार करते हुए और आम खाते देखा, तब उसे कुछ अटपटा लगा । वह बिना व दन दर्शन किये वापिस घर लौट रहा था तो एक श्रमण ने उसे अपने पास बुलाकर उसे वापिस आकर्षित किया और श्रद्धान्वित बनाकर गोशालक के पास भेजा और गोशालक ने भी बातें बना कर उसे श्रद्धान्वित रखा । कोई श्रावक कहो या न कहो, उसके मरजाने पर स्वत: सारा न्याय हो गया । हठाग्रही और दुराग्रही अभिनिवेषी प्रकृति वालों को छोडकर बाकी सभी गौशालक के श्रावक और साधु और स पूर्ण स घ बिखर गया । भगवान महावीर ने तो उसके बाद भी १६ वर्ष केवल पर्याय में विचरण किया और अनेक हलुकर्मी जीवों ने प्रभु से सन्मार्ग प्राप्त कर आत्म कल्याण किया ।

प्रश्न-१० : एक धर्म सभा का स्थान हत्याका ड का स्थान बना जिसका आम जनता में क्या प्रतिभाव हुआ ?

उत्तर- कहीं भी हत्याका ड होवे तो वैर विरोध, हल्ला-गुल्ला, लडाई

झगडे, सा प्रदायिक झगडे बहुत जोर पकड लेते हक्त । किंतु इस प्रस ग में ऐसा कुछ हुआ नहीं । क्यों कि बहुत ही शिस्तबद्ध और एक तरफी आक्रोश था तथा अचानक बनाव हुआ पहले से कोई योजनाबद्ध या कूटनीति राजनीति वगैरह कुछ भी माहोल था नहीं । गौशालक भी अकेला ही बोलता जा रहा था उसकी तरफ से भी बीच में किसी साधु-श्रावक ने भाग नहीं लिया। भगवान की तरफ से तो परम शा तिमय सचोट सत्य शालीनता का प्रत्युत्तर था । दो साधु बीच में बोले भी किंतु असभ्यतापूर्ण या आक्रोशमय प्रतिकार रूप में या शेर को सवा शेर के रूप में नहीं किंतु सुझाव हितशिक्षा के वचनों में शालीनता का उनका वक्तव्य था । किसी को बुरा लगे ऐसे वचन नहीं थे । उन्हें भी अकेले गौशालक के द्वारा तत्काल मार दिया गया । तो वह बात वहीं समाप्त हो गई ।

भगवान की तरफ से किसी ने किसी को उकसाया नहीं । दोनों तरफ की परिषद पूर्ण चुप साधे थी और जनता भी थोडी थी । दुपहर का समय था और गोचरी के समय के बाद तुर त २-३ घ टे में ही सारी घटना समाप्त हो गई । गौशालक ने भी हार खा जाने से फिर कोई झगडा बढाया नहीं, निंदा क्लेश का वातावरण किया नहीं किंतु खुद की वेदना, आफत से उपायपूर्वक शा ति से निपटने का तरीका अपनाया । सात दिन में मिटिंगे भरनी; विरोध, प्रचार, भाषण करना आदि कुछ नहीं किया । सारा मामला गमगीन सा बन गया था । कुछ लोगों में थोडी चर्चा रही कि दो तीर्थंकर महात्मा आपस में झगड रहे हक्त । एक कहे तूँ छ महीने में मर जायेगा, तो दूसरा कहे कि तूँ सात दिन में मर जायेगा ।

यह माहोल भी भोले अनजान लोगों में रहा । क्यों कि धर्मी और ज्ञानी लोग तो समझते ही थे कि महावीर प्रभु २४ वें तीर्थंकर है । उन्होंने कोई हिंसात्मक या क्रोधात्मक व्यवहार तो किया ही नहीं है। वे तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हक्त्औैर सात दिन में गौशालक खुद ही सत्य म जूर कर के मर गया तो सहज अधिकतम वातावरण तो सुधर ही गया । फिर भी दुनिया के लोग तो दुर गी व्यवहार वाले होवे इसमें कोई नवीन नहीं है । इतनी बडी घटना का थोडा बहुत माहोल हो भी सकता है किंतु पीछे नये प्रपोग डे करके बढावा देने का कोई

वातावरण नहीं था । अतः अल्प समय में ही वह नजारा समाप्त हो गया होगा ।

प्रश्न-११ : गौशालक ने भगवान को छ महीने में मर जाने का कहा था उसका क्या हुआ ?

उत्तर- गौशालक ने गुस्से ही गुस्से में पूरा उपयोग नहीं लगाया । अधूरे ज्ञान से उतावल में कह दिया था । वास्तव में भगवान को उस तेजोलेश्या की प्रतिछाया का असर शरीर में हुआ था । जिससे भगवान छ महीना तक अस्वस्थ रहे, फिर भी श्रावस्ति नगरी से यथासमय विहार कर दिया । विचरण करते हुए **मेंढिकग्राम** नामक नगर में पधारे । पूर्व घटना को छ महीने करीब होने जा रहे थे । भगवान के शरीर में महान पीडाकारी दाहकारक पित्तज्वर उत्पन्न हुआ अर्थात् भगवान का शरीर महान रोगात क से आक्रा त हो गया । उस रोग के कारण खून-रसी की दस्तें भी होने लगी । इस स्थिति को देखकर लोगों में चर्चा होने लगी कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी गौशालक के तप तेज से आक्रांत होकर दाह पित्तज्वर से अब छद्मस्थ ही काल कर जायेंगे ।

सि हा अणगार का ढदन- बगीचे में एक तरफ भगवान का अ तेवासी भद्र, विनीत, सि हा नामक अणगार आत्म ध्यान साधना कर रहे थे एव आतापना ले रहे थे । उनके कानों में उक्त लोकापवाद के शब्द पडे । सि हा अणगार को स कल्प-विकल्प होने लगे कि भगवान के शरीर में प्रच ड वेदना उत्पन्न हुई है और वे छद्मस्थ ही काल कर जायेंगे इत्यादि ऐसी मानसिक महान व्यथा से वे पीडित हुए । आतापना भूमि से बाहर आये और एक तरफ जाकर अपने दुःख के अतिरेक में अत्य त ढदन करने लगे ।

भगवान ने श्रमणों को भेजकर सि हा अणगार को अपने पास बुलाया और समझाया कि ऐसा आर्तध्यान करना उपयुक्त नहीं है । मैं अभी साडे प द्रह वर्ष विचरण करूँगा । तुम रेवती सेठाणी के घर जाओ । उसने मेरे उद्देश्य से जो कोल्हापाक बनाया है, वह नहीं लाना किन्तु जो अपने घोडों के उपचार हेतु पहले से(कई दिन पहले) बिजोरा पाक बनाया था जिसमें से कुछ बचा हुआ पडा है, वह लेकर आओ ।

रेवती का सुपात्र दान एव रोग निवारण– भगवान की आज्ञा होने पर सि हा अणगार रेवती सेठाणी के घर गये । सेठाणी ने आदर सत्कार के साथ आने का प्रयोजन पूछा । (क्यों कि उस समय भिक्षा का समय नहीं रहा था) सि हा अणगार ने अपना प्रयोजन कह दिया कि भगवान के लिये जो कोल्हापाक बनाया है वह तो नहीं चाहिये किन्तु बिजोरा पाक चाहिये । रेवती ने अपनी गुप्त वार्ता को जानने का हेतु पूछा । सि हा अणगार ने भगवान के ज्ञान का परिचय दिया । फिर रेवती ने भक्तिपूर्वक बिजोरापाक बहराया । भावों की, दान की एव पात्र की यों त्रिकरण शुद्धि से उस रेवती सेठाणी ने देवायु का ब ध किया एव स सार परित्त किया । वहाँ भी प च दिव्य प्रकट हुए । सि हा अणगार भगवान की सेवा में पहुँचे एव वह बिजोरापाक भगवान के कर कमलों में अर्पित किया । भगवान ने अमूर्च्छाभाव से उस आहार के पुद्गलों को शरीर रूपी कोठे में डाल दिया । उस आहार के परिणमन होने पर भगवान का रोग शीघ्र उपशा त हुआ । शरीर स्वस्थ होने लगा । अल्प समय में ही भगवान आरोग्यवान एव शरीर से बल सम्पन्न हो गये । चतुर्विध स घ में प्रसन्नता की लहर फैल गई । यहाँ तक कि अनेक देव-देवी भी खुश-खुश हो गये कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी स्वस्थ हो गये हक्त । फिर भगवान पूर्ववत् धर्मोपदेश देते हुए ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे ।

प्रश्न-१२ : इस शतक में अन्य भी जानने योग्य एव मनन करने योग्य तत्त्व क्या-क्या है ?

उत्तर– अन्य ज्ञातव्य एव मननीय तत्त्व इस प्रकार हक्त-**(१)** निम्नस्तरीय व्यक्ति में भी अपार मनोबल एव बुद्धि बल हो सकता है । एक भिक्षाचर के पुत्र गौशालक ने त्रिलोकीनाथ भगवान महावीर से विरोधी बनकर बराबरी की टक्कर ली थी । **(२)** पूर्ण असत्य पक्षी होते हुए भी गौशालक की ढीठता उत्कृष्ट दर्जे की थी कि आन द को बुलाकर दृष्टा त द्वारा समझाया । भगवान के सामने आकर भी बेहद सीनाजोरी दिखाई । शक्ति विफल हो जाने पर भी यह कह गया कि ६ महीने में तुम मर जाओगे । **(३)** एक ढोंगी व्यक्ति कितने कपट प्रप च सिद्धा त कल्पनाएँ घड सकता है, यह गौशालक के जीवन से अनुभव करने

को मिलता है । उसने अपने को छिपाने के लिये कितने शरीर प्रवेश, नाम, वर्ष आदि की कल्पनाएँ जोडी । आठ चरम, पानक, अपानक कल्पित घडे और लोगों को आकर्षित करने हेतु कई झूठे प्रपोग डे किये और लगभग जीवन में सर्वत्र उसे सफलता मिली । भगवान के जहाँ २-३ लाख उपासक थे तो गौशालक को तीर्थंकर मानकर उपासना करने वालों की स ख्या ११ लाख हो चुकी थी । फिर भी खोटा तो खोटा ही रहता है । पाप का घडा एक दिन अवश्य फूटने वाला होता है । जब उसका पाप चरम सीमा में पहुँच गया, दो श्रमणों की हत्या के पाप से भारी बन गया तो स्वय की लेश्या से ही मारा गया और अ त में हार गया, असफल हो गया, फैल हो गया । **(४)** गौशालक और उसके स्थविरों के पास निमित्त ज्ञान के अतिरिक्त किसी के मन की बात जानने की अदभुत शक्ति भी थी । तभी तो अय पुल श्रावक को रात्रि में उत्पन्न हुए मन के प्रश्न को स्वतः जान लिया । **(५)** अ तिम उम्र तक भी गौशालक आतापना एव तपस्या में स लग्न रहता था । आतापना भूमि से उतर कर ही वह कु भारशाला में आया था, तभी आन द श्रमण को बुलाकर दृष्टा त सुनाया था ।

(६) भगवान के प्रति पूर्ण भक्ति और अर्पणता के साथ ही गौशालक ने शिष्यत्व स्वीकार किया था किन्तु वह ४-५ वर्ष तक भी उसे पूरा निभा नहीं सका । क्यों कि मूल में वह एक अयोग्य और अविनीत उद्दड प्रकृति का व्यक्ति था । इसी कारण विहारकाल में वेश्यायन तपस्वी की छेड-छाड जैसे कई प्रस ग उसके साथ बने थे । उसे दीक्षित करने में भगवान का कोई स्वार्थ नहीं था । उसका आग्रह और स्पर्शना(भावी) जानकर उसे स्वीकार किया । केवलज्ञान के बाद गौतमस्वामी के पूछने पर भी उसकी जो चर्चा चलाई गई, उसमें भी वैसी स्पर्शना एव गौशालक के अनेक श्रमण-श्रावकों का शुद्ध धर्म में आना आदि अनेकों कारण रहे होंगे । वास्तव में सर्वज्ञ प्रभु त्रिकाल ज्ञाता होते हक्त, वे ज्ञान के अनुसार यथोचित आचरण एव भाषण ही करते हक्त । **(७)** गौशालक के अनर्गल हिंसक क्रूर व्यवहार पर भी भगवान का एव उनके श्रमणों का जो भी वर्णन है, उसमें उनकी भाषा,

व्यवहार एव भावों का अनुप्रेक्षण करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे श्रमण पूर्ण स यमित थे । कहीं भी गौशालक के प्रति असभ्य वचन तिरस्कार का व्यवहार या गलत मानस की ग ध तक भी नहीं थी । एक उत्कृष्ट दर्जे के विरोधी एव निरपराध श्रमणों की हत्या करने वाले के साथ छती शक्ति अत्य त शा तिपूर्ण उनका व्यवहार था । जो कि अपने आप में एक महान शा ति का आदर्श है। गौशालक से भी विशिष्ट शक्ति और लब्धिधारी श्रमण वहाँ थे । किन्तु किंचित् भी आवेश, रोष का वातावरण भगवान की तरफ से नहीं हुआ था । दो श्रमण गौशालक के सामने आये भी किन्तु उनके व्यवहार में आवेश या आवेग का नामोनिशान भी नहीं था, केवल शिक्षा वचन, स बोधन था । उनके मरण प्रस ग को प्रत्यक्ष आँखों के सामने देखते हुए, किसी भी साधु–श्रावक या देवों ने आवेश का व्यवहार, धमकी, बदला लेना आदि कुछ भी नहीं किया ।

यह है जिनवाणी के आराधकों की क्षमता, शा ति का अद्‌भुत स देश । यही स देश हमारे जीवन में उतर जायेगा और उससे सच्ची शा ति उत्पन्न होगी, तभी हमारा जिनवाणी प्राप्त करना, सच्चे अर्थों में सफल होगा । गौशालक ने अनेक गाली गलोच, अनर्गल बकवास, क्रोधा ध होकर किये । उसमें से किसी का भी उत्तर सर्वानुभूति अणगार या सुनक्षत्र अणगार ने अथवा भगवान ने नहीं दिया अर्थात् उसकी बराबरी नहीं की किन्तु केवल सीमित शब्दों में उचित शिक्षा और सत्य कथन ही किया ।

(८) गौशालक के भावी वर्णन में १८ भवों में स यम ग्रहण का वर्णन है किन्तु भगवती सूत्र शतक–२५ में बताया गया है कि कोई भी निय ठा आठ भव से ज्यादा प्राप्त नहीं होता है । सामायिक आदि चारित्र भी आठ भव से अधिक भव में नहीं हो सकते । अत: अभवी के स यम क्रियाराधन से नवग्रैवेयक में अन तबार जाने के समान ही यहाँ गौशालक के भी दस भव समझ लेने चाहिये और बाद के आठ भव स यम सहित अवस्था के समझने चाहिये । सूत्र में द्रव्य क्रिया की अपेक्षा ही **विराधित श्रामण्य** कहा गया है, ऐसा मानना चाहिये । **(९)** नृस श प्रवृत्तियों से युक्त होते हुए भी गौशालक का महातपस्वी

जीवन था एव अ तिम समय में सम्यक्त्व युक्त शुद्ध परिणाम आ गये थे, जिस कारण से ही उसे अन तर देव भव एव पर पर मनुष्य भव में पुण्य का उपभोग प्राप्त हुआ और होगा । उसके बाद के भवों में सारे पाप कर्मों का साम्राज्य चलेगा । **(१०)** तीर्थंकर भगवान केवल ज्ञान के बाद भी श्रमणों के पात्र में नहीं खाते थे किन्तु उनसे म गाकर हाथ में ही आहार करते थे । **(११)** भगवान के औषध ग्रहण का पाठ लिपिकाल में किसी भी दुर्बुद्धि मानसों के द्वारा विकृत किया गया है और कूर्कट मा स, कबूतर मा स ऐसे अर्थ वाले शब्दों को स योजित किया गया है । ऐसे भ्रमपूर्ण अर्थ वाले शब्दों को गणधर रचित मानना एक भ्रम है, गहरी भूल है, चाहे कितने ही वनस्पति परक अर्थ किये जाय किन्तु शब्द और भाषा के कोविद (निष्णात)गणधरों द्वारा ऐसे भ्रममूलक शब्दों का गुथन शास्त्र में मानना ही अपने आप में अयोग्य निर्णय है । मध्यकाल में ऐसे अनेकों प्रक्षेप आदि के प्रहार धर्म एव आगमों पर हुए हक्त । उसी में की ही यह एक विकृति है । इसका स शोधन नहीं करना, मानों लकीर के फकीर बनने की उक्ति को चरितार्थ करने के समान ही है । जैन आगम स पादकों, स शोधकों को इस और अवश्य ध्यान देना चाहिये । विशेष जिज्ञासा हेतु आगम सारा श पुष्प–२१–२२ में ऐतिहासिक स वाद एव निब धों का अध्ययन करना चाहिये ।

(१२) चौथे आरे में एव सतयुग में तीर्थंकरों की उपस्थिति में ऐसी घटनाएँ हो जाने पर भी धर्मिष्ठ लोग अपनी श्रद्धा टिकाये रखते थे । धर्म से पलायन नहीं करते थे । तो आज प चम काल में ज्ञानियों की अनुपस्थिति में कोई घटित को देखकर हमें किसी के पीछे अपनी श्रद्धा, आचरण,त्याग तप आदि किंचित् भी नहीं छोडना चाहिये और न ही कभी **किं कर्तव्य विमूढ** बनना चाहिये । यह स सार है, इसमें कई होनहार होते ही रहते हक्त । हमें तो गिरना नहीं किन्तु चढना ही सीखना चाहिये । **(१३)** सौग ध सपथ दिलाने की व्यवहारिक प्रथा भी प्राचीन काल से चली आ रही है । गौशालक ने भी मरते समय अपने शिष्यों को सौग ध दिलाकर आदेश दिया था । जिसका कि उन्होंने द भ के साथ पालन किया था, सही रूप में पालन नहीं किया था । श्रावस्ति नगरी का नक्शा होल में चित्रित करके उसी में घुमाया

और मूँह में थूकते हुए गौशालक के कहे अनुसार घोषणा करी । **(१४)** गौशालक के निमित्त ज्ञान, आडंबर एव मन की बात को जानकर बताने की क्षमता से ही उसका शिष्य परिवार बढता गया था । यहाँ तक कि २३ वें तीर्थंकर के शासन के अनेक साधु भी उसे २४ वाँ तीर्थंकर ही समझ कर उसके शासन में मिल गये थे । **(१५)** गौतमस्वामी के पूछने पर भगवान ने गौशालक का भूत भविष्य वर्णन बताया था और वर्तमान घटना को उपस्थित श्रमणों ने प्रत्यक्ष देखा था । भूतकाल के छद्मस्थ काल की घटना का वर्णन करते हुए भगवान ने अनेक जगह **अह** शब्द के प्रयोग से कथन किया है । वेश्यायन तपस्वी की तेजोलेश्या से गौशालक को बचाने के वर्णन में भी भगवान ने गौतम स्वामी से स्पष्ट कहा कि हे गौतम! तब **मैंने** गौशालक म खलीपुत्र की अनुक पा के लिये शीत लेश्या से तेजोलेश्या का प्रतिहनन किया और आगे के वर्णन में गौशालक के पूछने पर उसको भी इन्हीं शब्दों में कहा कि- तब हे गौशालक! **मैंने** तेरी अनुक पा के लिये वैश्यायन बाल तपस्वी की तेजोलेश्या को बीच में प्रतिहत किया । यों ऐसा कथन भी भगवान ने केवली अवस्था में दो बार किया किन्तु कहीं यह नहीं कहा कि- **मैंने गौशालक को छद्मस्थता की भूल से मोहवश बचाया ।** अत: अनुकम्पा तो सर्वत्र आदरणीय ही समझनी चाहिये । अनुक पा स ब धी विवरण के लिये पुष्प १२ एव २१ देखना चाहिये ।

(१६) भगवान और गौशालक के बीच हुए कई व्यवहारों से तर्क शील मानस में कई उलझन पूर्ण प्रश्न खडे होते हक्त कि (१) चार ज्ञान सम्पन्न भगवान ने उसे अपने साथ रखा ही क्यों ? (२) तिल स ब धी प्रश्नों का उत्तर ही क्यों दिया जिससे विराधना हुई । (३) स्वत: अपने ही कर्तव्य से वह गौशालक वैश्यायन बाल तपस्वी की तेजोलेश्या से मर रहा था, उसे शीत लेश्या से भगवान ने बचाया ही क्यों ? सुनक्षत्र और सर्वानु- भूति अणगार को नहीं बचाया तो इसमें भगवान को क्या दोष लगा ? कुछ भी दोष नहीं लगा । इसी तरह गौशालक को नहीं बचाते तो भी भगवान को कोई दोष नहीं लगता । बचाने से तो वह जीवित रहा और स्वत: ही २४ वाँ तीर्थंकर बना,

कितने ही लोगों को भ्रमित किया, महापाप किये । जिस प्रकार सुम गल अणगार विमलवाहन राजा के रूप में गौशालक को भस्म करेगा ही और अणुत्तर विमान में जायेगा । वैसे ही कोई भगवान के लब्धिधारी श्रमण गौशालक को पहले ही कभी भी कुछ भी शिक्षा दे सकते थे। जिससे समवसरण में ऐसा प्रस ग आता ही नहीं । अनेक इन्द्र आदि भी गौशालक के प्रपोग डो को रोक नहीं सके, ऐसा क्यों ? जब कि सभी इन्द्र सम्यग्दृष्टि है; दृढधर्मी प्रियधर्मी है, एक भव करके मोक्ष जाने वाले हक्त ।

इत्यादि अनेकानेक प्रश्नों का समाधान यही है कि भगवान और गौशालक का कुछ ऐसा ही स योग निबद्ध था । विशिष्ट ज्ञानियों के आचरणों के विषय में छद्मस्थों को स कल्प-विकल्प करना ही नहीं चाहिये । क्यों कि वे शाश्वत ज्ञानी भवितव्यता को देख लेते हक्त । भूत-भविष्य को जानकर ही तदनुरूप वैसा आचरण करते हक्त । यथा सुम गल अणगार ने भी पहले ज्ञान से देखा कि यह विमलवाहन राजा ऐसा दुर्व्यवहार क्यों कर रहा है, इसका भूत- भविष्य क्या है ? इसी प्रकार भगवान ने एव ता को दीक्षा दी । भले ही उसने कच्चे पानी में पात्री तिराई । जमाली को भगवान ने दीक्षा तो दे दी किन्तु विचरण की आज्ञा मा गने पर मौन रहे इत्यादि ज्ञान में फरसना देख कर ही वे प्रवृत्ति करते हक्त । छद्मस्थों के तर्क की यहाँ गति नहीं होती है । अत: ऐसे-ऐसे विविध प्रश्न हमारे अनधिकार गत है ।

निश्चय ज्ञानियों का प्रत्येक व्यवहार ज्ञान सापेक्ष होता है और हमारा छद्मस्थों का व्यवहार बुद्धि सापेक्ष होता है एव सूत्र सापेक्ष होता है। यह भिन्नता जानकर ज्ञानियों के ज्ञान सापेक्ष आचरणों स ब धी उक्त प्रश्नों का या ऐसे और भी अन्य प्रश्नों का समाधान स्वत: कर लेना चाहिये ।**(१७)** म ख जाति के भिक्षाचर लोग भी चातुर्मास में भ्रमण नहीं करते थे और भिक्षाचर होते हुए भी सपत्नी भ्रमण करते थे एव चित्रफलक दिखा कर भिक्षा से आजीविका करते थे ।

गौतमस्वामी ने सर्वानुभूति, सुनक्षत्र अणगार तथा गौशालक की गति और भविष्य स ब धी पृच्छा ६ महीने के बाद भगवान के

स्वस्थ होने पर करी थी । बीच के ६ महीने तक वे प्रश्न नहीं किये थे । इससे ज्ञात होता है कि गौशालक की लेश्या भगवान के शरीर में प्रविष्ट नहीं हुई किंतु बाह्य उष्णता के स्पर्श से भी भगवान ६ महीना कुछ अस्वस्थ तो रहे ही और छ महीनों के अ त में दाहज्वर बढा, पित्तविकार बढा एव लोही की दस्तें होने लगी । औषध सेवन से भगवान स्वस्थ हो गये फिर ही गौतमस्वामी ने तीनों की गति स ब धी प्रश्न किये ।

प्रश्न-१३ : इस शतक में तथा अन्य आगमों में भगवान के चातुर्मास, विचरण एव तपस्या स ब धी क्या वर्णन है ?

उत्तर- आगम के आधार से भगवान का विचरण तथा तपस्या इस प्रकार है-

भगवान की दीक्षा	क्षत्रियकु ड ग्राम में	आचारा ग
प्रथम विहार विश्राम	कुर्मारग्राम	आचारा ग
केवलज्ञान	जृम्भिकग्राम नगर	आचारा ग
प्रथम चौमासा	आस्थिकग्राम	शतक-१५
दूसरा चौमासा	नाल दा(राजगृही)	शतक-१५
दूसरे चौमासे का विहार	कोल्लाक सन्निवेश	शतक-१५
गौशालक शिष्य हुआ	प्रणीतभूमि(कोल्लाक-नगर के बाहर)	शतक-१५
आठवें चौमासे बाद	सिद्धार्थग्राम से कूर्मग्राम विचरण	शतक-१५

तपस्या-

समय	तप	प्रमाण
(१) दीक्षा समय	छठ	आचारा ग
(२) केवलज्ञान समय	छठ	आचारा ग
(३) प्रथम वर्ष	१५-१५ की तपस्या	शतक-१५
(४) द्वितीय वर्ष	मासखमण निर तर	शतक-१५

आगम तथा ग्र थों के आधार से भगवान के **४२ चातुर्मास** और तप इस प्रकार है- (१) अस्थिकग्राम(मोराकग्राम) (२) नाल दा (राजगृही) (३) च पानगरी (४) पृष्ट च पा (५) भद्दिलपुर (६) भद्रिकापुरी (७) आलभिका नगर(८) राजगृही (९) अनार्यक्षेत्र (वज्र-शुभ्रभूमि में) (१०) श्रावस्ती (११) विशालानगरी (१२) च पानगरी । केवलज्ञान बाद प्रभु ने २ चौमासे च पा में, १२ नाल दा-राजगृही में, ११ विशाला में, ४ मिथिला में, १ पावापुरी में= ये ३० चातुर्मास ।

तपस्या- छ मासी तप-१ । ५ महीना और २५ दिन-१ । चौमासी तप-९ । त्रैमासिक तप-२ । ढाई महीना तप-२ । दोमासी-६ । मासखमण-१२ । प द्रहदिन-७२ । बेला(छठ)-२२९ । तेला-१२ । भद्रप्रतिमा-२ उपवास से, महाभद्रप्रतिमा-४ उपवास से, सर्वतोभद्र प्रतिमा-१० उपवास से पूर्ण करी ।

शतक-१६ : उद्देशक-१ से १४

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १४ उद्देशकों द्वारा वर्णन किया गया है, जिसमें ७ उद्देशकों में स क्षिप्त सूचन है और सात में कुछ-कुछ विषय है । शतक के प्रार भ में एक स ग्रहणी गाथा है जिसके अनुसार १४ उद्देशकों के नाम और विषय इस प्रकार है-

(१) अधिकरणी- इस उद्देशक में 'एरण'स ब धी वायुकाय की अयतना, लोहे की भट्ठी आदि स ब धी क्रियाएँ (कायिकी आदि)और जीव के अधिकरणी होने स ब धी विषय निरूपित है ।

(२) जरा- इसमें शारीरिक दुःख(जरा) और मानसिक दुःख (शोक)का, पाँच अवग्रह, शक्रेन्द्र की भाषा, एव कर्म स ब धी निरूपण है ।

(३) कर्मब ध- कर्मब ध का स क्षिप्त वर्णन है और साधु के मसा-अर्श स ब धी उपचार का वर्णन है ।

(४) यावतिक(अधिकरणी)- इसमें तपस्वी श्रमण और नारकी की कर्म निर्जरा स ब धी निरूपण है ।

(५) ग गदत्त– शक्रेन्द्र के प्रश्न और सातवें देवलोक के ग गदत्त देव स ब धी प्रश्न-उत्तर है ।

(६) स्वप्नदर्शन– स्वप्नों स ब धी विविध वर्णन है ।

(७) उपयोग– उपयोग और पश्यता स ब धी स क्षिप्त सूचन है ।

(८) लोक– लोक के चरमा त आदि में जीवों-अजीवों का अस्तित्व, वर्षा में हाथ निकालने एव अलोक में हाथ निकालने स ब धी वर्णन है ।

(९से१४)– बलीन्द्र, अवधिज्ञान और द्वीप, दिशा, उदधि एव स्तनित कुमार स ब धी स क्षिप्त सूचन है ।

प्रश्न-२ : अधिकरणी शब्द स ब धी दो प्रकार से निरूपण किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– (१) अधिकरणी यह एरण का पर्याय शब्द है । एरण पर घन की चोट मारने पर अचित्त वायु की उत्पत्ति होती है और उससे सचित्त वायु की विराधना होती है । बाद में वह अचित्त वायु भी सचित्त हो जाती है । इस प्रकार कोई भी वस्तु-पदार्थ के आपस में टकराने से, आघात लगने से वायुकाय की विराधना होती है । शतक-३, उद्दे.३ अनुसार सक प=हलन-चलन जहाँ जब तक है वहाँ भी वायुकाय की विराधना(सावद्यप्रवृत्ति) होती है । क पन्न से होने वाली सूक्ष्म विराधना और आघात-प्रत्याघात से होने वाली स्थूल विराधना वायुकाय की है । इस प्रकार परनिमित्तक की अपेक्षा वायुकाय की मृत्यु कही है । इसके अतिरिक्त स्थावर नाल में या जहाँ अन्य स्थूल जीव कोई भी नहीं होते वहाँ भी पोलार में बादर वायुकाय के जीव स्वतः उत्पन्न होते हक्त और आयुष्य पूर्ण होने पर स्वतः मरते भी हक्त ।

अग्नि के जीवों की उम्र तीन अहोरात्रि की उत्कृष्ट होती है । अन्य अग्नि के जीवों की उत्पत्ति-मरण चालु रहने से भट्ठी वगैरह में वर्षों तक भी अग्नि चालु रह सकती है ।

भट्ठी में तप्त लोहे को लोहार अपने साधनों से इधर-उधर करे, पकडे तब लुहार को, सभी काम आने वाले उपकरणों-साधनों के जीवों को, भट्ठी-सिगडी के जीवों को, अग्नि जीवों स ब धी पाँच क्रिया कायिकी आदि लगती है । एरण पर गर्म वस्तु रखकर कूटने से

लुहार को, लुहारशाला के जीवों को, साधनों स ब धी जीवों को पाँच क्रिया लगती है । यह एरण रूप अधिकरणी स ब धी कथन है ।

(२) जीव अधिकरणी है और शरीर इन्द्रिय, योग आदि उसके साधन अधिकरण है । जीव साधिकरणी ही होता है, निरधिकरणी नहीं होता है । जीव आत्माधिकरणी, पराधिकरणी और उभयाधिकरणी तीनों होता है अविरत की अपेक्षा । ५ शरीर, ५ इन्द्रिय एव तीन योग का निवर्तन करता हुआ जीव अधिकरणी अविरति की अपेक्षा है तथापि आहारक शरीर के निवर्तन में जीव अधिकरणी प्रमाद प्रत्ययिक होता है । क्यों कि अविरत जीव आहारक शरीर नहीं बनाते है । इस प्रकार यहाँ प्रथम उद्देशक में अधिकरणी शब्द दो प्रकार के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३ : जरा और शोक से यहाँ क्या आशय लिया गया हे?

उत्तर– जरा = कायिक दुःख को यहाँ **जरा** शब्द से कहा गया है और शोक = मानसिक दुःख को यहाँ **शोक** शब्द से कहा गया है। पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय जीवों में एक मात्र **जरा** ही कही गई है । बाकी प चेन्द्रिय सभी द डकों में जरा और शोक दोनों ही कहे हक्त । ऐसी अपेक्षा से यहाँ दूसरे उद्देशक में निरूपण है ।

प्रश्न-४ : श्रमणों के अवग्रह कितने प्रकार के होते हक्त? उसको लेकर शक्रेन्द्र स ब धी क्या-क्या वर्णन है ?

उत्तर– श्रमणों के ५ अवग्रह आचारा ग सूत्र में कहे हक्त । यहाँ उद्देशक-२ में प्रवचन के पश्चात् व दन करके शक्रेन्द्र के पूछने पर भगवान ने वे ही ५ अवग्रह समझाये, उसमें शक्रेन्द्र का अवग्रह जानकर उसने भगवान को सभी श्रमणों के लिये अपने आधिपत्य के दक्षिण लोक में अर्थात् भरतक्षेत्र में विचरण करने की एव कल्पनीय पदार्थों की आज्ञा दी । आज्ञा देकर व दन नमस्कार करके इन्द्र चला गया । फिर गौतमस्वामी के पूछने पर भगवान ने फरमाया कि शक्रेन्द्र या देव सत्य आदि चारों भाषा बोलते हक्त । सावद्य-निर्वद्य भी दोनों भाषा बोलते हक्त । शक्रेन्द्र या अन्य कोई भी व्यक्ति वस्त्र से मु ह ढाँके बिना बोलता है तो उसकी भाषा **सावद्य** कही गई है। वर्तमान का शक्रेन्द्र

भवी है एव एक भव करके मोक्ष जायेगा ॥ उद्देशक–२ स पूर्ण ॥

प्रश्न–५ : अभिग्रह युक्त कायोत्सर्ग में खडे मुनि की कोई वैद्य शल्य चिकित्सा करे तो उसका व्रत भ ग होता है ?

उत्तर– आधे दिन शरीर एव अ गोपा ग हिलाने के त्यागी कायोत्सर्ग में स्थित मुनि के **मसा** लटकता देखकर कोई वैद्य अनुक पा, सेवा भाव से मुनि को सुलाकर शल्य चिकित्सा करे तो मुनि उसकी अनुमोदना भी नहीं करे तो मुनि को कोई क्रिया या व्रत भ ग का दोष नहीं लगता है, किंचित्मात्र धर्मध्यान का अ तराय होता है ॥ उद्देशक–३ स पूर्ण ॥

प्रश्न–६ : अमनोज्ञ आहार, उपवास, बेला, तेला का फल क्या है ?

उत्तर– (१) एक दिन अमनोज्ञ–नीरस–रूक्ष या बासी अथवा उच्छिष्ट आहार करने वाला श्रमण जितने कर्मों का क्षय करता है नैरयिक उतने कर्मों को अपार दु:ख भोगते हुए सौ वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता है । (२) एक उपवास के द्वारा श्रमण के जितने कर्म क्षय होते हक्त उसे नैरयिक हजार वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता। (३) एक बेले में श्रमण जितने कर्म क्षय करता है नैरयिक उसे लाख वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता । (४) एक तेले में श्रमण जितने कर्म क्षय करे नैरयिक उतने कर्म एक करोड वर्ष में भी क्षय नहीं कर सके । (५) एक चौले में श्रमण जितने कर्म क्षय करे, नारकी उतने कर्मों को एक क्रोडा–क्रोड वर्षों में क्षय नहीं कर सकता है ।

अण्णगिलाय शब्द से यहाँ उपवास के पहले की तपस्या सूचित की गई है । अत: इस शब्द से आय बिल की कोटी का तप समझना उपयुक्त है । रूक्ष, नीरस, अमनोज्ञ, ठ डा, बासी, सामान्य आहार आय बिल की कोटी में आवे जैसा होता है । शब्दार्थ करने में कुछ मतिभ्रम प्रचलित है जो समीक्षा करने पर उपयुक्त नहीं होते हक्त ।

तप और नारकी के इस कर्म क्षय की भिन्नता को दृष्टा त द्वारा इस प्रकार समझाया गया है– (१) वृद्ध पुढष के द्वारा चिकनी ग ठीली लकडी काटने के समान नारकी के कर्म क्षय मुश्किल से होते हक्त । जवान पुढष के द्वारा तीक्ष्ण कुल्हाडे से सूखी सामान्य लकडी काटने के समान तप से अणगार के कर्म क्षय सरलता से होते हक्त । (२) एरण

पर जोर–जोर से चोट करने पर भी उसमें से बहुत कम पुद्‌गल विशीर्ण होते हक्त वैसे ही नारकी के कर्म गाढ होने से कम क्षय होते हक्त । (३) जैसे सूखा घास अग्नि में डालने से तत्काल नष्ट हो जाता है वैसे ही अणगार के कर्म तप से शीघ्र क्षय हो जाते हक्त ।

प्रायश्चित्त के उपवास– प्रस्तुत आय बिल, उपवास, बेला, तेला, चौला आदि से होने वाला लाभ एक दूसरे से क्रमश: दस गुना, सौ गुना एव हजार गुणा, लाख गुणा और करोडगुणा है इसमें न्यूनतम वृद्धि दस गुणी होती है जिससे एक उपवास से बेले का लाभ न्यूनतम दसगुणा अधिक होता है । उसे चौविहार उपवास की अपेक्षा समझा जाय तो तिविहार उपवास का आधा फल मान कर पाँचगुणा लाभ न्यूनतम रूप से प्रत्येक उपवास बेला आदि का स्वीकारा जा सकता है । जिससे एक बेला =५ उपवास । तेला =५x५=२५ उपवास । चौला =५x५x५= १२५ उपवास । प चोला= ५x५x५x५= ६२५ उपवास । इसी गणित से दैनिक सामान्य प्रायश्चित्त के उपवास उतारे जाने की पर परा प्रचलित है । तथा इसी के अनुरूप उपवास पर एक पोरसी= दो उपवास, दो पोरसी= तीन उपवास, तीन पोरसी=चार उपवास और चार पोरसी(बेला)= पाँच उपवास ऐसी गणित भी मानी गई है । तदनुसार बेले=५ उपवास, उस पर १ पोरसी=५+५=१० उपवास, दो पोरसी= १०+५=१५ उपवास, तीन पोरसी=१५+५=२० उपवास, ४ पोरसी (तेला)=२५ उपवास माना जाता है । इसी क्रम से आगे भी समझना यथा तेले पर पोरसी=२५+२५=५० उपवास । चौले पर पोरसी= १२५+१२५=२५० उपवास, प चोले पर पोरसी= ६२५+६२५= १२५० उपवास स्वीकारा जाता है । प चोले के बाद छ उपवास का– ६२५x५=३१२५ उपवास । सात उपवास का– ३१२५x५=१५६२५ उपवास अट्‌ठाई= १५६२५x५=७८१२५ उपवास । नौ उपवास= ७८१२५x५= ३,९०,६२५ उपवास होते हक्त ॥ उद्देशक–४ स पूर्ण ॥

प्रश्न–७ : ग गदत्त देव और शक्रेन्द्र का पूर्व भव का क्या स ब ध था ?

उत्तर– दोनों पूर्व भव में हस्तिनापुर में श्रेष्ठिवर्य थे । ग गदत्त शेठ और कार्तिक शेठ । वहाँ दोनों में मात्सर्य भाव रहता था । कार्तिक शेठ

ने विशेष प्रतिष्ठा जमाई, वह १००८ श्रेष्ठियों में प्रमुख बन गया । तब ग गदत्त शेठ मुनिसुव्रत भगवान के पास दीक्षित हो गये और तप स यम की आराधना कर सातवें देवलोक में १७ सागरोपम की उम्र प्राप्त करी । काला तर से कार्तिक शेठ ने भी २० वें तीर्थंकर के पास दीक्षा ली थी और आराधना करके शक्रेन्द्र बना । शक्रेन्द्र प्रथम देवलोक में २ सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुआ था । अत: ग गदत्त से वह यहाँ ऋद्धि में कम था ।

एक बार शक्रेन्द्र भगवान महावीर के पास उल्लुकातीर नामक नगर में आया । तब उसने ग गदत्त देव को भगवान की सेवा में आते हुए अवधिज्ञान से देखा तो शीघ्रता से प्रश्न पूछकर उसके पहुँचने के पहले निकल गया । अन्य समय कभी भी शक्रेन्द्र आता है तब शा ति से बैठता है । गौतमस्वामी के द्वारा इसका कारण पूछने पर भगवान ने स्पष्टीकरण किया कि ग गदत्त देव सातवें देवलोक से आ रहा है; उसकी ऋद्धि दिव्य तेज को शक्रेन्द्र देख नहीं सकने से, सहन नहीं कर सकने से शीघ्र चला गया । पूर्व के मात्सर्यभाव के कारण ग गदत्त की अपने से अधिक ऋद्धि आदि सहन नहीं होना स्वाभाविक है ।

प्रश्न-८ : शक्रेन्द्र ने और ग गदत्त देव ने भगवान से क्या प्रश्न किये थे ?

उत्तर– शक्रेन्द्र ने स क्षिप्त में आठ प्रश्न किये थे उनका सार यह है कि देव का– (१) मनुष्य लोक में आना (२) वापिस जाना (३) भाषा बोलना (४) उन्मेष–निमेष करना (५) अ गोपांग का स कोच विस्तार करना (६) खडा होना, बैठना व सोना (७) वैक्रिय करना (८) परिचारणा करना आदि क्रियाएँ बाह्य पुद्गल ग्रहण करने से ही देवों द्वारा की जा सकती है ।

ग गदत्त का प्रश्न– सातवें देवलोक में ग गदत्त देव के पास एक मिथ्यादृष्टि देव आकर कहता है कि परिणमन प्राप्त होते हुए पुद्गल परिणत नहीं कहलाते किंतु अपरिणत कहे जाते हक्त क्यों कि वे परिणत हो रहे हक्त । तब ग गदत्त सम्यग् दृष्टि देव ने **चलमाणे चलिए** के सिद्धा त से कहा कि परिणमन हो रहे पुद्गल परिणत कहे जाते हक्त,

अपरिणत नहीं क्यों कि प्रतिक्षण परिणत हो रहे हक्त । मिथ्यादृष्टि देव को निरूत्तर करके ग गदत्तदेव ने उपयोग लगाकर तिरछालोक में भगवान महावीर को देखा और दर्शन करने उल्लुकातीर नगर में आया । अपनी विश्वस्तता के लिये उसने भगवान को व दन नमस्कार करने के बाद वही प्रश्न का विवरण सुना दिया । भगवान ने कहा तुम्हारा उत्तर सही है, मक्त भी यही कथन करता हूँ । फिर वह ग गदत्त देव व दन नमस्कार कर यथास्थान बैठकर पर्युपासना करने लगा । भगवान ने उपदेश फरमाया । फिर उसने अपने भवी–अभवी आदि स ब धी प्रश्न किये । भगवान ने उसे भवी, सम्यग्दृष्टि होने का कहा । फिर वह देव प्रसन्न होकर ३२ प्रकार के नाटक दिखाकर चला गया । गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसका पूर्व भव और आगामी मुक्ति तक का कथन किया ॥ उद्देशक–५ स पूर्ण ॥

प्रश्न–९ : स्वप्न एव स्वप्न फलस ब धी निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) निद्रा में(गाढ निद्रा में) या जागृत अवस्था में स्वप्न नहीं आते हक्त, अर्ध जागृत, अवस्था में हल्की निद्रा में स्वप्न आते हक्त । (२) निद्रा लेना द्रव्य निद्रा है अविरतिभाव भावनिद्रा है । भावनिद्रा की अपेक्षा २२ द डक के जीव सुप्त कहे गये हक्त । तिर्यंच प चेन्द्रिय सुप्त–जागृत और सुप्त दो तरह के हक्त और मनुष्य, सुप्त, जागृत एव सुप्त–जागृत यों तीनों तरह के हक्त । (३) साधु भी स्वप्न देखते हक्त, वे सत्य स्वप्न भी देखते हक्त, असत्य स्वप्न भी देखते हक्त । सच्ची भाव साधुता में सत्य स्वप्न ही आते हक्त अथवा तो नहीं आते हक्त । असत्य स्वप्न देखने वाला अस वृत कहा गया है अर्थात् उसके विशेष आश्रव चालू रहता है, वह पूर्ण स वृत नहीं है किन्तु एका त अस यमी नहीं समझना ।

(४) विशिष्ट स्वप्न ४२ प्रकार के हक्त और महास्वप्न ३० कहे गये हक्त । ३० महास्वप्न में से कोई भी १४ स्वप्न तीर्थंकर, चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर उनकी माता देखती है । वासुदेव की माता सात, बलदेव की माता चार स्वप्न देखती है । मा डलिक राजा की माता एक महास्वप्न देखती है । ये माताएँ स्वप्न देखकर जागृत हो जाती

है और पुनः नहीं सोती है, धर्म जागरण करती है। (५) भगवान महावीर स्वामी को दस स्वप्न देखने के बाद केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था। बैठे बैठे ही भगवान को मुहूर्त मात्र(अल्प समय) निद्रा आई ओर उस समय अर्द्ध निद्रावस्था में १० स्वप्न देखे, क्यों कि केवलज्ञान के समय भगवान अप्रमत्तभाव में और विशिष्ट आसन में थे अथवा कुछ समय पूर्व स्वप्न देखे होंगे और बाद में विशिष्ट आसन से ध्यानमग्न होने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। छद्मस्थ काल में भगवान कभी कुछ सो भी जाते थे--***आचारा ग सूत्र, प्रथम सूत्रस्क ध. अध्ययन-९ ।***

दस स्वप्न और परिणाम- (१) पिशाच को पराजित किया- मोहकर्म क्षय (२) सफेद नर कोयल- शुक्लध्यान (३) विचित्र प ख वाला नर कोयल- द्वादशा ग प्ररूपण (४) स्वर्ण रत्नमय माला द्वय- द्विविध धर्म प्ररूपण (५) श्वेत गो वर्ग- चतुर्विध स घ रचना (६) महापद्म सरोवर- चार जाति के देवों का प्ररूपण (७) महासागर भुजा से तिरे- स सार सागर से तिरे (८) सूर्य- केवलज्ञान प्राप्ति (९) मेरूपर्वत को आँतों से परिवेष्टित- सम्पूर्ण लोक में यश कीर्ति फैली (१०) मेढ चूलिका पर सि हासन पर बैठे- पर्षदा में उपदेश दिया।

कुछ स्वप्न फल विज्ञान- (१) सोया हुआ व्यक्ति, हाथी, घोडा या बैल समूह को देखकर उस पर चढता है, चढकर अपने को बैठे हुए देखता है, फिर जाग जाता है। वह उसी भव में मोक्ष जाता है। (जो सोया रह जाता है तो यह फल नहीं होता है। ऐसा सभी स्वप्नों में समझ लेना चाहिये)। (२) जो व्यक्ति स्वप्न में महासमुद्र में पूर्व से पश्चिम फैली रस्सी को देखकर अपने हाथ में समेटता है। (३) लोका त को पूर्व पश्चिम स्पर्श की हुई रस्सी को काटे। (४) काले या सफेद सूत के उलझे गुच्छे को सुलझावे **मैने सुलझा दिया** ऐसा माने। (५) सोने, चा दी, वज्र या रत्न राशि को देखे और उस पर चढ जाय। (६) घास-कचरे के ढेर को देखे और उसे विखेर दे। (७) सरस्त भ, वीरण-स्त भ, व शस्त भ, वल्लिस्त भ(तना) को देखकर उखाड फेंके। (८) क्षीर कु भ, घृतकु भ, दधिकु भ को देखे और उठावे। (९) पुष्प युक्त पद्म सरोवर में उतरे। (१०) महासागर को देखे और उसे तैर कर पार करे।

(११) रत्नों का भवन देखे और उसमें प्रवेश करे। (१२) रत्नों का विमान देखे और उस पर चढ जाय। इस प्रकार के स्वप्न युक्त अपने को देखे माने और जागृत हो जाय, उठ जाय, वह व्यक्ति उसी भव में मोक्ष जाता है।

(१) तेल, मदिरा, चर्बी के कु भ देखे एव फोड डाले और (२) लोहे, तांबे, कथीर, शीशे के ढेर को देखे एव उस पर चढे। ये दो स्वप्न देखने वाला एक देव का और एक मनुष्य का भव करके मोक्ष जाता है। स्वप्न देखकर जागृत होने एव पुनः नहीं सोने से ही ये फल होते हक्त। पुनः सो जाने पर ये फल नहीं होते हक्त।

प्रश्न-१० : इस शतक में अन्य किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- (१) कोई सुग धी पदार्थ पडे हक्त और वायु चली तो सुग धी पदार्थ नहीं चलते किन्तु ग ध के पुद्गल वहाँ से गति करते हक्त व फैलते हक्त। **(२)** लोक के ६ दिशाओं के चरमा त में जीव, अजीव, जीव देश, जीव प्रदेश, अजीव देश, अजीव प्रदेश रहे हुए हक्त। उसी प्रकार सात नरक के पृथ्वी पिंडों के, देवलोकों के चरमा त में भी जीव, अजीव रहे हुए हक्त। एकेन्द्रियादि की अपेक्षा पाँच स्थावर तो स्वस्थान रूप से रहे हुए हक्त और त्रस जीव वाटे वहेता एव मरण समुद्घात की अपेक्षा होते हक्त। अनिंद्रिय जीव केवली समुद्घात की अपेक्षा होते हक्त। नरक पृथ्वी के चरमा त में एव देवलोकों के चरमा त में भी यथायोग्य स भव जीव, अजीव, उनके देश, प्रदेश के विषय में समझ लेना चाहिये। काल द्रव्य चरमा तों में नहीं है। **(३)** परमाणु पुद्गल एक समय में लोक के पूर्वी चरमा त से पश्चिमी चरमा त तक स्वतः चला जाता है। इस तरह सभी दिशा में समझना। **(४)** वर्षा की जानकारी के लिये कोई हाथ को खुले आकाश में निकाल करके देखे तो पाँच क्रिया लगती है। **(५)** कोई महर्द्धिक देव भी लोका त में बैठकर अलोक में हाथ पैर आदि नहीं निकाल सकता है। क्यों कि अलोक में धर्मास्ति-काय आदि नहीं है, वहाँ पर जीव और पुद्गल की गति नहीं होती है। **(६)** द्वीपकुमार देव सभी समान आहार वाले आदि नहीं होते हक्त, यह वर्णन पहले शतक के दूसरे उद्देशक के समान है। इनमें चार

लेश्याएँ होती है, तेजोलेश्या वाले अल्प होते हक्त, उससे कापोतलेशी अस ख्यगुणा होते हक्त, उससे नीललेशी विशेषाधिक होते हक्त, उससे कृष्णलेशी विशेषाधिक होते हक्त । कृष्णलेशी अल्पर्द्धिक होते हक्त फिर क्रमशः तेजोलेशी महर्द्धिक होते हक्त । उदधिकुमार, दिशाकुमार, स्तनित कुमार का वर्णन भी इसी तरह है ।

शतक-१७ : उद्देशक-१ से १७

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १७ उद्देशकों के माध्यम से कुछ विषयों का निरूपण है । अधिकतम उद्देशक स क्षिप्त सूचन वाले हक्त । शतक के प्रार भ में एक गाथा द्वारा इस शतक के उद्देशकों के नाम-विषय सूचित किये गये हक्त जो इस प्रकार है-

(१) कु जर- इस उद्देशक में कोणिक राजा के दो हस्ती रत्न स ब धी तथा जीव को क्रिया लगने स ब धी निरूपण है ।

(२) स यत- इसमें धर्म में स्थित अस्थित जीवों की, बालप डित जीवों की एव रूपी-अरूपी विकुर्वणा की प्ररूपणा की गई है ।

(३) शैलेशी- इसमें शैलेषी अणगार, एजन आदि प्रवृत्ति एव चलणा स ब धी निरूपण है तथा स वेग आदि ४९ बोलों की मोक्ष प्रदायकता कही है ।

(४) क्रिया- १८ पाप की क्रिया स ब धी एव स्वय कृत दुःख और वेदना स ब धी निरूपण है ।

(५) ईशानेन्द्र- दूसरे देवलोक के इन्द्र की सुधर्मासभा आदि स ब धी स क्षिप्त सूचन शतक-१०/६ की भलावण युक्त है ।

(६से१२)पृथ्वीकाय, अप्काय और वायुकाय स ब धी दो-दो उद्देशक में स क्षिप्त वर्णन है एव १२वें उद्देशक में एकेन्द्रिय स ब धी सूचन है ।

(१३-१७) नाग, सुवर्ण, विद्युत, वायु, अग्निकुमार इन-५ नवनिकाय स ब धी स क्षिप्त सूचन है ।

इस तरह विषय वर्णन की अपेक्षा यह लघु शतक है ।

प्रश्न-२ : कोणिक राजा के हाथी की गति आगति किस प्रकार की कही गई है ?

उत्तर- कोणिक राजा के दो प्रधान हाथी थे- १. उदाई हस्तीरत्न २. भूतान द हस्तीरत्न । दोनों असुरकुमार देवों से आकर जन्मे थे और मर कर के प्रथम नरक में जायेंगे । वहाँ से महाविदेह में एक भव कर के मुक्त होंगे । यह उत्तर गौतमस्वामी के द्वारा राजगृही में भगवान को पूछने पर मिला था ।

प्रश्न-३ : कोई व्यक्ति वृक्ष पर चढता है, फल तोडता है, वृक्ष को हिलाता है इत्यादि प्रवृत्तियों में कब किसे कितनी क्रिया लगती है ?

उत्तर- कोई व्यक्ति वृक्ष को हिलावे, गिरावे तो उसे पाँच क्रिया लगे । हिलने वाले ताड वृक्ष के शाखा, फल आदि के जीवों को भी वायु आदि की विराधना से पाँच क्रिया लगे । तोडने के बाद जब फल या वृक्ष अपने भार से नीचे गिरता है तो पुढष को चार क्रिया लगती है, वृक्ष आदि के जीवों को पाँच क्रिया लगती है ।

प्रश्न-४ : देवता कैसे रूपों की विकुर्वणा करता है ?

उत्तर- देवता रूपी रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैक्त ।अरूपी पदार्थ देव नहीं बना सकते किंतु सामान्य मनुष्यों को नहीं दिखे वैसे रूपी रूप बना सकते हक्त ।

जीव रूपी होकर एक दिन अरूपी बन सकता है किंतु अरूपी सिद्ध भगवान बनने के बाद फिर जीव कभी रूपी नहीं बन सकता है । ॥ शतक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-५ : एजन, वेजन, कम्पन्न, चलन आदि के कितने प्रकार होते हक्त ?

उत्तर- शैलेशी अवस्था में रहा अणगार कम्पन्न, स्प दन गमनादि नहीं करता है किन्तु पर प्रयोग की अपेक्षा शरीर का गमनादि हो सकता है अर्थात् कोई धक्का दे, गिरादे, कहीं डाल दे, पानी में बहा दे इत्यादि प्रस ग से शरीर गतिमान होता है । यह कम्पन्न(एजन)आदि

५ प्रकार का है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव । ये पाँचों चार गति की अपेक्षा चार-चार प्रकार के हक्त ।

सामान्य गतिमान होने को एजन(क पन्न) कहा गया है और विशेष एजन को चलन कहा गया है । चलन के मुख्य तीन प्रकार एव उसके १३ भेद हक्त- ५ शरीर चलन, ५ इन्द्रिय चलन, ३ योग चलन । इन-इन रूपों में पुद्गलों को परिणमन करना जीवों की चलना है ।

प्रश्न-६ : मोक्षफलदायी ४९ बोल कौन से कहे गये हक्त ?

उत्तर- स वेग आदि ४९ बोलों का अ तिम फल मोक्ष कहा गया है अर्थात् ये सभी गुण मोक्ष साधना में सहायक एव गति देने वाले हक्त । साधक को साधना काल में इन गुणों की वृद्धि एव स रक्षण करते रहना चाहिये, यथा- (१) स वेग-वैराग्य भाव (२) निर्वेद-त्याग भाव (३) गुढ आदि की सेवा (४) स्व आलोचना (५) स्व निंदा (६) स्व गर्हा (७) क्षमापना भाव (८) सुखशाता- अनुत्सुकता, उतावल रहितता, शा तभाव से प्रवर्तन (९) उपशा तता । (सुखशाता में शारीरिक प्रवृत्तियों में शा ति होती है उपशा तता में मानसिक प्रवर्तन में शा ति एव ग भीरता होती है ।) (१०) भाव अप्रतिबद्धता-अनाशक्ति भाव (११) पाप की पूर्ण निवृत्ति-अक्रिय (१२) विविक्त शय्या सेवन (१३-१७) पाँच इन्द्रिय स वर (१८-२३) योग, शरीर, कषाय, स भोग, उपधि और भक्त का प्रत्याख्यान (२४) क्षमा (२५) वीतराग भाव (२६-२८) भावों की, करण की एव योग की सत्यता (२९-३१) मन, वचन, काया का सम्यक् अवधारण(वश में रखना) (३२-४४) क्रोधादि १३ पाप का त्याग (४५-४७) ज्ञान, दर्शन, चारित्र से सम्पन्न होना (४८) रोगादि की वेदना सहिष्णुता (४९) मारणा तिक कष्ट उपसर्ग में सहिष्णुता ।

प्रश्न-७ : जीव की उत्पत्ति पहले होती है या आहार पहले होता है ?

उत्तर- समवहत मरने वाले जीव का पहले आहार और फिर उत्पात होता है । असमवहत मरने वाले जीव का पहले उत्पात फिर आहार होता है क्यों कि इसमें एक साथ आत्मप्रदेश पहुँचते हक्त, उसके बाद ही आहार होता है । इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का रत्नप्रभा

आदि से सिद्धशिला तक में आहार और उत्पाद(उत्पत्ति) जानना चाहिये । (२) इसी तरह अप्काय, वायुकाय जीवों का अधोलोक से उर्ध्वलोक और उर्ध्वलोक से अधोलोक तक उत्पाद व आहार जानना चाहिये। (३) एकेन्द्रिय के सम-विषम आहार, शरीर आदि का वर्णन प्रथम शतक के दूसरे उद्देशक के समान है । नागकुमार,सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, वायुकुमार और अग्निकुमार इन पाँचों का समआहार आदि स ब धी वर्णन १६ वें शतक के ११ वें उद्देशक में आये द्वीपकुमार के वर्णन के समान जानना चाहिये ।

प्रश्न-८ : इस शतक में अन्य किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- (१) जीव को औदारिक शरीर आदि बनाते समय एव उसका प्रयोग करते समय ३-४ या ५ क्रिया भजना से लगती है । **(२)** भाव ६ है- १. औदयिक २. औपशमिक ३. क्षायिक ४. क्षयोपशमिक ५. पारिणामिक ६. सन्निपातिक-मिश्र । इनका विशेष वर्णन अनुयोग द्वार सूत्र में है । **(३)** स यत-विरत जीव धर्म में स्थित है, अस यत-अविरत जीव अधर्म में स्थित है अर्थात् वह धर्म आदि को स्वीकार करके रहने वाला है । समुच्चय जीव और मनुष्य में तीनों भेद हक्त । तिर्यंच में दो भेद हक्त । शेष द डक में एक अधर्म स्थित ही है । यहाँ तीसरा भेद धर्माधर्म स्थित का है । **(४)** अस यत जीव बाल, स यत जीव प डित और स यतास यत जीव बालप डित कहे जाते हक्त । २४ द डक में धर्म-अधर्म के समान बाल, प डित भी जानना ।

(५) अठारह पापों में, पापों की विरति में, चार प्रकार की बुद्धि में, अवग्रहादि मतिज्ञान में, चार गति में, आठ कर्म में; लेश्या, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान, स ज्ञा, शरीर, योग, उपयोग में वर्तता हुआ जीव और जीवात्मा एक ही है अन्य नहीं । अन्यतीर्थिक(सा ख्य मतावल बी) प्रकृत्ति (प्रवृति) और जीवात्मा को एका त भिन्न मानते हक्त । जैन सिद्धा त से कथ चित् भेद स्वीकार किया जा सकता है आत्य तिक भेद नहीं माना जा सकता ।**(६)** प्राणातिपात आदि पाँच पाप से स्पृष्ट होने पर जीव कर्म ब ध करते हक्त । शेष वर्णन पहले शतक के छट्ठे उद्देशक के समान है अर्थात् कितनी दिशा से कर्म ग्रहण आदि होते

हक्त । जिस समय में, जिस क्षेत्र में और जिस प्रदेश में जीव प्राणातिपात आदि करता है वहाँ स्पृष्ट कर्मों का ब ध करता है । (७) कर्मों के उदय से उत्पन्न दु:ख स्वकृत दु:ख है, उसका ही जीव वेदन करते हक्त पर तु पर कृत दु:ख (कर्म का वेदन) नहीं होता है ।

शतक-१८ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशकों के माध्यम से अनेक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है; शक्रेन्द्र का पूर्व भव भी वर्णित है । प्रार भिक स ग्रहणी गाथानुसार उद्देशकों के नाम-विषय इस प्रकार है-

(१) पढम- प्रथम उद्देशक में प्रथम-अप्रथम तथा चरम-अचरम स ब धी तात्त्विक वर्णन है ।

(२) विशाखा- विशाखानगरी में गौतमस्वामी के द्वारा शक्रेन्द्र के पूर्वभव की पृच्छा, जिसमें कार्तिक शेठ का जीवन वर्णित है ।

(३) माक दिय- मनुष्य जन्म प्राप्त करके केवल ज्ञान प्राप्त कर सकने का, केवली के निर्जरा पुद्गलों को देखने-जानने वाले जीवों का, आहार करने का, द्रव्य-भाव ब ध, विश्रसाप्रयोग ब ध आदि विषयों का निरूपण है । इस उद्देशक में आये सभी प्रश्न 'माक दियपुत्र' अणगार के द्वारा किये गये हक्त ।

(४) प्राणातिपात- प्राणातिपात आदि का, जीव के परिभोग्य-अपरिभोग्य का तथा कृतयुग्म आदि का निरूपण है एव अ धकवन्हि शब्द से अग्नि का कथन है ।

(५) असुरे- इस उद्देशक में असुरकुमार देवों के रूप स ब धी तरतमता, मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्टि के कर्म, क्रिया, आश्रव की तरतमता, आयुष्य वेदन तथा वैक्रिय शरीर बनाने में देवों में तरतमता का निरूपण है ।

(६) गुड- गुड आदि पदार्थों में व्यवहार से एव निश्चयनय से रस वर्णादि का तथा परमाणु आदि में वर्णादि का निरूपण है ।

(७) केवली- इसमें केवलज्ञानी में यक्षावेश स ब धी, प्राणियों के उपधि, परिग्रह, प्रणिधान स ब धी तथा मद्रुक श्रावक, देवशक्ति, देव पुण्य क्षय का अनुपात; इत्यादि विषय निरूपित है ।

(८) अणगार- इसमें छद्मस्थ और केवली अणगार के चलने में पांव के नीचे जीव और उससे क्रिया, अन्यतीर्थिकों का आक्षेप और स यत, विरत, प डित का स्वरूप, परमाणु विषयक ज्ञान, जानने-देखने का समय अलग आदि विषय निरूपित है ।

(९) भविक- भवीद्रव्य नारकी आदि और उनकी स्थिति का वर्णन है ।

(१०) सोमिल- इसमें परमाणु आदि का वायुकाय के साथ व्याप्य व्यापकता तथा सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नोत्तर निरूपित है ।

प्रश्न-२ : 'पढम-अपढम' एव 'चरम-अचरम' से यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- इस शतक के प्रथम उद्देशक में इन शब्दों से विशाल तत्त्व निरूपण है । स क्षेप में इन शब्दों का तात्पर्य इस प्रकार है-(१) जो भाव अनादि से होता है उसे **अपढम** कहा जाता है । जो भाव जहाँ पहली बार होता है, वह भाव उस स्थान की अपेक्षा **पढम** कहा जाता है । जो भाव जहाँ कई जीवों में पहली बार और कई जीवों में दूसरी तीसरी यावत् स ख्यातवीं बार आदि भी होता है उसे **सिय पढम, सिय अपढम** कहा जाता है अर्थात् उभय भाव वाला कहा जाता है ।(२) जो भाव जिस स्थान में अब फिर नहीं आने वाला है उसे **चरम** कहा जाता है । जो भाव जहाँ सदा रहने वाला है या पुन: होने वाला है उसे **अचरम** कहा जाता है । जो भाव जहाँ किसी जीव में चरम है किसी जीव में अचरम है, वह भाव उस स्थान की अपेक्षा **सिय चरम, सिय अचरम** अर्थात् उभय भाव वाला कहा जाता है ।

१४ द्वारों के ९३ बोलों का २४ द डक, समुच्चय जीव और सिद्धों की अपेक्षा पढम-अपढम एव चरम-अचरम का वर्णन किया गया है । उन्हें स क्षिप्त रूप से कोष्टक में दिया जाता है ।

चौदह द्वार के ९३ बोल-

क्रम	द्वार	भेद विवरण	भेद स ख्या
१	जीव	२४ द डक, जीव, सिद्ध	२६
२	आहारक	आहारक ,अनाहारक	२
३	भवी	भवी, अभवी, नोभवी॰	३
४	सन्नी	सन्नी, असन्नी, नोसन्नी॰	३
५	लेश्या	सलेशी, ६ लेश्या, अलेशी	८
६	दृष्टि	सम्यग्, मिथ्या, मिश्रदृष्टि	३
७	स यत	स यत, अस यत, स यतास यत, नोस यत॰	४
८	कषाय	सकषायी, ४ कषाय, अकषायी	६
९	ज्ञान	५ ज्ञान, ३ अज्ञान, सणाणी, अणाणी	१०
१०	योग	सयोगी, ३ योग, अयोगी	५
११	उपयोग	साकार, अनाकार उपयोग	२
१२	वेद	सवेदी, ३ वेद, अवेदी	५
१३	शरीर	५ शरीर, अशरीरी	६
१४	पर्याप्ति	५ पर्याप्ति, ५ अपर्याप्ति	१०
		कुल	९३

आगामी कोष्टक स ब धी सूचना :-

(१) 'सभी' ऐसा शब्द जहाँ है उस का अर्थ है जितने द डक और समुच्चय जीव जो भी वहाँ पावे वे समझना ।

(२) "दो बोल या तीन बोल"= जीव, सिद्ध और मनुष्य में से दो या तीन समझना ।

(३) "२५ बोल या २४ + १" = समुच्चय जीव, २४ द डक । इसी प्रकार १९+१ आदि भी द डक+जीव समझ लेना ।

(४) "नो सन्नी॰"= नोसन्नी नोअसन्नी, इसी प्रकार नो भवी॰ ,नो स यत॰ आदि समझ लेना ।

(५) ४ अज्ञान, ५ कषाय आदि में क्रमशः समुच्चय अज्ञानी, सकषायी आदि सम्मिलित है, ऐसा समझना ।

चौद द्वार में प्रथम अप्रथम :-

द्वार	प्रथम भाव		अप्रथम भाव		प्रथमअप्रथम उभयभाव	
	बोल	**जीव**	**बोल**	**जीव**	**बोल**	**जीव**
१	सिद्ध	–	जीव २४ द डक	–	–	–
२	–	–	आहारक	२४-१	–	–
	अनाहारक	सिद्ध	अनाहारक	२४	अनाहारक	समुच्चयजीव
३	नो भवी	सिद्ध	भवी	२४-१	–	–
	–	–	अभवी	२४-१	–	–
४	नो सन्नी	३ बोल	सन्नी	१६-१	–	–
	–	–	असन्नी	२२-१	–	–
५	अलेशी	३ बोल	सलेशी ६ लेशी	सभी	–	–
६	सम्यग्दृष्टि	सिद्ध	मिथ्यादृष्टि	२४-१	सम्यग्दृष्टि	१९-१
	–	–	–	–	मिश्रदृष्टि	१६-१
७	नो स यत	२ बोल	अस यत	२४-१	स यत	२ बोल
	–	जीव सिद्ध	–	–	स यतास यत	३ बोल
८	अकषाय	सिद्ध	५ कषाय	२४-१	अकषायी	२ बोल
९	केवलज्ञान	३ बोल	४ अज्ञान	२४-१	सज्ञानी ४ ज्ञान	सभी
१०	अजोगी	३ बोल	सयोगी ३ योग	सभी	–	–
११	उपयोग दो	सिद्ध	उपयोग दो	२४ बोल	उपयोग दो	जीव
१२	अवेदी	सिद्ध	सवेदी ३ वेद	सभी	अवेदी	२ बोल
१३	अशरीरी	२ बोल	सशरीरी ४ शरीर	सभी	आहारक शरीर	२ बोल
१४	–	–	५ पर्याप्ति ५अपर्याप्ति	सभी	–	–

चौद द्वार में चरम अचरम :-

द्वार	चरम		अचरम		उभय(चरम-अचरम)	
	बोल	**जीव**	**बोल**	**जीव**	**बोल**	**जीव**
१	–	–	जीव सिद्ध	–	२४ द डक	–
२	–	–	अनाहारक	जीव सिद्ध	आहारक	२५ बोल
	–	–	–	–	अनाहारक	२४ बोल
३	भवी	जीव	अभवी	२५ बोल	भवी	२४ बोल
	–	–	नोभवी॰	जीव सिद्ध	–	–
४	नो सन्नी	मनुष्य	नोसन्नी॰	२ बोल	सन्नी असन्नी	सभी
५	अलेशी	मनुष्य	अलेशी	२ बोल	लेश्या सात	सभीबोल
६	–	–	सम्यग्दृष्टि	जीव सिद्ध	सम्यग्दृष्टि	१९ द डक
	–	–	–	–	मिथ्यादृष्टि	२५ बोल
	–	–	–	–	मिश्रदृष्टि	सभी
७	– –	– –	नो स यत॰ –	जीव सिद्ध –	स यत आदि ३	सभी –
८	–	–	–	–	५ कषाय	सभी
	–	–	अकषाय	जीव सिद्ध	अकषायी	मनुष्य
९	केवलज्ञानी	मनुष्य	ज्ञानी	जीव सिद्ध	सज्ञानी	१९ द डक
	–	–	केवलज्ञानी	२ बोल	४ ज्ञान	१९ – १
	–	–	–	–	४ अज्ञान	सभी
१०	अयोगी	मनुष्य	अयोगी	२ बोल	४ योग	सभी
११	–	–	२ उपयोग	२ बोल	२ उपयोग	२४ बोल
१२	–	–	अवेदी	२ बोल	४ वेद	सभी
	–	–	–	–	अवेदी	मनुष्य
१३	–	–	अशरीरी	सिद्ध	६ शरीर	सभी
१४	–	–	–	–	५ पर्याप्ति ५अपर्याप्ति	सभी बोल –

प्रश्न-३ : शक्रेन्द्र के विशेषण और उनके अर्थ तात्पर्य किस प्रकार समझना ?

उत्तर- शक्रेन्द्र के ६ विशेषण इस प्रकार है- **(१) मघव -** महा मेघ जिसके वश में होते हक्त अर्थात् महावृष्टि आदि का आदेश शक्रेन्द्र से प्रार भ होता है और अ त में वृष्टि करने वाले देव आदेश पाकर यथा-स्थान वृष्टि करते हक्त । **(२) पाकशासन-** पूर्व भव में पाक नामक शत्रु को शिक्षा देकर परास्त करने वाला । **(३) शतकर्तु-** पूर्वभव में श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा का १०० बार आराधन किया था। **(४) सहस्राक्ष-** शक्रेन्द्र के ५०० म त्री है उनकी सूझबूझ शक्रेन्द्र के काम आती है । अथवा पूर्व में १००८ साथी श्रेष्ठियों ने साथ में दीक्षा ली । वे यहाँ देवलोक में साथ में है उसमें आठ स ख्या को गौण करके हजार साथी का हजार चक्षु कहा गया है । **(५) वज्रपाणी-** हाथ में वज्र रत्न है जिसके । शक्रेन्द्र का मुख्य शस्त्र वज्र है जो स्मृतिमात्र से उनके हाथ में उपस्थित हो जाता है । **(६) पुर दर-** पुर नाम के शत्रु का विदारण करने वाला अथवा असुरकुमार आदि के नगरों का विनाश कर सकने वाला । शक्रेन्द्र के ये विशेषण उसके वर्णन में कहीं स क्षिप्त पाठ में समाविष्ट हो जाते हक्त कहीं स्पष्ट भी मिलते हक्त ।

प्रश्न-४ : शक्रेन्द्र प्रथम देवलोक का इन्द्र कब कैसे बना था?

उत्तर- बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के शासन में पहले कार्तिक शेठ ने श्रावक के व्रतों का पालन किया था फिर उन्हीं भगवान के पास १००८ श्रेष्ठी-साथियों सहित दीक्षा ली थी। १४ पूर्वों का अध्ययन किया । कुल १२ वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन करके एक महीने के स थारे से आराधक बनकर प्रथम देवलोक में इन्द्र स्थान में शक्रेन्द्रावत शक विमान में उत्पन्न हुआ था । उसके बाद ४ (२१से २४वें) तीर्थंकरों की सेवा का समय-समय पर लाभ लिया है आगे भी दो सागरोपम की आयुष्य पूर्ण होने तक उत्सर्पिणी काल के भावी प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ एव अन्य अनेक तीर्थंकरों की सेवा का लाभ प्राप्त करेगा । फिर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य बन कर सिद्ध-मुक्त होगा । इस प्रकार शक्रेन्द्र पूर्वभव में भी धर्मनिष्ट श्रावक एव श्रमण था और अभी सम्यग्दृष्टि है ।

प्रश्न-५ : माक दियपुत्र अणगार ने भगवान से प्रश्न पूछकर क्या-क्या समाधान पाये थे ?

उत्तर- (१) कृष्ण नील कापोत लेश्या वाले पृथ्वी, पानी, वनस्पति के जीव मनुष्य भव करके मुक्त हो सकते हक्त ।अणगार के चरम निर्जरा पुद्‌गल अत्य त सूक्ष्म होते हक्त, वे सर्व लोक में फैलते हक्त । उन पुद्‌गलों को जानने, देखने, आहार करने स ब धी वर्णन प्रज्ञापना पद १५ से जानना । (२) प्रयोगब ध और विश्रसा ब ध को द्रव्य ब ध कहा गया है एव आठ कर्म की १४८(१२०) प्रकृति का ब ध भावब ध कहा गया है ।प्रयोगब ध शिथिल और गाढ दो तरह का है । विश्रसाब ध सादि और अनादि दो प्रकार का है । भावब ध भी मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति यों दो प्रकार का है ।(३) भूतकाल में जीव ने कर्मब ध किया, वर्तमान में करता है, भविष्य में करेगा, उसमें प्रतिसमय भिन्नता होती है अर्थात् अ तर होता है । क्यों कि गति, परिणमन आदि सभी में अ तर आता रहता है । पाप क्रिया करने में भी द्रव्य, भाव में अ तर आता है और ब ध में भी अ तर आता है (२४ द डक में समझ लेना) । (४) निर्जरा पुद्‌गल आधार रूप नहीं होते हक्त, उन पर कोई बैठना आदि नहीं कर सकता है । वे सूक्ष्म परिणाम में परिणत हो जाते हक्त ये माक दिय पुत्र नामक अणगार के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों का भाव है ।

नोट-*प्रवाह वश मूल पाठ में बीच-बीच में 'गोयमा' लगा दिया गया है, यह लिपि दोष है । क्यों कि यह स पूर्ण उद्देशक माक दिय पुत्र अणगार के प्रश्नों का है । अतः भगवान द्वारा कहे गये उत्तरों के स बोधन में* *'माग दियपुत्ता'* ***ऐसा ही सर्वत्र होना चाहिये ।***

प्रश्न-६ : कडजुम्मा राशि आदि की क्या परिभाषा है एव २४ द डक के जीवों पर इन्हें किस तरह घटित किये हक्त ?

उत्तर- युग्म (जुम्मा)- (१) चार का भाग देने से जिस राशि में कुछ भी अवशेष नहीं रहे वह कृतयुग्म(कडजुम्म)राशि कही जाती है । (२) चार का भाग देने पर जिस राशि में तीन अवशेष रहे वह, तेओग (त्रयोज) तेउगराशि कही जाती है । (३-४) इसी प्रकार दो

या एक अवशेष रहने वाली राशि क्रमशः दावरजुम्म(द्वापर युग्म) और कल्योज (कलिओग) राशि कही जाती है ।

नारकी, देवता, प चेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जघन्य पद की अपेक्षा कडजुम्म राशि होते हक्त । उत्कृष्ट पद की अपेक्षा तेओग राशि होते हक्त ।

विकलेन्द्रिय, चार स्थावर, जघन्य पद में कडजुम्म राशि होते हक्त और उत्कृष्ट पद में द्वापर युग्म(दावर जुम्म) राशि होते हक्त । मध्यम पद में सभी में चारों भ ग होते हक्त ।

वनस्पति और सिद्ध में जघन्य और उत्कृष्ट पद(स ख्या) नहीं होती है क्यों कि वनस्पति में अन तकाल तक कम होते ही रहेंगे और सिद्धों में बढते ही रहेंगे । अतः मध्यम पद ही होता है उसमें चारों जुम्मा हो सकते हक्त ।

स्त्रियों की स ख्या जघन्य और उत्कृष्ट पद में कडजुम्म होती है । मध्यम में चारों हो सकती है । देवी तिर्यंचाणी एव मनुष्याणी भी ऐसे ही जानना ।

प्रश्न-७ : निश्चय एव व्यवहार नय से पदार्थों के वर्ण, ग ध आदि की प्ररूपणा किस प्रकार होती है ?

उत्तर- गुड-शक्कर आदि में व्यवहार से एक मधुर रस है, निश्चय से सूक्ष्मदृष्टि से बादर अन तप्रदेशी स्क ध होने से गुड-शक्कर में पाँचों रस होते हक्त और वर्णादि २० ही बोल (५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस और ८ स्पर्श) पाये जाते हक्त । वैसे ही गुड, वर्ण से पीला और ग ध से सुग ध वाला होता है तथापि उसमें अन तप्रदेशी होने के कारण सभी वर्ण, ग ध, रस आदि होते हक्त ।

इसीप्रकार दिखने एव अनुभव में आने वाली सभी वस्तुओं में व्यवहार नय से या मुख्यता से १-१ वर्णादि और निश्चय नय से सभी वर्णादि है ऐसा समझना चाहिये । **यथा-** हल्दी पीली है, कौआ काला है, श ख सफेद है, नीम कडुवा है, मयूरक ठ नीला है इत्यादि । राख-व्यवहार से रूक्ष है फिर भी उसमें आठ ही स्पर्श है ।

प्रश्न-८ : परमाणु, द्विप्रदेशी आदि में वर्णादि कितने है ?

उत्तर- एक परमाणु में - १+१+१+२=५ वर्णादि होते हक्त ।
एक द्विप्रदेशी में उत्कृष्ट-२+२+२+४=१० वर्णादि होते हक्त ।
एक तीनप्रदेशी में उत्कृष्ट-३+२+३+४=१२ वर्णादि होते हक्त ।
एक चारप्रदेशी में उत्कृष्ट-४+२+४+४=१४ वर्णादि होते हक्त ।
एक पाँचप्रदेशी में उत्कृष्ट-५+२+५+४=१६ वर्णादि होते हक्त ।

इस प्रकार अस ख्य प्रदेशी और सूक्ष्म परिणत अन तप्रदेशी तक वर्ण आदि उत्कृष्ट-१६ होते हक्त । बादर अन त प्रदेशी में वर्ण आदि २० होते हक्त ॥ उद्देशक-६ स पूर्ण ॥

प्रश्न-९ : उपधि, परिग्रह और प्रणिधान के भेद-प्रभेद कौन से हक्त एव २४ द डक में वे किस प्रकार पाये जाते हक्त ?

उत्तर- उपधि के तीन प्रकार- १. कर्मोपधि २. शरीरोपधि ३. बाह्य उपकर उपधि । एकेन्द्रिय और नारकी के दो उपधि है, बाह्य उपकरण उपधि नहीं है । शेष सभी द डक में तीनों उपधि है ।

सचित्त, अचित्त, मिश्र की अपेक्षा सर्वत्र तीनों उपधि है । नारकी में सचित्त= शरीर । अचित्त= उत्पत्ति स्थान और मिश्र= श्वासो-श्वास आदि है । उपधि के समान **परिग्रह** के भी ये ही ३-३ भेद समझना । **प्रणिधान**=स्थिर योग । सुप्रणिधान और दुष्प्रणिधान यों दो भेद हक्त और दोनों के पुनः मन, वचन, काया; यों तीन-तीन भेद हक्त । जिस द डक में जितने योग हक्त उतने प्रणिधान समझ लेना ।

प्रश्न-१० : मद्दुक श्रावक ने अन्यतीर्थिकों को निरूत्तर कैसे किया ?

उत्तर- राजगृही नगरी के बाहर गुणशील उद्यान में भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे । **मद्दुक** श्रावक दर्शन करने के लिये घर से पैदल ही निकला । बीच में अन्यतिर्थिकों के निवास स्थान आश्रम के पास होकर जा रहा था कि कुछ स न्यासी उसके पास आये और पूछने लगे कि तुम्हारे भगवान प चास्तिकाय बताते हक्त, तुम उसको जानते, देखते हो तो हमें भी बताओ कि वे कहाँ है ? कैसी है ? हम भी देखें ।

प्रत्यक्ष देखने का तर्क एव समाधान- मद्दुक ने कहा- कई वस्तुओं के कार्य से ही उसका अस्तित्व जाना तथा देखा जाता है । सभी वस्तुएँ प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती । अन्यतीर्थिक स न्यासी आक्षेप पूर्वक कहने लगे कि अरे ! तुम भी कैसे श्रावक हो कि जानते नहीं, देखते नहीं, फिर भी मानते हो!!

मद्दुक श्रावक ने जवाब में अनेक प्रश्न खडे कर दिये- (१) वायुकाय चलती है उसे तुम देखते हो ? सुगन्ध आ रही है, उसे देखते हो ? मेरे शब्द सुन रहे हो, उसे देखते हो ? अरणि काष्ट में अग्नि है, उसे देखते हो ? समुद्र के उस पार भी पदार्थ है, उन्हें देखते हो ? देवलोक भी है, उन्हें देखते हो ? सभी प्रश्नों का उत्तर निश्चित है कि- **नहीं देखते हक्त ।**

मद्दुक ने उन्हें समझाया कि हे आयुष्मन् ! ऐसा करोगे तो लोक के कितने ही पदार्थों का अभाव हो जायेगा अर्थात् उन सबका निषेध करना पडेगा । अतः कोई वस्तु को मैं, तुम या छद्मस्थ मनुष्य देख नहीं सकते फिर भी उसके गुण, धर्म, कार्य से उस पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिये । इस प्रकार अन्यतीर्थिकों के आक्षेप का समाधान कर, उन्हें निढत्तर किया एव भगवान की सेवा में पहुँचा । व दन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा ।

सिद्धान्त का ज्ञान आवश्यक- भगवान ने परिषद के समक्ष उसके सही उत्तर देने की प्रश सा की और कहा कि जो बिना जाने अज्ञानवश गलत प्ररूपण आदि करते हैक्त, वे केवलज्ञानी भगवान की एव धर्म की आशातना करते हक्त । तात्पर्य यह है कि श्रमण हो या श्रमणोपासक, उसे यथासमय अपने धर्म सिद्धान्तों का ज्ञान एव उसका अर्थ, परमार्थ, हेतु, प्रश्न, उत्तर सहित प्राप्त करना चाहिये । अपने मिले समय का सदुपयोग करके शास्त्राभ्यास में समय अवश्य लगाना चाहिये ।

शास्त्र अभ्यास नहीं बढाने वाला स्वय के धर्म की स्थिरता का पूर्ण रक्षक भी नहीं हो सकता है एव समय-समय पर सिद्धान्त विपरीत प्ररूपण चिंतन करने वाला भी बन सकता है । उत्तराध्ययन

सूत्र के २९ वें अध्ययन के १९ वें प्रश्न उत्तर में भी यही भाव बताया गया है और प्रस्तुत प्रकरण में भगवान ने मद्दुक की प्रश सा के बाद यही भाव प्रकट किये हक्त ।

मद्दुक श्रावक का भविष्य– गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने कहा कि यह मद्दुक श्रावक श्रावकपर्याय की आराधना करके प्रथम देवलोक के अढणाभ विमान में उत्पन्न होगा । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में एक भव करके मुक्त होगा ।

प्रश्न-११ : देवों के पुण्य क्षय करने में परस्पर कौन सी तरतमता होती है ?

उत्तर– जितने पुण्या श को व्य तरदेव १०० वर्ष में क्षय करते हक्त उतने पुण्यों को नवनिकाय के देव २०० वर्ष में क्षय करते हक्त । असुर कुमार- ३०० वर्ष में; ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिषी देव-४०० वर्ष में; सूर्य, चन्द्र देव-५०० वर्ष में; पहला दूसरा देवलोक के देव- हजार वर्ष में; ३-४ देवलोक के देव- २००० वर्ष में; ५-६ देवलोक के देव- ३००० वर्ष में; ७-८ देवलोक के देव-४००० वर्ष में; ९ से १२ देवलोक के देव-५००० वर्ष में; प्रथम ग्रैवेयकत्रिक के देव- लाख वर्ष में, दूसरी ग्रैवेयकत्रिक के देव-२ लाख वर्ष में; तीसरी ग्रैवेयकत्रिक के देव-३ लाख वर्ष में; चार अणुत्तर विमान के देव-४ लाख वर्ष में और सर्वार्थसिद्ध के देव ५ लाख वर्ष में उतने पुण्यांश को क्षय करते हक्त । ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१२ : क्या छद्मस्थ वीतराग या केवली के पाँव के नीचे प चेन्द्रिय प्राणी आ सकता है ?

उत्तर– अकषायी छद्मस्थ श्रमण के उपयोग पूर्वक चलते हुए भी कभी कूकडे का छोटा बच्चा, बतक का छोटा बच्चा, इसी तरह के छोटे बच्चे अचानक उडकर कूद कर पांव के नीचे आ सकते हक्त । उसमें उन श्रमणों की गलती नहीं होती है किन्तु वे बच्चे स्वय अनायास आ जाते हक्त । केवली के ऐसा अनायास प्रस ग नहीं होता है । उन कषाय रहित छद्मस्थ श्रमण को इरियावहि क्रिया ही लगती है । सा परायिक क्रिया नहीं लगती है ।

प्रश्न-१३ : अन्यतीर्थिकों ने राजगृही नगरी में गौतमस्वामी के पास आक्षेपात्मक चर्चा क्या की ?

उत्तर– राजगृही नगरी में भगवान के ठहरने का स्थान और अन्य-तीर्थिकों के ठहरने का स्थान निकट में ही था । अन्यतीर्थिकों के आश्रम के पास से श्रमणों का शहर में गोचरी वगैरह के लिये जाने का रास्ता पडता था । अतः अन्यतीर्थिक श्रमण कभी रास्ते में ही रोककर प्रश्न चर्चा करते, कभी स योग न मिले तो स्थान में आकर भी चर्चा करते थे । प्रस्तुत उद्देशक-८ में स तों के ठहरने के स्थान पर आकर गौतमस्वामी से आक्षेपात्मक चर्चा प्रार भ करी थी । जिसका सार यह है कि- (१) जो भी श्रमण होते हक्त वे देखकर विशेष सावधानी पूर्वक गमनागमन करते हक्त । इसलिये वे स यत विरत एव प डित है और अन्यतीर्थिक लोग बिना देखे या बिना ध्यान पूर्वक गमनागमन आदि क्रियाएँ करते हक्त । इसलिये वे स्वय ही अस यत-अविरत एव बाल होते हक्त । इस प्रकार श्रमणों पर किया गया आक्षेप गौतमस्वामी ने पुनः उन्हीं पर छोड दिया; वे निरूत्तर होकर चले गये ।

प्रश्न-१४ : परमाणु, द्विप्रदेशी आदि को क्या केवली ही जानते हक्त ? केवली के जानने देखने का समय युगपत् होता है क्या ?

उत्तर– परमाणु आदि को परमावधिज्ञानी और केवली जान-देख सकते हक्त । सामान्य अवधिज्ञानी आदि अन त प्रदेशी को जान देख सकते हक्त । मतिज्ञानी-श्रुतज्ञानी, परमाणु आदि सभी को जान सकते हक्त किन्तु देख नहीं सकते । बादर स्क धों को देख सकते हक्त । जानना और देखना एक समय में नहीं होता है केवली के अन तर समय में होता है, छद्मस्थ सभी अन तर अ तर्मुहूर्त से देखते हक्त ।

प्रश्न-१५ : भवी द्रव्य नारकी आदि चारों गति में होते हक्त क्या?

उत्तर– भावी नारकी का आयुष्य बा धा हुआ जीव, भवीद्रव्य नारकी कहा जाता है । उसी तरह भावी तिर्यंच, मनुष्य और देव का आयुष्य बा धा हुआ जीव, भवीद्रव्य तिर्यंच, भवीद्रव्य मनुष्य और भवीद्रव्य देव कहा जाता है । भवीद्रव्य नारकी आदि की आगति और उम्र आगे चार्ट से दी गई है, यथा-

नाम	भवी द्रव्य	स्थिति	
		जघन्य	उत्कृष्ट
भवीद्रव्य नारकी	सन्नी-असन्नि तिर्यंच और सन्नी मनुष्य	अ तर्मुहूर्त	करोड पूर्व
भवीद्रव्य देव	सन्नी असन्नि तिर्यंच और सन्नी मनुष्य	अ तर्मुहूर्त	तीन पल
भवीद्रव्य पृथ्वी पानी वनस्पति	२२ द डक	अ तर्मुहूर्त	साधिक दो सागर
भवीद्रव्य तेउ वायु विकलेन्द्रिय	१० द डक	अ तर्मुहूर्त	करोड पूर्व
भवीद्रव्य तिर्यंच प चेन्द्रिय	२४ द डक	अ तर्मुहूर्त	३३ सागर
भवीद्रव्य मनुष्य	२४ द डक	अ तर्मुहूर्त	३३ सागर

॥उदेशक-९ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१६ : सोमिल ब्राह्मण कौन था और उसके भगवान के साथ प्रश्नोत्तर किस प्रकार हुए ?

उत्तर- वाणिज्यग्राम नामक नगर में सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था । वह ४ वेद आदि ब्राह्मण मत के सिद्धा तों में निष्णात था । उसके ५०० शिष्य थे । वह धन कुटु ब से स पन्न था । सुखपूर्वक कुटु ब का स्वामित्व निर्वाह करते हुए रहता था ।

एक बार उसने जाना कि भगवान महावीर स्वामी नगरी के बाहर द्युतिपलास उद्यान में पधारे हुए हक्त । तब उसे ऐसे मनोगत स कल्प उत्पन्न हुए कि मक्त भी जाऊँ और कई प्रश्न पूछूँ । यदि वे मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे तो मक्त उन्हें व दना नमस्कार करके पर्युपासना करूँगा । यदि उत्तर न दे सकेंगे तो मक्त इन प्रश्नों द्वारा उन्हें निढत्तर करूँगा । तदनुसार वह उद्यान में पहुँचा और प्रश्न प्रार भ किया ।

सोमिल-भ ते ! आपके यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार है ?

भगवान- हे सोमिल ! तप, स यम, नियम, स्वाध्याय, ध्यान आदि योग, यतना प्रवृत्ति हमारी **यात्रा**(स यम यात्रा) है । पाँच इन्द्रिय एव कषाय को विवेक पूर्वक स्ववश में निय त्रण में रखना, हमारा **यापनीय**

है । वात पित्त कफ जन्य शारीरिक रोग आत क मेरे उपशा त है यह मेरा **अव्याबाध**(सुख)है ।आराम, उद्यान, सभा, प्याऊ, देवस्थान आदि स्त्री, पशु, प डक रहित स्थानों में शय्या स स्तारक ग्रहण कर रहना, यह हमारा **प्रासुक विहार** है ।

सोमिल- 'सरिसव' भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

भगवान- सोमिल ! सरिसव भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी । ब्राह्मण मत में सरिसव दो प्रकार के कहे हक्त - (१) मित्र सरिसव(सरीखे) (२) धान्य सरिसव(सरसों) । साथ में जन्में, साथ में खेले और साथ में बडे हुए, सरीखे मित्र रूप **सरिसव** अभक्ष्य होते हक्त । धान्य सरिसव (सरसों) अचित्त हो, एषणा नियमों से युक्त हो, याचित हो और प्राप्त हो तो श्रमण निर्ग्रंथों को भक्ष्य(खाने योग्य) है किन्तु जो सचित्त हो, अनेषणीय हो, अयाचित या अप्राप्त हो वह सरिसव धान (सरसों) अभक्ष्य-श्रमण निर्ग्रन्थों के खाने के अयोग्य है ।

सोमिल- मास भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

भगवान- ब्राह्मण मत में 'मास' दो प्रकार के कहे हक्त उनमें से श्रावण आदि अषाढ पर्यन्त मास अभक्ष्य है । सोने-चा दी के माप करने के मास अभक्ष्य है । धान्य मास(उडद) अचित्त, एषणीय, याचित, प्रदत्त हो तो श्रमणों को भक्ष्य है और सचित, अनेषणीय, अयाचित, अप्राप्त हो तो अभक्ष्य है ।

सोमिल- 'कुलत्था' अभक्ष्य है या भक्ष्य ?

भगवान- ब्राह्मण मत में **कुलत्था** दो प्रकार के कहे हक्त उनमें से कुलवान स्त्री **कुलत्था** है वह अभक्ष्य है । धान्य कुलत्था यदि अचित्त, एषणीय, याचित और प्रदत्त है तो श्रमणों को भक्ष्य है अन्यथा अभक्ष्य होता है ।

विवेक पूर्ण यथार्थ उत्तर सुनकर सोमिल झुक गया, बोध को प्राप्त कर उसने १२ श्रावक व्रत स्वीकार किये । अनेक वर्ष व्रताराधन कर सद्गति को प्राप्त किया एव एकाभवावतारी बना । महाविदेह से मोक्ष जायेगा ।

नोट- सोमिल के प्रश्न जिज्ञासा के नहीं किन्तु परीक्षा मूलक थे ।

आगमों में अनेक जगह सोमिल ब्राह्मण नाम आता है वे सभी भिन्न-भिन्न है । अ तगड का सोमिल अलग है, वह २२ वें भगवान के समय हुआ नरक में गया । निरयावलिका का सोमिल अलग है, वह २३ वें भगवान के समय हुआ, विराधक होकर शुक्र ग्रह देव बना, एक भव करके मोक्ष जायेगा । प्रस्तुत सोमिल २४वें भगवान के समय हुआ । वह श्रावकपन का आराधक होकर प्रथम देवलोक में गया और एक भव करके मोक्ष जायेगा ।

प्रश्न-१७ : इस शतक में अन्य किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- (१) अठारह पाप, पाँच स्थावर एव बादर कलेवर, ये जीव के उपभोग में आते हक्त । अठारह पाप विरति, तीन अरूपी अस्तिकाय, परमाणु, अशरीरी जीव और शैलेशी अवस्था के अणगार; ये किसी के उपभोग में नहीं आते हक्त । **(२)** जघन्य उम्र वाले (वरा) अग्निकाय के जीवों की उत्कृष्ट जितनी स ख्या होती है, उत्कृष्ट उम्र वाले(परा) अग्निकाय के जीवों की भी उत्कृष्ट स ख्या उतनी ही होती है । **(३)** जिस तरह मनुष्य अल कृत, विभूषित होने पर सु दर दिखता है वैसे ही देव-देवी भी विभूषित, अल कृत होने पर सु दर दिखते हक्त । वस्त्रादि से अविभूषित मनुष्य सुन्दर मनोज्ञ नहीं दिखता है वैसे ही देव भी असु दर दिखते हक्त ।

(४) सभी द डकों में सम्यक्त्व में उत्पन्न होने वाले अथवा सम्यग्दृष्टि जीव अल्पकर्मी हलुकर्मी होते हक्त, मिथ्यादृष्टि महाकर्मी भारी कर्मा होते हक्त । सम्यग्दृष्टि के नया ब ध भी अत्यल्प ही होता है । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवों को इस अपेक्षा से(एक दृष्टि होने से) लगभग समकर्मी कहा गया है । **(५)** मरण के चरम समय में भी जीव उसी भव का आयुष्य वेदता है । अगले भव के आयु के सम्मुख होता है किंतु उसे वेदता नहीं है । **(६)** सम्यग्दृष्टि जीवों के इच्छित विकुर्वणा होती है । मिथ्यादृष्टियों के स कल्प से विपरीत विकुर्वणा भी हो जाती है । **(७)** केवली यक्षाविष्ट नहीं होते हक्त ।

(८) कोई व्यक्ति हजार रूप बनाकर युद्ध करता है तो भी उन सब रूपों में एक ही जीव होता है और उनके बीच में आत्मप्रदेश

भी स ब धित ही होते हक्त । **(९)** असुरों और देवों के युद्ध हो तो वैमानिक देव जो भी तिनका, पत्ता, लकडी का स्पर्श करे वे सब शस्त्र रूप में परिणत हो जाते हक्त किन्तु असुरकुमारों को तो शस्त्रों की विकुर्वणा करनी पडती है ।

(१०) कोई भी महर्द्धिक देव किसी भी द्वीप समुद्र की शीघ्र ही परिक्रमा लगाकर आ सकता है । जम्बूद्वीप से ढचकवर द्वीप तक ऐसा जानना । आगे के द्वीप समुद्रों में जा सकते हक्त और आ सकते हक्त किन्तु प्रयोजनाभाव होने से परिक्रमा नहीं लगाते । **(११)** भावितात्मा का अणगार वैक्रिय लब्धि के सामर्थ्य से तलवार की धार पर चले, अग्नि में से निकले, ग गा नदी के पूर में सामने चले तो किसी प्रकार की बाधा नहीं आवे । पुष्कल स वर्तक मेघ में से पार होवे तो भींजे नहीं । **(१२)** छोटी वस्तु बडी वस्तु से व्याप्त होती है । अतः परमाणु आदि वायुकाय से व्याप्त(स्पर्शित) होते हक्त । मशक के चौतरफ वायु होती है अतः वह भी वायु से व्याप्त(स्पर्शित) होती है । **(१३)** नरक एव देवलोकों में तथा उनके बाहर अर्थात् लोक में सर्वत्र वर्णादि २० बोल वाले पुद्गल भरे हुए हक्त ।

शतक-१९ : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशकों के माध्यम से अनेक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है; जिसमें चार उद्देशकों में अतिदेशपूर्वक स क्षिप्त सूचन है। शतक के प्रार भ में उपलब्ध एक स ग्रहणी गाथानुसार उद्देशकों के नाम और विषय इस प्रकार है-

(१-२) लेश्या और गर्भ- लेश्या-गर्भगत जीव की लेश्या स ब धी वर्णन प्रज्ञापना १७/४ के निर्देश के साथ स क्षिप्त है ।

(३) पृथ्वी- पृथ्वी आदि पाँच स्थावर स ब धी विविध निरूपण है, इनकी अवगाहना की परस्पर अल्पाबहुत्व तथा पृथ्वीकाय की सूक्ष्म अवगाहना एव कठोरता को दृष्टा त पूर्वक समझाया है ।

(४) महाश्रव– चार गति में महाश्रव, महाक्रिया, महावेदना, महानिर्जरा स ब धी निरूपण किया गया है ।

(५) चरम– चरम-परम नैरयिक आदि २४ द डक में तथा दो प्रकार की वेदना का स क्षिप्त कथन प्रज्ञापना के निर्देश से किया है।

(६) द्वीप– जीवाभिगम के निर्देश से द्वीप-समुद्र का कथन है ।

(७) भवन– चारों जाति के देवों के भवन आवास एव विमान का वर्णन है ।

(८) निर्वृत्ति– २४ द डक के जीवों में जीव, कर्म, शरीर, इन्द्रिय आदि १९ बोलों के आधार से निर्वृत्ति(निष्पत्ति) का निरूपण है ।

(९) करण– करण का स्वरूप और उसके विविध प्रकार से भेदों का निरूपण है ।

(१०) व्य तर देव– वाणव्य तर देवों के समाहार आदि की पृच्छा में १६ वें शतक के द्वीपकुमार की भलावण युक्त स क्षिप्त सूचन है।

प्रश्न-२ : एक जीव ही अपना शरीर बनाता है या २-४-५ या अन त जीव मिलकर अपना साधारण शरीर बनाते हैं ?

उत्तर– २३ द डक में प्रत्येक जीव अपना स्वत त्र शरीर स्वय बनाते हक्त वनस्पति में प्रत्येक काय वनस्पति के सिवाय शेष साधारण वनस्पति वाले जीव अन त मिलकर अपना साधारण (सम्मिलित) शरीर बनाते हक्त । २-४-५ या अस ख्य जीव मिलकर कोई भी साधारण शरीर नहीं बनाते हक्त । वे तो अपना स्वत त्र प्रत्येक शरीर ही बनाते हक्त । उन जीवों के लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, आहार, समुद्घात, गति, आगति, स्थिति आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति के समान समझना ।

प्रश्न-३ : एकेन्द्रियों के अवगाहना स ब धी अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर– एकेन्द्रिय के सर्व जीव के भेद-२२ हक्त । इनकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना यों दो भेद करने से २२x२=४४ बोलों की अल्पाबहुत्व इस प्रकार है-

क्रम	बोल	हीनाधिक
१	अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना	सबसे छोटी
२	अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
३	अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
४	अपर्याप्त सूक्ष्म अप्काय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
५	अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
६	अपर्याप्त बादर वायुकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
७	अपर्याप्त बादर अग्निकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
८	अपर्याप्त बादर अप्काय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
९	अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
१०	अपर्याप्त प्रत्येक शरीरी वनस्पति की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
११	अपर्याप्त बादर निगोद की जघन्य अवगाहना	आपस में तुल्य
१२	पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
१३	अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना	विशेषाधिक
१४	पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की उत्कृष्ट अवगाहना	विशेषाधिक
१५	पर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी
१६	अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय की उत्कृष्ट अवगाहना	विशेषाधिक
१७	पर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय की उत्कृष्ट अवगाहना	विशेषाधिक
१८	पर्याप्त सूक्ष्म अग्निकाय की जघन्य अवगाहना	अस ख्यगुणी

इस तरह १८-१९-२० सूक्ष्म अग्निकाय के, २१-२२-२३ सूक्ष्म अपकाय के, २४-२५-२६ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के, २७-२८-२९ बादर वायुकाय के, ३०-३१-३२ बादर अग्निकाय के । ३३-३४-३५ बादर अप्काय के, ३६-३७-३८ बादर पृथ्वीकाय के, ३९-४०-४१ बादर निगोद के जीवों की अवगाहना है । ४२-४३-४४ प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के तीनों बोल अस ख्यगुण-अस ख्यगुण कहना ।

सबसे अधिक अवगाहना प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पति के पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन साधिक है । सबसे छोटी सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना है । शेष सभी बोलों की क्रमशः कुछ अधिक अवगाहना है । प्रत्येक शरीरी

वनस्पति और बादर निगोद के अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना एक सरीखी (तुल्य) है ।

समुच्चय बोल से- पृथ्वी से पानी **सूक्ष्म है** । पानी से अग्नि, अग्नि से वायु और वायु से वनस्पति **सूक्ष्म है** । समुच्चय बोल से- वायु से अग्नि **बादर (बडी) है** । अग्नि से पानी बादर है पानी से पृथ्वी बादर है और पृथ्वी से वनस्पति **बादर(बडी)है** ।

चार स्थावर की जघन्य उत्कृष्ट सभी अवगाहनाएँ अ गुल के अस ख्यातवें भाग की है अर्थात् उक्त ४३ बोलों में अवगाहना अ गुल के अस ख्यातवें भाग की ही है, केवल ४४वें बोल में उत्कृष्ट एक हजार योजन साधिक है ।

प्रश्न-४ : पृथ्वीकाय की सूक्ष्मता और कठोरता के लिये दृष्टा त पूर्वक कैसे समझाया है ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-३ में यह समझाया गया है कि उपरोक्त ४४ बोलों की अल्पाबहुत्व में बादर पृथ्वीकाय का न बर नौवाँ है अर्थात् आठ बार अस ख्य गुणा करे इतनी अवगाहना है । फिर भी चक्रवर्ती की जवान स्वस्थ दासी वज्रमय शिला और शिलापुत्रक(लोढे) से लाख के गोले जितनी पृथ्वीकाय को २१ बार पीसे तो कई जीव मरते हक्त, कई नहीं मरते, कई स घर्ष को प्राप्त होते हक्त, कई को स घर्ष नहीं होता, कई को स्पर्श होता है, कई को स्पर्श मात्र भी नहीं होता है । इस प्रकार कुछ पीसे जाते हक्त, कुछ नहीं पीसे जाते हक्त । ऐसी छोटी पृथ्वीकाय की अवगाहना होती है ।

प्रश्न-५ : पृथ्वी आदि पाँच स्थावर की वेदना को सदृष्टा त कैसे समझाया है ?

उत्तर- यहाँ तीसरे उद्देशक में यह समझाया गया है कि- कोई जवान, स्वस्थ पुढष किसी वृद्ध अशक्त पुढष को मस्तक पर जोर-जोर से प्रहार करे, तब उसे जैसी वेदना होती है इससे भी अनिष्टतर वेदना पृथ्वीकाय आदि पाँचों एकेन्द्रिय जीवों को स्पर्श मात्र से होती है । ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : अल्पाश्रव और महाश्रव क्रिया, वेदना, निर्जरा; २४ द डक में किस प्रकार समझना ?

उत्तर- आश्रव, क्रिया, वेदना, निर्जरा, इन चार के **महा** और अल्प विशेषण लगाने से १६ भ ग बनते हक्त । पहलाभ ग-महाश्रव महाक्रिया महावेदना महानिर्जरा का बनता है । दूसराभ ग- महाश्रव महाक्रिया महावेदना अल्पनिर्जरा का बनता है । यों क्रमशः भ ग विधि से १६ वा भ ग-अल्पाश्रव अल्पक्रिया अल्पवेदना अल्पनिर्जरा का बनता है । इन सोलह भ ग में से नारकी में केवल एक दूसरा भ ग ही पाया जाता है, शेष भ ग वहाँ नहीं पाये जाते ।

देवों में चौथा भ ग अल्प वेदना अल्प निर्जरा वाला ही पाया जाता है । औदारिक के दस द डकों में १६ ही भ ग पाये जा सकते हक्त । ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-७ : चरम नैरयिक और परम नैरयिक आदि २४ द डक का क्या मतलब है ? उन्हें हलुकर्मी या भारेकर्मी कैसे समझना?

उत्तर- चरम नैरयिक अल्पायु वाले, परम नैरयिक-अधिक आयुष्य वाले । नारकी में ज्यादा उम्र वाले भारी कर्मा होते हक्त और देवता में ज्यादा उम्र वाले हलुकर्मी होते हक्त, कम उम्र वाले भारी कर्मा होते हक्त, वे शीघ्र मनुष्य तिर्यंच में जाने वाले होते हक्त, इसलिये भारी कर्मा कहे गये हक्त । औदारिक के १० द डक नरक के समान जानना । ॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक-६ स क्षिप्त ॥

प्रश्न-८ : चारों जाति के देवों के आवास, नगर, भवन, विमान कैसे होते हक्त और उनकी स ख्या कितनी होती हे ?

उत्तर- ज्योतिषी देवों के विमान स्फटिक रत्नों के होते हक्त । शेष तीनों जाति के देवों के भवन, नगर, विमान सर्वरत्नमय होते हक्त । 'सर्वरत्न' यह एक रत्न का नाम है ऐसा समझना अथवा विविध रत्नों वाले होते हक्त । ये सभी देवों के आवास, भवन आदि शाश्वत है तथापि इनमें पुद्‌गलों का चय उपचय होता रहता है । ये कभी नष्ट नहीं होते अनादि से हक्त । ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-९ : निर्वृत्ति और करण का क्या अर्थ है और इनके कितने प्रकार है ?

उत्तर- (१) निर्वृत्ति- जीव के द्वारा निष्पादित भाव(उत्पादित भाव) जीव निर्वृति कहलाते हक्त । वे अनेक प्रकार के हक्त यथा-(१)जीव के भेद रूप में मूल ५ निर्वृत्ति है- एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक और उत्कृष्ट ५६३ भेद जीव निष्पादित जीव निर्वृत्ति है । (२) कर्मरूप से जीव निर्वृत्ति, मूल-८ और उत्तर-१४८ यावत् उत्कृष्ट अस ख्य प्रकार होते हक्त । २४ द डक के जीवों में जहाँ जितने भेद और कर्म प्रकृति हों उतने भेद निर्वृत्ति के समझने चाहिये । इसी तरह (३) शरीर पाँच की निर्वृत्ति (४) इन्द्रिय-५ की निर्वृत्ति । यों क्रमशः भाषा-४, मन-४, कषाय-४, वर्णादि-२०, स स्थान-६, स ज्ञा-४, लेश्या-६, दृष्टि-३, ज्ञान-अज्ञान-८, योग-३, उपयोग-२ ये सब जीव निर्वृत्ति के ८७ प्रकार है । २४ द डक में भी जहाँ जितने बोल हो उतने भेद इन-इन निर्वृत्ति के समझ लेना । यथा नारकी में स स्थान-१ निर्वृत्ति, लेश्या-३ निर्वृत्ति आदि ।

(२) करण- जीव के द्वारा की जाने वाली प्रार भ की जाने वाली क्रिया-प्रवृत्ति को करण कहते हक्त । अथवा प्रवृत्ति में निमित्त रूप जो हो वे भी करण कहे जाते हक्त । (१) सर्व प्रथम द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये करण के ५ प्रकार निमित्त रूप करण है । २४ ही द डक में ये पाँचों निमित्त करण होते हक्त । (२) तदन तर-शरीर-५ की प्रवृत्ति को ५ करण कहा है । २४ द डक में यथायोग्य शरीर करण समझना । (३) इसी प्रकार इन्द्रिय करण-५, भाषा-४, मन-४, कषाय-४, समुद्घात-७, स ज्ञा-४, लेश्या-६, दृष्टि-३, वेद-३, हिंसा-५(एकेन्द्रियादि की) वर्णादि-२५ । ये कुल ८० जीव के करण रूप कहे गये हक्त । यहाँ कुल गिनती में जीव के मूल-५ भेद और कर्म के मूल-८ भेद गिने गये हक्त ।

निष्पत्ति में उन बोलों को जीव बनाता है और करण में इन बोलों के माध्यम से जीव क्रिया-प्रवृत्ति करता है । ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये । ॥ उद्देशक-८, ९ स पूर्ण ॥ ॥उद्देशक-१० स क्षिप्त॥

शतक-२० : उद्देशक-१ से १०

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर- इसमें १० उद्देशकों के माध्यम से अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का निरूपण किया गया है । तीसरे-चौथे उद्देशक में स क्षिप्त सूचन है । शतक के प्रार भ में एक स ग्रहणी गाथा है । तदनुसार उद्देशकों के नाम और विषय इस प्रकार है-

(१) बेइन्द्रिय- १२ द्वारों से बेइन्द्रियादि स ब धी निरूपण है ।

(२) आगास- आकाश के भेद, अधोलोक आदि तथा प चास्तिकाय के पर्याय नामों का निरूपण है ।

(३) प्राणवध- हिंसा आदि पाप एव अनेक भावों का जीव में परिणमन होना कहा गया है । गर्भगत जीव का शतक-१२ उद्देशक-५ की भलावण से स क्षिप्त कथन है ।

(४) उपचय- प्रज्ञापना पद-१५ के सूचन से इन्द्रियोपचय का स क्षिप्त कथन है ।

(५) परमाणु- परमाणु से लेकर सभी स्क धों में वर्णादि का भ ग स ख्याओ से विस्तृत निरूपण है तथा द्रव्य, क्षेत्र आदि परमाणु के चार प्रकार समझाये है ।

(६) अ तर- नरकपृथ्वी आदि के अ तराल से देवलोकों के अ तराल में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति एव आहार स ब धी निरूपण है ।

(७) ब ध- तीन प्रकार के विशिष्ट ब ध का अनेक द्वारों से निरूपण किया गया है ।

(८) भूमि- कर्मभूमि और अकर्मभूमि स ब धी, तीर्थंकर, जिना तर, श्रुतविच्छेद, पूर्वविच्छेद, तीर्थप्रवर्तन और तीर्थ विच्छेद आदि विषयों का निरूपण है ।

(९) चारण- इसमें ज घाचारण और विद्याचारण लब्धिधारी श्रमण स ब धी विस्तृत निरूपण है ।

(१०) सोपक्रम- इस उद्देशक में सोपक्रम-निढपक्रम आयुष्य का,

जीवों की उत्पत्ति-उद्वर्तना में आत्मोपक्रम-परोपक्रम का एव उनके विकल्पों का, कतिस चय-अकतिस चय जीवों का, छ समर्जित, १२ समर्जित और ८४ समर्जित आदि विविध विषयों का निरूपण है ।

प्रश्न-२ : बेइन्द्रिय आदि के स ब ध में यहाँ १२ द्वारों से क्या वर्णन है ?

उत्तर- शतक-१९, उद्देशक-३ के अनुसार यहाँ भी १२ द्वारों से निरूपण है । वहाँ एकेन्द्रिय पृथ्वी आदि के स ब ध में था, यहाँ बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय एव प चेन्द्रिय स ब धी निरूपण है ।

बेइन्द्रिय आदि में १२ द्वार- (१) प्रत्येक जीव अपना स्वत त्र शरीर बनाते हक्त । २,३,४ आदि जीव मिलकर शरीर नहीं बनाते हक्त । (२) लेश्या-३ (३) दृष्टि-२ (४) ज्ञान-२, अज्ञान-२ (५) योग-२ (६) उपयोग-२ (७) नियमा ६ दिशा का आहार (८) १८ पाप में स्थित (९) आगति-२ गति में से (१०) स्थिति-उत्कृष्ट १२ वर्ष (११) समुद्घात-३ (१२) गति-२ में । इसी तरह तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय में यथायोग्य समझना । प चेन्द्रिय में लेश्या-६, दृष्टि-३, ज्ञान-४, अज्ञान-३, योग-३, आगति सर्वार्थसिद्ध तक से, स्थिति-३३ सागरोपम की, समुद्घात-६, गति भी सर्वार्थसिद्ध तक । शेष बेइन्द्रिय के समान है ।

बेइन्द्रियादि में ज्ञान स ज्ञा- बेइन्द्रिय आहार करते है, इष्ट-अनिष्ट ग ध, रस, स्पर्श का वेदन करते हक्त किंतु उन्हें यह ज्ञान-स ज्ञा-समझ नहीं होती है कि हम आहार कर रहे हक्त या इष्ट-अनिष्ट स्पर्श आदि का मुझे स योग हुआ है; ऐसा ज्ञान उन्हें नहीं होता । प चेन्द्रिय में किसी के ऐसा ज्ञान होता भी है और कईयों को ऐसा ज्ञान नहीं भी होता है । क्यों कि प चेन्द्रिय जीव सन्नी, असन्नि दोनों तरह के होते हक्त । स ज्ञी में तिर्यंच, मनुष्य, देव, नारक चारों होते हक्त । अत: कहा गया है कि किन्हीं को अनुभव का ज्ञान होता है और किन्ही को नहीं होता । हम मारे जा रहें है, ऐसा ज्ञान भी बेइन्द्रिय आदि को नहीं होता है । प चेन्द्रिय में किन्हीं को मारे जाने का ज्ञान होता है और किन्हीं को वैसा ज्ञान नहीं होता है । ॥ उद्देशक-१ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३ : धर्मास्तिकाय आदि के पर्यायवाची नाम क्या बताये गये हक्त ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-२ में प चास्तिकाय के पर्यायवाची नाम इस प्रकार कहे गये हक्त ।

धर्मास्तिकाय के पर्याय नाम- धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपात आदि विरमण, क्रोधादि विरमण यावत् मिथ्यादर्शन विरमण, ईर्यासमिति आदि, गुप्ति आदि । अन्य भी इस तरह के नाम हक्त ।

अधर्मास्तिकाय के पर्याय नाम- अधर्म आदि, धर्म के प्रतिपक्षी ।

आकाशास्तिकाय के पर्याय नाम- आकाश, गगन, नभ, सम, विषम, खह, विहायस, वीचि, विवर, अम्बर, अम्बरस, छिद्र, शुषिर, मार्गविमुख, अर्द, आधार, व्योम, भाजन, अ तरिक्ष, श्याम, अवकाशा तर, अगम, स्फटिक(स्वच्छ), अन त ।

जीवास्तिकाय के पर्याय नाम- जीव, प्राण, भूत, सत्त्व, विज्ञ, चेत्ता, जेता, आत्मा, र गण(रायगुक्त) हिंडुक, पुद्गल, मानव, कर्ता, विकर्ता, जगत, जन्तु, योनि, स्वय भू, शरीरी, नायक, अ तरात्मा ।

पुद्गलास्तिकाय के पर्याय नाम- पुद्गल, परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् अन तप्रदेशी, इत्यादि ये सब अभिवचन है, पर्याय नाम है । ॥उद्देशक-२ स पूर्ण ॥

प्रश्न-४ : जीव के परिणमन होने वाले भाव कौन से बताये हक्त ?

उत्तर- यहाँ उद्देशक-३ में ऐसे अनेक भाव कहे हक्त जो जीव के ही परिणमन होते हक्त, यथा- (१) १८ पाप परिणाम जीव के ही होते हक्त (२) इन १८ पापों से विरति परिणाम भी जीव के ही होते हक्त ।उसी तरह (३) चार बुद्धि-उत्पातिकी आदि (४) मतिज्ञान के चार भेद-अवग्रह आदि (५) उत्थान, कर्म आदि-५ (६) नैरयित्व यावत् वैमानिकपन (७) आठ कर्म (८) लेश्या-६ (९) दृष्टि-३ (१०) दर्शन-४ (११) ज्ञान-अज्ञान-८ (१२) स ज्ञा-४ (१३) शरीर-५ (१४) योग-३ (१५) उपयोग-२ । ये सभी भाव आत्मा सिवाय अन्यत्र परिणमन नहीं होते हक्त अर्थात् ये सभी परिणमन जीव के ही होते हक्त, अजीव

के नहीं होते । ॥ उद्देशक–३ स पूर्ण ॥ ॥ उद्देशक–४ स क्षिप्त ॥

प्रश्न–५ : परमाणु, द्विप्रदेशी यावत् अन तप्रदेशी में वर्णादि बोल कितने होते हक्त और उनके भ गों की निष्पत्ति किस प्रकार होती है?

उत्तर– परमाणु में २ स्पर्श, चार प्रकार से होते हक्त– १.शीत–रूक्ष, २. शीत–स्निग्ध, ३. उष्ण–रूक्ष, ४. उष्ण–स्निग्ध । द्विप्रदेशी में– २ या ३ या ४ स्पर्श हो सकते हक्त । सूक्ष्म अन त प्रदेशी स्क ध तक चार स्पर्श इसी प्रकार होते हक्त । शेष वर्णादि का वर्णन शतक १८ उद्देशक–६ में किया है । भ ग स ख्या इस प्रकार है–

	वर्ण के भग	ग ध के भग	रस के भग	स्पर्श के भग	कुलभ ग
परमाणु	५	२	५	४	१६
द्विप्रदेशी	१५	३	१५	९	४२
तीनप्रदेशी	४५	५	४५	२५	१२०
चारप्रदेशी	९०	६	९०	३६	२२२
पाँचप्रदेशी	१४१	६	१४१	३६	३२४
छ प्रदेशी	१८६	६	१८६	३६	४१४
सात प्रदेशी	२१६	६	२१६	३६	४७४
आठ प्रदेशी	२३१	६	२३१	३६	५०४
नव प्रदेशी	२३६	६	२३६	३६	५१४
दस प्रदेशी	२३७	६	२३७	३६	५१६
स ख्यातप्रदेशी	२३७	६	२३७	३६	५१६
अस ख्यातप्रदेशी	२३७	६	२३७	३६	५१६
सूक्ष्मअन तप्रदेशी	२३७	६	२३७	३६	५१६
बादरअन तप्रदेशी	२३७	६	२३७	१२९६	१७७६
				कुल	**६४७०**

नोट– उक्त भ ग पूर्व में बताई गई भ ग विधियों से जानने चाहिये ।

प्रश्न–६ : परमाणु को कितने प्रकार से समझाया गया है ?

उत्तर– यहाँ पाँचवें उद्देशक में परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव परमाणु के रूप में चार भेद किये हक्त । द्रव्य से– एक परमाणु, द्रव्य परमाणु है । एक आकाशप्रदेश, यह **क्षेत्र** परमाणु है । एक समय की स्थिति, यह **काल** परमाणु है । एक गुण काला आदि ये **भाव** परमाणु है ।

(१) परमाणु का छेदन, भेदन, दहन, ग्रहण नहीं होता है । (२) परमाणु में सम अवयव(२,४ आदि) नहीं होने से **आधा** नहीं होता (३) विषम अवयव (३,५ आदि) नहीं होने से **मध्य** भी नहीं होता (४) अवयव नहीं होने से **अप्रदेश** कहलाता है । **(५)** विभाग नहीं होने से **अविभाग** कहलाता है । ॥उद्देशक–५ स पूर्ण॥

प्रश्न–७ : तीन प्रकार का ब ध कौन सा है और उसे किस प्रकार घटित किया गया है ?

उत्तर– यहाँ उद्देशक–७ में ब ध के, अपेक्षा से तीन प्रकार कहे हक्त, यथा– (१) जीव प्रयोगब ध– जीव के प्रयत्न से होने वाला ब ध (२) अन तर ब ध– वर्तमान में होने वाला ब ध (३) पर पर ब ध– जिसे १–२–३ आदि समय हो गया हो ऐसा भूतकालीन ब ध । यह तीनों प्रकार का ब ध (१) आठ कर्मों का (२) आठ कर्मों के उदयजन्य ब धने वाले कर्म का, (३) स्त्रीवेद आदि तीनों वेद का, (४) दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय का, (५) औदारिक आदि पाँच शरीर का, (६) ६ लेश्या वाले के, (७) ३ दृष्टिवाले के, (८) पाँच ज्ञान तीन अज्ञान वाले के, (९) आठ ज्ञान–अज्ञान के विषय में प्रवृत्त जीव के, यों कुल ५५ बोलों में जीव ब ध के तीन प्रकार कहे हक्त । इन ५५ में से २४ द डक में जो–जो बोल होवे तदनुसार उनमें भी तीन प्रकार के ब ध समझ लेना ।

प्रश्न–८ : भरत–एरावत में तीर्थंकर तथा उनके शासन आदि स ब धी यहाँ क्या–क्या निरूपण है ?

उत्तर– प्रस्तुत उद्देशक–८ में ऐसे अनेक निरूपण हक्त जो इस प्रकार

है- भरत एरावत में ही उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल है । अकर्मभूमि में नहीं है । महाविदेह क्षेत्र में अवस्थित काल है ।

पाँच भरत, पाँच एरावत में पहले और अ तिम तीर्थंकर प च महाव्रत रूप धर्म एव सप्रतिक्रमण धर्म का प्ररूपण करते हक्त । शेष २२ तीर्थंकर और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करते हक्त ।

भरत-एरावत में २४ तीर्थंकर क्रमश: होते हक्त जिनके २३ जिनांतर होते हक्त । वर्तमान चौवीसी के पहले से आठवें एव १६ से २३वें के शासन में कालिक श्रुत का विच्छेद नहीं हुआ । बीच के नौवे से १५ वें तीर्थंकर के शासन में अर्थात् सात जिनांतर में कालिक श्रुत का विच्छेद हुआ ।

दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी तीर्थंकरों के शासन में होता है । चौवीसवें तीर्थंकर के शासन में दृष्टिवाद का पूर्वगत सूत्र १००० वर्ष तक चलेगा (रहा था) शेष २३ तीर्थंकरों के स ख्यात या अस ख्यात काल तक पूर्व श्रुत चला था ।

२४ वें तीर्थंकर का वर्तमान शासन कुल २१ हजार वर्ष चलेगा । उत्सर्पिणी के २४ वें तीर्थंकर का शासन एक लाख पूर्व में १००० वर्ष कम तक चलेगा ।

अरिह त तीर्थंकर है, चतुर्विध स घ तीर्थ है । तीर्थंकर प्रवचनी है । द्वादशा ग(शास्त्र) प्रवचन है । इस धर्म का अवगाहन करने वाले सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त होते हक्त अथवा कर्म शेष रहने पर देवलोक में जाते हक्त ।

प्रश्न-९ : ज घाचारण और विद्याचारण किसे कहते हक्तै ?

उत्तर- चारण लब्धि के दो प्रकार होते हक्त- (१) ज घाशक्ति धीरे धीरे क्षीण होती है, चलना प्रार भ करते समय ज घा में स्फूर्ति होती है और काला तर से शक्ति क्षीण हो जाने पर स्फूर्ति में म दता आ जाती है, ऐसी ज घाशक्ति की उपमा वाली चारण लब्धि को **'ज घाचारण लब्धि'** कहते है । इस लब्धि वाला प्रार भ में प्रथम उडान में सीधा

ढचकवर द्वीप में पहुँच सकता है । वहाँ से आते समय एक विश्राम न दीश्वर द्वीप में लेता है और दूसरी उडान में अपने स्थान पर पहुँचता है ।

ज घाचारण लब्धि वाला उपर जाना हो तो एक ही उडान में प डक वन में पहुँचता है, वापिस आते समय एक विश्राम न दनवन में करके फिर स्वस्थान पहुँचता है । इस प्रकार ज घा की उपमा वाली इस चारण लब्धि को ज घाचारण लब्धि कहा गया है । (२) विद्या की उपमा वाली चारण लब्धि को **'विद्याचारण लब्धि'** कहते हक्त अर्थात् विद्या उपयोग में आते-आते प्रकृष्ट बनती है, वैसे ही ये लब्धि उपयोग में आने के बाद विशेष प्रभावित बनती है । वह विद्याचारण लब्धि कही जाती है । इस लब्धिवाला प्रथम उडान में मानुषोत्तर पर्वत पर जाता है, दूसरी उडान में न दीश्वरद्वीप में पहुँचता है और एक उडान में पुन: अपने स्थान में आ जाता है । उपर जाना हो तो दो उडान में प डकवन में पहुँचता है और एक उडान में पुन: स्वस्थान में आ जाता है ।

लब्धि किसको होती है ?- (१) तपोलब्धि स पन्न पूर्वधारी मुनिराज को तेले-तेले पारणा रूप तप निर तर करने से **ज घाचारण लब्धि** उत्पन्न होती है । तीन चुटकी बजावे उतनी देर में ज बुद्वीप के कोई देव २१ बार परिक्रमा लगा लेवे, ऐसी तेज गति इनकी होती है । (२) तपो लब्धि धारी पूर्वधर मुनिराज को बेले-बेले निर तर पारणा करने से **विद्याचारण लब्धि** प्राप्त होती है। तीन चुटकी बजावे उतने समय में कोई देव ज बूद्वीप की तीन बार परिक्रमा लगा लेवे ऐसी तीव्र गति इनकी होती है ।

दोनों में तुलना- (१) विद्याचारण लब्धि से ज घाचारण लब्धि विशिष्ट है । (२) विद्याचारण लब्धि बेले-बेले तप से प्राप्त होती है जब कि ज घाचारण लब्धि तेले-तेले के तप से प्राप्त होती है । (३) ऊँचाई में अधिकतम दोनों समान प डकवन तक जाते हक्त किन्तु लम्बाई में ज घाचारण उत्कृष्ट ढचकवर द्वीप तक(अधिक दूर) जाते हक्त जब कि विद्याचारण उत्कृष्ट न दीश्वर द्वीप तक ही जाते हक्त । (४) ज घाचारण

की गति जाते समय एक उडान में उत्कृष्ट होती है जब कि विद्याचारण जाते समय दो उडान में अपनी उत्कृष्ट म जिल में पहुँचता है । (५) वापिस अपने स्थान पर आते समय ज घाचारण दो उडान में आता है और विद्याचारण एक उडान में स्वस्थान में आ जाता है । (६) विद्या-चारण से ज घाचारण की गमन गति **सात गुणी** अधिक होती है ।

स्थलों का परिचय- (१) मानुषोतर पर्वत- ढाई द्वीप की सीमा करने वाला चूडी आकार पर्वत, जो पुष्कर द्वीप के बीच में, पुष्कर द्वीप की भीतरी जगती-वेदिका से आठ योजन दूर है ।

(२) न दीश्वर द्वीप- यह आठवाँ द्वीप है, इसके पहले सात द्वीप, सात समुद्र हक्त ।

(३) ढचकवर द्वीप- यह १६वाँ द्वीप है, इसके पहले १५ द्वीप और १५ समुद्र हक्त ।

(४) न दनवन- मेढपर्वत की समभूमि से ५०० योजन उपर जाने पर मेढ के चौतरफ ५०० योजन की चौडाई का वलयाकार वन प्रदेश है, वह न दनवन है ।

(५) प डकवन- मेढपर्वत पर ४ वन है जिसमें मे मेढ के शिखर पर चौथा प डकवन है । वह समभूमि से ९९००० योजन ऊँचाई पर है ।

लब्धि-प्रयोग प्रयोजन- उक्त लब्धिधारी मुनिराज द्वीप-समुद्र पर्वत आदि के आगम कथित वर्णन के अनुसार स्थानों को देखने के प्रयोजन से इस लब्धि का प्रयोग करते हक्त अथवा अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करने, तीर्थंकरों का दर्शन करने हेतु भी उक्त लब्धि वाले मुनिराज उस लब्धि का प्रयोग करते हक्त ।

आराधना-विराधना- इस लब्धि-प्रयोग का आलोचना प्रायश्चित्त कर ले तो वह अणगार आराधक बनता है । आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करने वाला अणगार विराधक होता है ।

विद्याधर- वैताढ्य पर्वत की प्रथम श्रेणी के मानव विद्याधर कहे जाते हक्त । वे इन दोनों से भिन्न होते हक्त । वे सा सारिक गृहस्थ जीवन जीते हक्त । भरतक्षेत्र में समभूमि पर भी कोई विद्याओं की साधना कर

विद्याधर बन जाते हक्त । इन विद्याधरों की यह विशेषता है कि ये जब मन चाहे पक्षी के समान आकाश में गमन कर सकते है । सामान्यतया वे अपने क्षेत्र में ही विचरण कर सकते हक्त अर्थात् भरतक्षेत्र वाले भरत में, एरवत क्षेत्र वाले एरवत में और महाविदेह की विजय वाले अपनी विजय में जाते आते हक्त । विशिष्ट विद्यासिद्ध करने वाले कोई अधिक भी जा सकते हक्त । क्यों कि ढाईद्वीप के बाहर जाने वाले मानवों की गिनती में विद्याधरों को भी अलग गिनाया गया है- जीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति-३ में । यथा- ९ नारद आदि विद्याधर ।

प्रश्न-१० : पूर्वधर एव चारणलब्धि स पन्न अणगार के लिये मानुषोत्तर पर्वत आदि पर चैत्यव दन करने का कथन है उसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर- लिपिकाल में मन:कल्पित प्रक्षेपों की परिपाटी के अ तर्गत भगवती सूत्र का यह पाठ भी अ तर्भावित होता है । श्रमण निर्ग्रंथ या श्रावक के वर्णन वाले आचार शास्त्रों में कहीं भी चैत्य व दन का उल्लेख नहीं है फिर भी यहाँ मानुषोत्तर आदि पर्वतों पर मुनिराज के साथ चैत्य व दन का पाठ प्रक्षिप्त कर दिया गया है । जब कि जीवाभिगम सूत्र में मानुषोत्तर पर्वत का पूरा वर्णन है । वहाँ कोई मूर्ति नहीं बताई गई है । फिर भी इस पाठ में प्रक्षेप करने की मति वालों ने मानुषोत्तर पर्वत आदि सभी जगह चैत्य व दन का पाठ रख दिया है । चैत्यवंदन के पाठ या चैत्य शब्द अथवा णमोत्थुणं का पाठ आदि के प्रक्षेप अन्य आगमों में भी किये गये हक्त यथा राज-प्रश्नीय सूत्र, व्यवहार सूत्र, ज्ञाता सूत्र, उपासकदशा आदि सूत्र । इस विषयक विशेष जानकारी के लिये उक्त सूत्रों के सारा श पुष्पों को एव विशेष कर पुष्प २१ ऐतिहासिक स वाद परिशिष्ट खंड-१ को देखना चाहिये ।

प्रश्न-११ : सोपक्रमी निढपक्रमी का क्या मतलब होता हे ?

उत्तर- (१) जीव जो भी परभव का आयुष्य बा धता है वह दो प्रकार का होता है । कोई जीव ९० वर्ष का आयुष्य ब ध करके परभव में जाकर पूरा ९० वर्ष का आयुष्य ही पूरा करता है, उसमें कोई भी

उपक्रम से (घात से) कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सके, ऐसा बा धा हुआ वह आयुष्य **निढपक्रमी आयुष्य** कहलाता है ।

(२) कोई जीव ९० वर्ष का आयुष्य ब ध करके परभव में जाकर दो तिहाई आयुष्य (६० वर्ष) बीतने के बाद कोई भी उपक्रम लगने पर, आत्मघात करने पर या अन्य द्वारा घात किये जाने पर अथवा दुर्घटना हो जाने पर आयुष्य पूर्ण कर मर जाता है; ऐसा बा धा हुआ वह आयुष्य **सोपक्रमी आयुष्य** कहलाता है ।

तात्पर्य यह है कि (१) निढपक्रमी आयुष्य वाला निश्चित रूप से बा धा जितना पूरा आयुष्य व्यतीत करता है और (२) सोपक्रमी (जो निढपक्रमी नहीं है वैसा) आयुष्य वाला दो–तिहाई उम्र बीतने के बाद कभी भी मर सकता है और कोई घात स योग नहीं मिले तो पूरा आयुष्य भी व्यतीत कर लेता है अर्थात् इसमें अधूरा–पूरा दोनों तरह से आयुष्य कर्म भोगने की भजना रहती है । आयुष्य टूटना अर्थात् उसमें उपक्रम लगना; यह स्थाना ग सूत्र, स्थान–७ में सात प्रकार का बताया है । देखे स्थानांग के प्रश्नोत्तर में भाग–२ पृष्ट–१७३ ।

२४ द डक में नारकी, देवता, युगलिया मनुष्य और युगलिया तिर्यंच, तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि ६३ शलाका पुढष एव चरम शरीरी जीव ये सभी एक मात्र निढपक्रमी आयुष्य वाले होते हक्त । शेष सभी जीव दोनों में से कोई भी आयुष्य वाले हो सकते हक्त ।

तीन भेद– सोपक्रमी–निढपक्रमी इन दो के, अपेक्षा से तीन भेद भी होते है– (१) आत्मोपक्रम– स्वय आयु को घटा देना–आत्मघात करना आदि (२) परोपक्रम– अन्य के द्वारा मारा जाना (३) निढपक्रम– कोई भी उपक्रम नहीं लगना, पूर्णायु रहना ।

नारकी में आने वाले तीनों प्रकार से मरकर आ सकते हक्त । यों २४ ही द डक की आगत में तीनों प्रकार के उपक्रम वाले जीव हो सकते हक्त । नारकी से मरकर जाने वाले जीव निढपक्रम एक भेद वाले ही होते हक्त । इसी तरह सभी देवों में भी एक भेद गत में होता है क्यों कि वे नारकी देव सभी उपक्रम से मरते नहीं है; स्वाभाविक

अपना पूर्ण आयुष्य होने पर ही मरते हक्त । औदारिक दस द डक से मरकर जाने वाले तीनों तरह के होते हक्त ।

अन्य अपेक्षा से जीवों का जन्म–मरण, आत्म रिद्धि से आत्म कर्म से, आत्मप्रयोग से होता है किंतु पररिद्धि, परकर्म और परप्रयोग से नहीं होता है अर्थात् स्वकर्म अनुसार जीव का जन्म–मरण होता है, यह उपादन कारण की अपेक्षा कथन है । निमित्त कारण इसमें गौण किया गया है ।

प्रश्न–१२ : कतिस चय–अकतिस चय आदि क्या है ?

उत्तर– जीवों के उत्पन्न होने की स ख्या को आगमिक विशिष्ट शब्दों में तीन तरह से कहा गया है । यथा– (१) कतिस चय– स ख्याता जीवों का उत्पन्न होना । (२) अकति स चय– अस ख्याता जीवों का उत्पन्न होना । (३) अवक्तव्य स चय– एक जीव का ही उत्पन्न होना अर्थात् कति या अकति दोनों स ख्या का नहीं होना अवक्तव्य कहा जाता है । **चौवीस द डक में–** पाँच स्थावर में हमेशा अस ख्य अन त जीवों की उत्पत्ति चालु रहती है, अत: वे अकति स चय है । शेष सभी द डक में तीनों प्रकार के हक्त । सिद्धों में कति और अवक्तव्य दो ही है । अकति(अस ख्य) उत्पन्न नहीं होते हक्त ।

प्रश्न–१३ : छक्क समर्जित आदि का क्या अर्थ है ?

उत्तर– ये भी उत्पन्न होने वाले जीवों की स ख्या के विशिष्ट कथन है– (१) छक्क समर्जित= ६ जीव (२) नो छक्क समर्जित= १,२, ३,४,५ ये नो छक्क हक्त । (३) छक्क नो छक्क=७,८,९,१०,११ (४) अनेक छक्क= १२,१८,२४,३० आदि (५) अनेक छक्क नो छक्क= १३,१४ आदि शेष सभी स ख्या अथवा **(१) द्वादस समर्जित–** छक्क के समान इसके भी ५ प्रकार होते हक्त । यह भी जीव उत्पन्न होने की स ख्या से स ब धित है ।छ के स्थान पर १२ स ख्या से समझना ।

(३) चौरासी समर्जित– इसके उपरोक्त छक्क के समान ५ प्रकार होते हक्त । २४ द डक में उत्पत्ति स ख्या कति–अकति स चय के अनुरूप छक्क आदि की भी समझ लेना है । सिद्धों की उत्पत्ति स ख्या में

अकति नहीं है, वैसे ही चौरासी समर्जित के अ तिम दो चौथा पाँचवा प्रकार नहीं है- (४) अनेक चौरासी का चौथा (२) अनेक चौरासी नो चोरासी समर्जित का पाँचवाँ भ ग, ये दोनों १०८ से अधिक हो जाते हक्त और सिद्ध होने की उत्कृष्ट स ख्या १०८ ही है । इसलिये चौरासी समर्जित के ३ भ ग ही सिद्धों में होते है, यथा- (१) चौरासी समर्जित (२) नो चौरासी समर्जित (१ से ८३ तक) (३) चौरासी नो चौरासी समर्जित(८५, ८६ आदि १०८ पर्यंत की स ख्या) ।

शतक-२१-२२-२३

प्रश्न-१ : इन तीन शतकों का परिचय क्या है ?

उत्तर- वनस्पति स ब धी एक ही विषय इन तीनों शतक में है । इन शतकों के विभाग दो प्रकार से हक्त- (१) वर्ग (२) उद्देशक । **२१वें शतक में-** आठ वर्ग और ८० उद्देशक है । **२२वें शतक में-** ६ वर्ग और ६० उद्देशक हक्त । **२३ वें शतक में-** पाँच वर्ग और ५० उद्देशक हक्त । प्रत्येक वर्ग में १० उद्देशक वृक्ष के दस विभागों की अपेक्षा है। अर्थात् (१) मूल (२) क द (३) स्क ध (४) त्वचा (५) शाखा (६) प्रवाल (७) पत्र (८) पुष्प (९) फल (१०) बीज, इन वनस्पति के दस विभाग की अपेक्षा निरूपण होने से दस-दस उद्देशे प्रत्येक वर्ग के किये गये हक्त ।

प्रश्न-२ : वर्ग का विभाजन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- वर्ग- वनस्पति की एक सरीखी सुमेल वाली जातियों के स कलन युक्त वर्ग बनाये गये हक्त, यथा- (१) चावल, गेहुँ, जौ, जवार आदि धान्य का **प्रथम वर्ग है** । (२) चना, मसूर, तिल, मूंग, उडद, कुलत्थ आदि का **दूसरा वर्ग है** । (३) अलसी, कु सु भ, कोद्रव, क गु, सण, सरसों आदि का **तीसरा वर्ग है** । (४) वा स, वेणु, द ड, कल्काव श, चाढव श आदि का **चौथा वर्ग है** । (५) इक्षु, वीरण, इक्कड, भमास, सू ठ, तिमिर, सतपोरग और नल आदि का **पाँचवाँ**

वर्ग है । (६) दर्भ, कोंतिय, पर्वक, पौदीना, अर्जुन, भुस, एर ड, कुढकु द, मधुरतृण आदि का **छट्ठा वर्ग है** । (७) अध्यारोह (एक वृक्ष में दूसरा वृक्ष), वत्थुल, माजरिक, चिल्लि, पालक, शाक, म डुकी, सर्षप, अ बिलशाक आदि का **सातवाँ वर्ग है** । (८) तुलसी, चूयणा, जीरा, दमणा, मढया, इन्दीवर, शतपुष्पी आदि का **आठवाँ वर्ग है** । इस प्रकार २१वें शतक में वनस्पतियों के आठ विभाजन से आठ वर्ग किये गये हक्त ।

प्रश्न-३ : इन वनस्पतियों स ब धी यहाँ किस विषय का निरूपण किया गया है ?

उत्तर- शतक-११ उद्देशक-१ में 'उत्पल' का वर्णन ३३ द्वारों से किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी उन्हीं ३३ द्वारों की कुछ विशेषताओं- भिन्नताओं को स्पष्ट करते हुए शेष स पूर्ण वर्णन उत्पल उद्देशक के अनुसार जानने का ही सूचन अधिक है । विशेषताएँ इस प्रकार है-

२१वें शतक के प्रथमवर्ग चावल, गेहूँ आदि में- (१) अवगाहना- जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग की उत्कृष्ट अनेक धनुष (२) स्थिति- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनेक वर्ष **(३ वर्ष)** (३) कायस्थिति- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अस ख्यकाल (४) आगति- मूल, क द आदि १० विभाग में से प्रथम के **सात** विभाग में देव नहीं आते हक्त । अ तिम तीन विभाग पुष्प, फल, बीज में देव आते हक्त । उनकी अपेक्षा तीनों विभाग में लेश्या ४ है और भ ग ८० होते हक्त क्यों कि अशाश्वत है । देव से आने वाले सदा नहीं मिलते । ८० भ ग उत्पल शतक-११ अनुसार जानना (५) पुष्प, फल और बीज में अवगाहना उत्कृष्ट अनेक अ गुल की होती है । इस प्रकार प्रथम वर्ग के सात उद्देशक समान है तथा पीछे के तीन उद्देशकों में अवगाहना, लेश्या एव आगति में फर्क है ।

दूसरा वर्ग चना, मसूर आदि में- प्रथमवर्ग के समान वर्णन है, स्थिति अनेक वर्ष में **५ वर्ष** समझना ।

तीसरा वर्ग अलसी आदि में- प्रथम वर्ग के समान वर्णन है, स्थिति के अनेक वर्ष में **७ वर्ष** समझना ।

चौथा वर्ग बा स आदि में– इनके दशों विभागों में कहीं भी देव उत्पन्न नहीं होते हक्त । इसलिये आगति, लेश्या में अ तर है और उसके भ ग २६ होते हक्त ।

पाँचवाँ वर्ग इक्षु आदि में– स्क ध विभाग में देव आकर उत्पन्न होते हक्त शेष ९ विभाग में देव उत्पन्न नहीं होते हक्त । देव आते उसमें लेश्या ४ और भ ग–८० होते हक्त ।

छट्ठा–सातवाँ–आठवाँ वर्ग– ये तीनों वर्ग बा स वर्ग के समान है ।

॥ शतक–२१ स पूर्ण ॥

बावीसवें शतक का प्रथम वर्ग– ताल,तमाल,कदलि(केला) तेतली, तक्कली, देवदाढ, केवडा, गू द, हिंगु, लव ग, सुपारी, खजूर, नारियल आदि का वर्णन शालि वर्ग के समान है किंतु विशेषता इस प्रकार है–(१) मूल आदि पाँच विभाग में देव उत्पन्न नहीं होते हक्त अत: लेश्या तीन है ।(२) प्रवाल आदि पाँच में देव उत्पन्न होते हक्त । अत: लेश्या चार है (३) स्थिति–मूल आदि पाँच की जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट १० हजार वर्ष है । (४) शेष पाँच की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनेक वर्ष की है । (५) अवगाहना उत्कृष्ट– मूल और क द की अनेक धनुष, त्वचा–शाखा की अनेक कोश है । प्रवाल और पत्र की अनेक धनुष है । पुष्प की अनेक हाथ, फल बीज की अनेक अ गुल की है । जघन्य और मध्यम विविध प्रकार की अवगाहना हो सकती है ।

दूसरावर्ग– नीम, आम्र, जम्बू, पीलु, सेलु, सल्लकी, पलाश, कर ज, पुत्र जीवक, अरीठा, हरडा, बहेडा, चारोली, नागकेशर, श्रीपर्णी, अशोक आदि । इनका वर्णन भी प्रथम ताल वर्ग के समान है ।

तीसरा वर्ग– अस्थिक, तिंदुक, बोर, कपित्थ, अ बाडग, बिजोरा, आँवला, फणस, दाडिम, पींपल, उ बर, वड, न्यग्रोध, न दीवृक्ष, पीपर, सत्तर, सप्त पर्ण, लोद्र, धव, चन्दन, कुटज, कद ब आदि का वर्णन ताडवृक्ष के समान है ।

चौथा वर्ग– बेंगन, पोंडई ग ज, अ कोल्ल आदि का वर्णन बा स वर्ग के समान है ।

पाँचवा वर्ग– श्रियक, सिरियक, नवनालिक, कोर टक, बन्धुजीवक, मणोजा, नलिनी कु द इत्यादि का वर्णन शालि वर्ग के समान है ।

छट्ठा वर्ग– पूसफलिका, तुम्बी त्रपुषी, (ककडी) एलवालुंकी आदि वल्लियों का वर्णन ताड वर्ग के समान है किन्तु स्थिति उत्कृष्ट अनेक वर्ष की है । फल की अवगाहना उत्कृष्ट अनेक धनुष की है । **छ वर्ग** के ६० उद्देशक इस शतक में हक्त ।

तेवीसवें शतक का प्रथम वर्ग– आलू, मूला, अदरख, हल्दी, क्षीर, विराली, मधुश्रृ गी, सर्पसुग धा, छिन्नरूहा, बीजरूहा, आदि का वर्णन व श वर्ग के समान है, विशेषता इस प्रकार है– (१) परिमाण– एक समय में एक, दो, तीन, उत्कृष्ट अन ता जीव उत्पन्न होते हक्त । (२) स्थिति– अन त जीव उत्पन्न होने वालों की जघन्य–उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त है । शेष की बा स के समान है ।

दूसरा वर्ग– लोही, नीहू, थीहू, अश्वकर्णी, सि हकर्णी, सिउढी, मुसु ढी आदि आलू वर्ग के समान है, **अवगाहना ताड वर्ग** के समान है ।

तीसरा वर्ग– आय, काय, कुहुणा, सफा, सज्जा, छत्रा, कु दुढक्क आदि दूसरे वर्ग के समान है ।

चौथा वर्ग– पाठा, मृगवालु की, मधुर रसा, राजवल्ली, पद्मा, मोढरी, द ती, च डी आदि का वर्णन आलू वर्ग के समान है । अवगाहना वल्ली वर्ग के समान है ।

पाँचवाँ वर्ग– माषपर्णी, मुद्‌गपर्णी, जीवक, काकोली, क्षीर काकोली, कृमिराशि, भद्रमुस्ता आदि का वर्णन आलु वर्ग के समान है ।

कुल पाँच वर्ग के ५० उद्देशक इस शतक में है । इनमें कहीं भी देव उत्पन्न नहीं होते हक्त । अत: तीन लेश्या ही होती है ।

शतक-२४ : उद्देशक-१ से २४

गम्मा अधिकार

प्रश्न-१ : इस शतक का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस शतक का नाम **'गम्मा शतक'** प्रसिद्ध है । इसमें आया हुआ स पूर्ण वर्णन गम्मा अधिकार या 'गम्मा का थोकडा' के नाम से पहिचाना जाता है । इस शतक में २४ द डक की अपेक्षा २४ उद्देशक विभाजन है । प्रत्येक उद्देशक में क्रमशः एक-एक द डक के जीवों स ब धी वर्णन २० द्वारों से है अर्थात् उस-उस द डकवर्ती जीवों स ब धी २० बोलों की; अवगाहना, आयुष्य, लेश्या आदि २० तत्त्वों-भावों की पृच्छा की गई है ।

यह २० द्वारों का वर्णन सीधा उस द डकवर्ती जीव से नहीं होकर उसके आगत स्थान वाले प्रत्येक जीव से स ब धित करके दर्शाया गया है ।

जैसे कि प्रथम द डक नारकी का है, इसमें जीव के भेद ७ हक्त । प्रथम जीव का भेद प्रथम नारकी का जीव है, उसमें आगत स्थान रूप जीव तीन है- १. असन्नि तिर्यंच २. सन्नी तिर्यंच ३. सन्नी मनुष्य । सर्व प्रथम, पहली नरक में आने वाले असन्नि तिर्यंच को लेकर तत्स ब धी २० द्वारों का वर्णन किया गया है । उसके बाद सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य का प्रथम नरक में आने स ब धी २० द्वारों का वर्णन है । उसके बाद क्रमशः दूसरी से सातवीं नरक तक में आने वाले सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य स ब धी वर्णन २० द्वारों के माध्यम से किया गया है । अ त में सन्नी मनुष्य का सातवीं नरक में आने से स ब धित २० द्वार पूर्ण होने पर प्रथम द डक आश्रित प्रथम उद्देशक पूर्ण होता है । उसी तरह २४ ही द डक के जीव स्थानों में आगति स्थानों को स ब धित करके २० द्वारों के माध्यम से कथन करके २४ उद्देशक पूर्ण होते हक्त । इस प्रकार इस शतक में २४ द डकवर्ती जीव, उनकी आगति एव तत्स ब धी २० भावों-विषयों को समझाया गया है ।

प्रश्न-२ : गम्मा शब्द प्रयोग करने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– उपर कहे अनुसार २४ द डक के जीवों में उनके आगति स्थान वाले जीवों से स ब धित करके जो २० बोलों का वर्णन है उसके मौलिक ९ प्रश्न स्थिति की अपेक्षा से बनते हक्त । उस मौलिक प्रश्न की अपेक्षा को, तरीके को गमक कहा जाता है । इसलिये गमक= पृच्छा की मूल अपेक्षा, प्रश्न का मूल तरीका, प्रश्न का मूल प्रकार । तात्पर्य यह हुआ कि प्रथम प्रश्नोक्त (असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय के प्रथम नारकी में जाने के) २० द्वार स ब धी समस्त वर्णन मौलिक नव गमकों से, नव प्रकारों से, नव अपेक्षाओं से पृच्छा करके समझाये गये हक्त ।अतः उन ९ प्रश्न के तरीकों को यहाँ ९ गमक कहा गया है । ये ९ गमक ही प्रचलित भाषा में ९ गम्मा कहलाते हक्त । इन ९ गम्मकों (गम्मा) के आधार से मौलिकता से ही प्रत्येक द डक में उसके आगति स्थान के जीव को स ब धित करके २० बोलों का तत्त्वों का खुलासा किया है । सार यह है कि जीव स ब धी भावों को कहने में मूल प्रश्न स्थान ९ गमक है और वे ९ गमक(गम्मा) स्थिति को लेकर बताये गये हक्त । वे इस प्रकार हक्त-

(१) औघिक-औघिक=औघिक स्थिति वाला औघिक स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(२) औघिक-जघन्य= औघिक स्थिति वाला जघन्य स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(३) औघिक-उत्कृष्ट= औघिक स्थिति वाला उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(४) जघन्य-औघिक= जघन्य स्थिति वाला औघिक स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(५) जघन्य-जघन्य= जघन्य स्थिति वाला जघन्य स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(६) जघन्य-उत्कृष्ट= जघन्य स्थिति वाला उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(७) उत्कृष्ट-औघिक= उत्कृष्ट स्थिति वाला औघिक स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(८) उत्कृष्ट-जघन्य= उत्कृष्ट स्थिति वाला जघन्य स्थिति में उत्पन्न होवे ।
(९) उत्कृष्ट-उत्कृष्ट= उत्कृष्ट स्थिति वाला उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न होवे ।

इन नव गमक में प्रथम गमक(गम्मा) को आधार बनाकर प्रथम द डक नरक के प्रथम जीव स्थान रूप पहली नारकी की औघिक स्थिति में आने वाले औघिक स्थिति वाले असन्नि तिर्यंच के २० द्वारों, बोलों का कथन किया जाता है, यथा- (१) औघिक स्थिति का असन्नि तिर्यंच प्रथम नरक की औघिक(समुच्चय) स्थिति में उत्पन्न होता है

अर्थात् अ तर्मुहूर्त से लेकर क्रोडपूर्व की उम्र का असन्नि तिर्यंच मर कर प्रथम नरक में दस हजार वर्ष से लेकर पल्योपम के अस ख्यातवें भाग में उत्पन्न होता है । (२) एक समय में १, २, ३ उत्कृष्ट अस ख्य औघिक स्थिति वाले असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक में औघिक स्थिति में उत्पन्न होते हक्त । (३) **अवगाहना–** इन उत्पन्न होने वाले असन्नि तिर्यंच की अवगाहना जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट १००० योजन की हो सकती है । यों क्रमशः २० द्वारों का कथन करने पर एक गमक(गम्मा) का वर्णन होता है ।

इसके बाद उपरोक्त दूसरे से लेकर नौवें में गमक तक सभी में २० द्वार का कथन करने पर प्रथम नरक में एक आगत स्थान रूप असन्नि तिर्यंच का नव गम्मा युक्त कथन पूरा होता है ।

इस प्रकार मूल नव गम्मा के आधार से २४ द डक के जीवों के समस्त आगत स्थानों के जीवों को लेकर २० द्वार का वर्णन होने से पूरे वर्णन को गम्मा अधिकार, गम्मा शतक कहा जाता है जो कथन पूर्ण उपयुक्त एव सुस गत है ।

प्रश्न–३ : चौवीस द डक कौन से हक्त ?

उत्तर– (१) सात नरक का एक द डक ।(२–११) दस भवनपति के १० द डक । (१२–१६) पाँच स्थावर के ५ द डक । (१७–१९) तीन विकलेन्द्रिय के ३ द डक । (२०) तिर्यंच प चेन्द्रिय का १ द डक (२१) मनुष्य का १ द डक । (२२–२४) व्य तर, ज्योतिषी एव वैमानिक तीनों का १–१ द डक ।

प्रश्न–४ : चौवीस द डक के मूल घर यहाँ कितने गिने गये हक्त और उसमें उत्पन्न होने वाले जीवों के प्रकार यहाँ कुल कितने गिने हक्त ?

उत्तर– इस गम्मा प्रकरण में २४ द डक में **मूल घर** ४४ गिने गये हक्त– (१–७) नारकी के **७ घर** सात नरक की अपेक्षा गिने हक्त । (८–२९) असुरकुमार से ज्योतिषी तक २२ द डक के **२२ घर** । (३०–४४) वैमानिक देवों के **१५ घर** गिने हक्त– १२ देवलोक के १२, एक नव गैवेयक का, एक चार अनुत्तर विमान का और एक सर्वार्थसिद्ध का । यों ७+२२+१५=४४ घर कहे हक्त ।

प्रस्तुत प्रकरण की आगति में **४८ जीव प्रकार** के आधार से कथन किया गया है जिसमें उपरोक्त ४४ घर में से मनुष्य–तिर्यंच प चेन्द्रिय के घर के ३–३ जीव (सन्नी, असन्नि और युगलिक) गिने हक्त, शेष ४२ घर के १–१ यों ४२ जीव ही गिने हक्त जिससे ४२+६=४८ कुल जीव भेद होते हक्त ।

प्रश्न–५ : घर ४४ में, जीव के ४८ प्रकारों से आगति स्थान कितने होते हक्त ?

उत्तर– ४४ में से एक–एक घर में ४८ जीव में से आने वाले जीवों की स ख्या सब मिलकर कुल ३२१ होती है, जिनका खुलासा चार्ट में देखें ।

आगत के ३२१ स्थान :–

घर	घरनाम	आगत स ख्या	आगत स ख्या विवरण
१	पहली नरक	३ १ = ३	असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच, सन्नी मनुष्य
६	शेष नरक	२ ६ = १२	सन्नी तिर्यंच, मनुष्य
१०	दस भवनपति	५ १० = ५०	सन्नी–असन्नी तिर्यंच, सन्नी मुनष्य एव दो युगलिया
१	व्य तर	५ १ = ५	सन्नी–असन्नी तिर्यंच, सन्नी मनुष्य एव दो युगलिया
१	ज्योतिषी	४ १ = ४	उक्त पाँच में असन्नी तिर्यंच कम हुआ
२	१–२ देवलोक	४ २= ८	उक्त पाँच में असन्नी तिर्यंच कम हुआ
६	३–८ देवलोक	२ ६ = १२	सन्नी तिर्यंच मुनष्य
७	शेष देवता	१ ७ = ७	मनुष्य
३	पृथ्वी,पानी,वनस्पति	२६ ३ = ७८	भवनपति आदि १४ देवता, १२ औदारिक

२	तेउ वायु	१२ २ = २४	१२ औदारिक
३	विकलेन्द्रिय	१२ ३ = ३६	१२ औदारिक
१	तिर्यंच	३९ १ = ३९	७ देवता (उपर के) एव दो युगलिया ये ९ कम ४८ जीव में
१	मनुष्य	४३ १ =४३	तेउ, वायु, सातवीं नरक, दो युगलिया ये पाँच कम ४८ जीव में ।
४४	घर की आगत =	३२१	

प्रश्न-६ : एक आगति स्थान को ९ गमक से कहने पर कुल गमक-प्रश्न कितने होंगे ?

उत्तर- सामान्य रूप से गणित करने पर ९ गमक से ३२१ आगत का कथन किया जाने पर ३२१x९=२८८९ गमक होते हत्त ।किंतु ३२१ आगत स्थानों में से कुछ में ९ गमक नहीं बनते हत्त । क्यों कि गमक बनने का मूल आधार स्थिति है । जब अनेक प्रकार की स्थिति होती है तभी ९ गम्मे बनते हत्त । जब एक जघन्य या एक उत्कृष्ट स्थिति होती है तब ९ गम्मे नहीं बनकर एक स्थिति के तीन ही गम्मे बनते हत्त । (१) तदनुसार असन्नि मनुष्य दस घर में ३-३ गम्मे से जाता है तो ६-६ गम्मे कम होने से १०x६=६० गम्मे कम होते हत्त ।

(२) सर्वार्थसिद्ध में एक ही स्थिति होने से मनुष्य सर्वार्थसिद्ध में ३ गम्मों से आता है और सर्वार्थसिद्ध विमान के देव मनुष्य में तीन गम्मों से ही आते हत्त । अत: दोनों आगत स्थान के तीन-तीन गम्मे होने से ६+६= १२ गम्मे कम होते हत्त । यों ६०+१२=७२ गम्मे कम हुए ।

(३) तिर्यंच और मनुष्य दोनों युगलिये ज्योतिषी और पहले-दूसरे देवलोक इन तीन स्थानों में चौथे पाँचवें छट्ठे गम्मे से जाते हत्त तब तीनों गम्मों में एक सरीखी जघन्य स्थिति ही प्राप्त होती है तो उन तीन गम्मों का (फर्क नहीं होने से) एक-एक गम्मा ही गिना जाता है तो दो-दो गम्मे कम होने से २ युगलिक x३ स्थान x२ गम्मे कम=

१२ गम्मे कम होते हत्त । अत: उपरोक्त ७२+१२=कुल ८४ गम्मे कम होते हत्त । ९ गम्मों की अपेक्षा ३२१ आगति स्थानों के २८८९ गम्मों में से ८४ गम्मे कम करने पर २८८९-८४=२८०५ गम्मों में २० द्वार का कथन प्रस्तुत प्रकरण में किया गया हत्त अर्थात् इस शतक में कुल प्रश्न **२८०५** होते हत्त जिनके माध्यम से २० द्वार का कथन किया गया है ।

[जघन्य स्थिति का जाने वाला जुगलिया वहाँ देवलोक में उतनी ही अपनी स्थिति के समान ही एक वही जघन्य स्थिति पाता है। अत: वास्तव में एक गम्मा-प्रश्न चौथा ही बनता है । फिर पाँचवें छट्ठे गम्मे प्रश्न की आवश्यकता नहीं रहती है । कारण कि जुगलिया, देव में अपनी स्थिति से अधिक कोई भी स्थिति प्राप्त नहीं करते हत्त तो ज्योतिषी में जघन्य गम्मा से पल के आठवें भाग वाला जायेगा और उतनी ही एक ही स्थिति पायेगा । प्रथम देवलोक में जघन्य १ पल्योपम वाला जुगलिया जायेगा और उतनी ही एक स्थिति पायेगा । उससे कम तो उस देव स्थान में होती नहीं है और अधिक वह पाता नहीं है अत: जघन्य गम्मा ४-५-६ से जाने वाला जुगलिया ३ देव स्थानों में एक ही स्थिति पाने से एक चौथे गम्मे-प्रश्न के बाद पाँचवें छट्ठे गम्मा-प्रश्न की आवश्यकता नहीं रहती है, अनेक स्थिति पावे तो ही तीनों प्रश्न होते हत्त । अपनी जघन्य स्थिति के समान ही एक ही स्थिति पाने से एक ही प्रश्न-गम्मा पर्याप्त होता है, अगले दो प्रश्न अनावश्यक हो जाने से उनकी पृच्छा नहीं होती है । अत: दो-दो गम्मे कम हो जाते हत्त ।]

प्रश्न-७ : बीस द्वार कौन से कहे गये हत्त और उनमें क्या कथन किया जाता है ?

उत्तर- यहाँ वर्णित २० द्वार और उनका स्वरूप इस प्रकार है-

(१) उपपात- प्रथम आदि गमक से उत्पन्न होने वाला जीव उत्पत्ति स्थान में जघन्य-उत्कृष्ट कौन सी स्थिति प्राप्त करता है उसका कथन इस उपपात द्वार में किया जाता है । **(२) परिमाण-** उत्पन्न होने वाले जीव जघन्य उत्कृष्ट कितनी स ख्या में हो सकते हत्त उसका कथन किया जाता है । **(३) अवगाहना-** आने वाले जीव की अपने पूर्वभव स्थान में जघन्य उत्कृष्ट कितनी अवगाहना होती है उसका कथन किया जाता है । अब चौथे द्वार से १९वें द्वार तक आने वाले जीव

के पूर्व भव स ब धी कथन किया जाता है । (४) स हनन (५) स स्थान (६) लेश्या (७) दृष्टि (८) ज्ञान-अज्ञान (९) योग (१०) उपयोग (११) स ज्ञा (१२) कषाय (१३) इन्द्रिय (१४) समुद्घात (१५) वेदना-शाता-अशाता दोनों प्रकार की वेदना (१६) वेद (१७) आयु (१८) अध्यवसाय (शुभ-अशुभ से) (१९) अनुब ध-आयुष्य के अनुसार ही ६ बोलों का अनुब ध होता है । (२०) काय स वेध- इसके दो विभाग हक्त भवादेश और कालादेश । आगत स्थान में और घर के जीव में दोनों स्थल में मिलकर कुल भव कितने होते हक्त, उनका कथन **भवादेश** से किया जाता है और उन जघन्य उत्कृष्ट भवों में दोनों स्थानों में मिलकर कुल गमनागमन काल-स्थिति क्या होती है, उसका कथन कालादेश बोल से(विभाग से) किया जाता है । इन २० द्वारों के वर्णन को 'ऋद्धि-कथन' या ऋद्धि-वर्णन भी कहा जाता है अर्थात् यह २० द्वार का वर्णन उस आगत स्थान स ब धी ऋद्धि रूप है ।

प्रश्न-८ : 'णाणत्ते' किसे कहते हक्त ? उनका कथन किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर- शास्त्र में जो भी वर्णन पहले विस्तार से कर दिया होता है और पुन: वैसा ही वर्णन कहना हो तो उसके लिये पूर्व के कथन की भलावण-अतिदेश-सूचन कर दिया जाता है । वह भलावण यदि २० बात की हो और उसमें से बीच की २-४ या कुछ बातों में भिन्नता-विशेषता हो तो उसे स्पष्ट करने के लिये 'णवर ' 'णाणत्त ' ऐसे शब्द प्रयोग किये जाते हक्त । अत: पूर्व के कथन से आगे भलावण रूप कहे जाने वाले कथन में जितने फर्क, भिन्नता, विशेषता हो उसे प्रचलित थोकडों में **णाणत्ते** कहा गया है और पूरे शतक में कहे गये ऐसे **णाणत्तों** की कुल गिनती की गई है । इस गिनती में ५-२५ अति सूक्ष्म या सामान्य विशेष फर्क को नगण्य भी किया गया है वे अलग से समझ में आ जाते हक्त ।

प्रत्येक आगति स्थान के ९ गम्मों में से प्रथम गम्मे में २० द्वार का खुलासावार कथन किया जाता है । उसके बाद शेष आठ गम्मों में भी २० द्वार का कथन तो किया जाता है किन्तु उन्हें प्रथम गम्मे

की भलावण से स क्षिप्त में कह दिया जाता है और जो विशेषताएँ होती है उसे अलग से स्पष्ट कर दिया जाता है ।

गम्मा के थोकडे में पहले गम्मे के वर्णन से चौथे और सातवें गम्मे में जो विशेषताएँ-फर्क है उनकी गिनती 'णाणत्तों' में करी है । दूसरे, तीसरे, पाँचवें, छट्ठे या आठवें, नौवें गम्मे में प्राय: अन्य फर्क कम ही पडता है, कदाच कभी कोई फर्क पडता भी है तो उसे अलग से समझ-समझा लिया जाता है किंतु गिनती उसकी नहीं की जाती है अर्थात् गिनती में वह फर्क नगण्य या गौण मान लिया गया है । तथापि शास्त्र में तो नगण्य और सगण्य सभी फर्क यथास्थान बता दिये जाते हक्त ।

तात्पर्य यह है कि प्रथम गम्मा के २० द्वार वर्णन से शेष गम्मों के २० द्वार वर्णन में जो विशेषता होती है उसे 'णाणत्ता' समझना चाहिये । उन णाणत्तों की थोक स ग्रह में अपेक्षा से गिनती की गई है तदनुसार १९९८ णाणत्ते कहे जाते हक्त ।

प्रश्न-९ : इस शतक के २४ उद्देशकों में क्या वर्णन है ?

उत्तर- प्रत्येक उद्देशक में प्रत्येक द डक में आकर उत्पन्न होने वाले जीवों के अलग अलग ९ गम्मों में २० द्वारों की ऋद्धि का कथन है। जिसमें प्रथम गमक में २० द्वारों का स्पष्ट पूरा वर्णन है शेष आठ गम्मों में २० में से आवश्यक विशेषता (णाणत्ते) बताकर शेष प्रथम गमक के समान जानने का स क्षिप्त कथन कर दिया गया है । वह इस प्रकार है-

(१) प्रथम उद्देशक में- नरक के द डक का वर्णन है । जिसमें **प्रथम नरक** में आने वाले तीन जीवों का (असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य) नव गम्मों के आधार से २० द्वार रूप ऋद्धि का वर्णन है तथा स क्षिप्त कथन की अपेक्षा विशेषताओं (णाणत्तों) की स्पष्टता की गई है । अ त में २०वें ऋद्धि के बोल में भवादेश से जघन्य उत्कृष्ट भवों का तथा कालादेश से जघन्य उत्कृष्ट प्राप्त की जाने वाली स्थिति का स्पष्ट कथन किया गया है ।

उसके बाद दूसरी नरक से सातवीं नरक तक में आने वाले

२-२ जीवों का (सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य का) वर्णन ९ गम्मों से एव २० द्वारों से विस्तृत-स क्षिप्त, णाणत्तों सहित तथा भवादेश एव कालादेश की स्पष्टता के साथ किया गया है । इस प्रकार सात नरक में आने वाले १५ जीवों का ९ गम्मों-प्रश्नों से युक्त २० द्वारों की ऋद्धि युक्त वर्णन पूर्ण होने से प्रथम उद्देशक पूर्ण होता है ।

(२-११) दस भवनपति के १० द डकों के १० उद्देशक कहे गये हक्त । जिसमें असुरकुमार आदि १० भवनपति में प्रत्येक में आने वाले ५-५ जीवों का (असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच, सन्नी मनुष्य और तिर्यंच मनुष्य दोनों युगलिया) ९ गम्मों युक्त, २० ऋद्धि के द्वारों युक्त वर्णन प्रथम उद्देशक के समान है ।

(१२-१६) पाँच स्थावर के पाँच द डकों के ५ उद्देशक कहे गये हक्त । जिसमें से पृथ्वी, पानी, वनस्पति में आने वाले २६ जीवों का (१२ औदारिक जीव एव १४ देवताओं का) और तेउ-वायु में आने वाले १२ औदारिक जीवों का नव गम्मों के आधार से २० द्वार रूप ऋद्धि का, विशेषताओं रूप णाणत्तों का तथा प्रत्येक के भवादेश-कालादेश का खुलासावार कथन है ।

(१७-१९) तीन विकलेन्द्रिय के ३ उद्देशक कहे गये हक्त । जिसमें बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय में आने वाले १२-१२ जीवों का (५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच, असन्नि मनुष्य और सन्नी मनुष्य का) गम्मा, ऋद्धि एव णाणत्ता युक्त वर्णन है एव भवादेश-कालादेश का स्पष्टीकरण है ।

(२०) बीसवें उद्देशक में- तिर्यंच प चेन्द्रिय के द डक का वर्णन है । जिसमें तिर्यंच प चेन्द्रिय के घर में आने वाले ३९ जीवों का (नववें से १२वें देवलोक तक के ४, नवग्रैवेयक का एक, चार अनुत्तर विमान का एक एव सवार्थसिद्ध विमान का एक ये कुल ७ सात देव और तिर्यंच-मनुष्य दोनों युगलिये ये ९ जीव तिर्यंच में नहीं आते हक्त ।अत: ४८ जीव-९=३९ जीवों का) गम्मा, ऋद्धि एव णाणत्ता तथा भवादेश-कालादेश युक्त वर्णन है ।

(२१) इक्कीसवें उद्देशक में- मनुष्य के द डक का वर्णन हक्त । जिसमें मनुष्य में आने वाले ४३ जीवों का (४८ जीवों में से तेउकाय, वायुकाय, सातवीं नरक और तिर्यंच-मनुष्य दोनों युगलिये; ये ५ जीव मनुष्य में नहीं आने से ४८-५=४३ जीव आने वाले हक्त उनका) गम्मा, ऋद्धि एव णाणत्ता तथा भवादेश-कालादेश युक्त वर्णन है ।

(२२) बावीसवें उद्देशक में- वाणव्य तर के एक द डक का वर्णन है। असुरकुमार में आने वाले पाँच जीवों का तदनुसार कथन है ।

(२३) तेवीसवें उद्देशक में- ज्योतिषी देवों के एक द डक में चार जीवों के आने का वर्णन असुरकुमार के समान है । असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय इसमें नहीं आते हक्त अत: ५-१=४ जीव आते हक्त । दोनों प्रकार के युगलियों के आने के वर्णन में यहाँ ९ गम्मों की जगह सात ही गम्मों से कथन किया गया है जिसका कारण प्रश्न-६ में स्पष्ट कर दिया गया है ।

(२४) चौवीसवें उद्देशक में- वैमानिक देवों के एक द डक का वर्णन है । जिसमें वैमानिक देवों के १५ घर में आने वाले जीवों का गम्मा, ऋद्धि, णाणत्ता तथा भवादेश-कालादेश युक्त वर्णन है । जिसमें पहले-दूसरे देवलोक में ४ जीव, तीसरे से आठवें देवलोक में दो जीव(सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य) तथा उपर के सभी देवों के सात घरों में १ जीव(मनुष्य)का गम्मा, ऋद्धि एव णाणत्ता तथा भवादेश-कालादेश युक्त वर्णन है ।

अ त में सर्वार्थसिद्ध विमान में आने वाले मनुष्य का तीन गम्मों से(पहला चौथा सातवाँ) २० द्वारों की ऋद्धि, णाणत्ते एव भवादेश-कालादेश युक्त वर्णन के साथ चौवीसवाँ उद्देशक एव चौवीसवाँ गम्मा शतक पूर्ण हो जाता है ।

प्रश्न-१० : गम्मा २८०५ का योग २४ उद्देशों में किस तरह होता है ?

उत्तर- सर्व जीवों के कुल-२८०५ गम्मा होते हक्त जिनका खुलासा इस प्रकार है-

उद्देशक	जीवघर	आगतस्थान	गम्मा-९	विवरण
१	७ नरक	३+१२= १५	१५x९= १३५	प्रथम नरक में ३, शेष-६ में २-२
२-११	१०भवनपति	५x१०= ५०	५०x९= ४५०	-
१२	पृथ्वीकाय	२६	२५x९= २२५ १x३= ३	स मूर्च्छिम मनुष्य ३ गम्मा से आवे
१३	अप्काय	२६	,, = २२८	,,
१४	तेउकाय	१२	११x९= ९९ १x३ = ३	,,
१५	वायुकाय	१२	,, = १०२	,,
१६	वनस्पति	२६	,, = २२८	,,
१७-१९	३ विकले.	३x१२= ३६	१०२x३=३०६	,,
२०	तिर्यंच प चे.	३९	३८x९= ३४२ १x३ = ३	,,
२१	मनुष्य	४३	४१x९= ३६९ २x३ = ६	,, तथा सर्वार्थसिद्ध भी तीन गम्मों से आवे
२२	वाणव्य तर	५	५x९= ४५	-
२३	ज्योतिषी	४	२x९= १८ २x७= १४	दोनों युगलिक ७ गम्मा से आवे
२४	वैमानिक-१५	२७ २x४= ८ ६x२= १२ ७x१= ७	२२x९=१९८ ४x७ = २८ १x३ = ३	दोनोंयुगलिक ७ गम्मासे, सर्वार्थसिद्ध में मनुष्य ३ गम्मा से आवे ।
	कुल	**३२१**	**२८०५**	
नोट- आगत स्थान का खुलासा प्रश्न-५ में देखे ।				

प्रश्न-११ : णाणत्ता १९९८ का योग किस तरह होता है ?

उत्तर- औदारिक जीव वैक्रिय स्थान में जावे उसके ७१५ णाणत्ते होते हक्त । वैक्रिय जीव औदारिक के १० स्थान में जावे उसके ४०४ णाणत्ते होते हक्त । औदारिक जीव औदारिक स्थान में जावे उसके

८७९ णाणत्ते होते हक्त । कुल-७१५+४०४+८७९=१९९८ णाणत्ते होते हक्त जिसका स्पष्टीकरण-खुलासा इस प्रकार है-

(१) औदारिक से वैक्रिय में जाने वाले जीवों के ७१५ णाणत्ते-(१) असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय वैक्रिय के १२ स्थान में (१ नरक, ११ देवता में) जाता है जिसके ५-५ णाणत्ते होते हक्त, अत: १२x५=६० णाणत्ते। (२) सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय वैक्रिय के २७ स्थान में (२० देवता, ७ नारकी में) जाता है जिसके १०-१० णाणत्ते होते हक्त । अत: २७x१० =२७० । छट्ठे, सातवें, आठवें देवलोक में एक लेश्या का णाणत्ता कम होने से २७०-३=२६७ णाणत्ते । (३) सन्नी मनुष्य १५ स्थान में (१ नारकी १४ देवता) जाता है, जिसमें ८-८ णाणत्ते होने से १५x८= १२० णाणत्ते । सन्नी मनुष्य १९ स्थान में (६ नारकी १३ वैमानिक) जाता है जिसके ६-६ णाणत्ते होने से १९x६=११४ णाणत्ते । दोनों युगलिये १४ देवता में (दूसरे देवलोक तक) जाते है जिसमें तिर्यंच के १४x५ =७० तथा मनुष्य के १४x६=८४ कुल ७०+८४=१५४ णाणत्ते । सभी मिलकर औदारिक से वैक्रिय में ६०+२६७+१२०+११४+१५४=७१५ णाणत्ते ।

(२) वैक्रिय से औदारिक में जाने वाले जीवों के ४०४ णाणत्ते- १४ प्रकार के देवता पृथ्वी पाणी वनस्पति में उत्पन्न होते हक्त, १४x३=४२ वैक्रिय आगत स्थान ।२० देवता और ७ नारकी ये २७, तिर्यंच प चेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं, २७x१=२७ वैक्रिय आगत स्थान। मनुष्य में ६ नरक २६ देवता यों ३२ वैक्रिय आगत स्थान । कुल वैक्रिय आगत स्थान- ४२+२७+३२=१०१ । सभी आगत स्थान में ४-४ णाणत्ते होते हक्त अत: १०१x४=४०४ णाणत्ते होते हक्त ।

(३) औदारिक से औदारिक में जाने वाले जीवों के ८७९णाणत्ते- पृथ्वीकाय में- १२ जीव आते हक्त उसके णाणत्ते-८९ इस प्रकार है-पृथ्वीकाय के-६, अप्काय के-६, तेउकाय के-५, वायुकाय के-६, वनस्पति के-७ यों एकेन्द्रिय के-३० ।

बेइन्द्रिय के-९, तेइन्द्रिय के ९ चौरेन्द्रिय के-९, असन्नि प चेन्द्रिय के-९ । यों चारों के ९x४=३६ । सन्नी तिर्यंच के ११ और

सन्नी मनुष्य के-१२ । ये सब मिलाकर-३०+३६+११+१२=८९ । असन्नि मनुष्य में एक ही स्थिति और ३ गम्मे होने से णाणत्ते नहीं होते । इस प्रकार पृथ्वीकाय के समान ही १० औदारिक घर के ८९x१०=८९० णाणत्ते में मनुष्य में तेउ-वायु नहीं आने से उसके ५+६ णाणत्ते कम करने पर ८९०-११=८७९ णाणत्ते औदारिक से औदारिक में जाने वाले जीवों के होते हक्त ।

इस प्रकार-(१) औदारिक से वैक्रिय में आने वालों के ७१५ णाणत्ते
(२) वैक्रिय से औदारिक में आने वालों के ४०४ णाणत्ते
(३) औदारिक से औदारिक में आने वालों के ८७९ णाणत्ते

कुल : १९९८ णाणत्ते

प्रश्न-१२ : २४ उद्देशकों के क्रम से णाणत्तों का योग किस प्रकार होता है ?

उत्तर- प्रश्न-११ में सरल पद्धति से अर्थात् उपरवाडी से १९९८ णाणत्तों को गिनाया गया है । उसको समझ लेने के बाद उद्देशक अनुसार योग सहज समझ में आ सकता है उसे भी यहाँ कोष्टक के माध्यम से दिया जाता है-

उद्देशक	नाम	विवरण	योग
१	नरक में	असन्नि तिर्यंच के-५, सन्नीतिर्यंच के-७०, मनुष्य के-४४(१x८+६x६)	११९
२-११	भवनपति में	असन्नि के-५०, सन्नी के-१००, मनुष्य के-८०, युगलिक के ११०	३४०
१२	पृथ्वीकाय में	औदारिक के-८९, वैक्रिय के-५६(१४x४)	१४५
१३	अप्काय में	औदारिक के-८९, वैक्रिय के-५६(१४x४)	१४५
१४	तेउकाय में	औदारिक के- ८९	८९
१५	वायुकाय में	औदारिक के- ८९	८९
१६	वनस्पति में	पृथ्वी के समान, औदारिक-वैक्रिय के	१४५
१७-१९	विकलेन्द्रिय में	तेउकाय के समान ८९x३=औदारिक के	२६७
२०	तिर्यंच प चे.में	औदारिक के-८९, वैक्रिय के २७x४=१०८	१९७
२१	मनुष्य में	औदारिक के-७८, वैक्रिय के ३२x४=१२८	२०६

२२	व्य तर में	असन्नि के ५, सन्नी के १०, मनुष्य के ८, युगलिया के-११	३४
२३	ज्योतिषी में	सन्नी के-१०,मनुष्य के-८,युगलिया के-११	२९
२४	वैमानिक में	दो देवलोक में-२९x२= ५८ ६ देवलोक में-६+१०=१६x६=९६-३=९३ उपर के ७ देव स्थानों में-६x७= ४२	= १९३
		२४ उद्देशकों के कुल णाणत्ते-	**१९९८**

यहाँ पर जिस आगत स्थान के जितने णाणत्ते कहे गये हक्त उनमें से **दो** णाणत्ते उत्कृष्ट गम्मों में होते हक्त और शेष णाणत्ते जघन्य गम्मों में होते हक्त । किंतु मनुष्य जहाँ भी जाता है, उत्कृष्ट गम्मों में ३ णाणत्ते होते हक्त और शेष णाणत्ते जघन्य गम्मों में होते हक्त ।

प्रश्न-१३ : णाणत्ते कहीं कम कहीं ज्यादा होते हक्त तो ये कुल कितने और कौन से होते हक्त ?

उत्तर- णाणत्ते कहीं २, कहीं ३,४,५,६,७,८ और कहीं ९ भी होते हक्त जो स ख्या दृष्टि से प्रश्न-११-१२ में दर्शाये गये हक्त । वे ९ णाणत्तों के बोल इस प्रकार हक्त- (१) अवगाहना (२) लेश्या (३) दृष्टि (४) ज्ञान-अज्ञान (५) योग (६) समुद्घात (७) आयुष्य (८) अध्यवसाय (९) अनुब ध । इन नव णाणत्तों में से जघन्य गम्मों में अर्थात् चौथे, पाँचवें छट्ठे गम्मों में कहीं २-३ यावत् ९ णाणत्ते होते हक्त । और उत्कृष्ट के सातवें-आठवें-नौवें गम्मों में सर्वत्र दो णाणत्ते और मनुष्य में तीन णाणत्ते होते हक्त । दो में आयुष्य अनुब ध का और तीन में आयु, अनुब ध और अवगाहना का णाणत्ता होता है ।

कहाँ कौन सा णाणत्ता-फर्क होता है उसका खुलासा मूलपाठ में और अर्थ में किया हुआ है और गम्मा के थोकडे की पुस्तक में भी स्पष्टीकरण होता है ।

औघिक के पहले गम्मे की ऋद्धि की अपेक्षा जघन्य के चौथे आदि तीन गम्मों में और उत्कृष्ट के सातवें आदि तीनों गम्मों में जो फर्क-विशेषताएँ कही जाती है; उन्हें ही 'णाणत्ता' कहा जाता है ।

प्रश्न-१४ : कौन कहाँ जन्मते हुए कितने भव करते हक्त ?

उत्तर- ३२१ आगत और ९ गम्मों की अपेक्षा कोई २ भव, कोई ३ भव, यों ४,५,६,७,८, स ख्यात,अस ख्यात एव अन त भव भी करते हक्त । यह उत्कृष्ट भव की अपेक्षा कथन है । जघन्य तो सर्वत्र २ भव ही होते हक्त । मात्र उपर के २० देवस्थानों में मनुष्य जाता है वह जघन्य तीन भव करता है तथा सातवीं नारकी में सन्नी तिर्यंच जाता है वह भी जघन्य तीन भव करता है । उत्कृष्ट भवों का स्पष्टीकरण क्रमशः इस प्रकार है-

(१) उत्कृष्ट दो भव करने वाले- (१) असन्नि तिर्यंच नारकी और देवता में जहाँ जाता है दो भव ही करता है अर्थात् वापिस असन्नि तिर्यंच नहीं बनता ।(२) मनुष्य सातवीं नारकी में जाता है तो दो भव ही करता है अर्थात् वापिस मनुष्य नहीं बनता । (३) सर्वार्थसिद्ध देव मनुष्य में जावे तो दो भव ही करे फिर मोक्ष चले जाते हक्त । (४) सन्नी-असन्नि मनुष्य, तेउ-वायुकाय में जावे तो दो भव ही करे क्यों कि वापिस मनुष्य नहीं होवे । (५) दोनों युगलिये देवलोक में जहाँ भी जावे, दो-दो भव ही करे क्यों कि वापिस युगलिक नहीं बनते । (६) असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य ये तीनों जीव तिर्यंच और मनुष्य के घर में जावे तब तीसरे और नौवें गम्मे से दो भव ही करे, क्यों कि उस गम्मों में युगलिक ही बनते हक्त जो फिर देव गति में जाते हक्त अर्थात् वापिस तिर्यंच मनुष्य नहीं बनते । (७) १४ प्रकार के देवता, पृथ्वी, पानी, वनस्पति में जावे तो दो भव ही करे क्यों कि वापिस देव नहीं बनते ।

(२) उत्कृष्ट तीन भव करने वाले- (१) मनुष्य सर्वार्थसिद्ध में जावे तो तीन भव ही करे ।

(३) उत्कृष्ट ४ भव करने वाले- (१) चार अणुत्तर विमान के देव मनुष्य में जावे तो उत्कृष्ट ४ भव करे । (२) सातवीं नारकी का नैरयिक तिर्यंच प चेन्द्रिय में जावे तो ७ से ९, तीन गम्मा आसरी उत्कृष्ट चार भव करे ।

(४) उत्कृष्ट ५ भव करने वाले- (१) मनुष्य चार अनुत्तर विमान

में जावे तो उत्कृष्ट ५ भव करे । (२) सन्नी तिर्यंच सातवीं नारकी में जावे तो तीसरे छट्ठे नौवें गम्मे से उत्कृष्ट ५ भव करे ।

(५) उत्कृष्ट ६ भव करने वाले- (१) ९ से १२ तक चार देवलोक एव ९ ग्रैवेयक के देवता मनुष्य में जावे तो उत्कृष्ट ६ भव करे । (२) सातवीं नारकी का नैरयिक सन्नी तिर्यंच में जावे तो १ से ६ गम्मों में उत्कृष्ट ६ भव करे ।

(६) उत्कृष्ट ७ भव करने वाले- (१) मनुष्य ४ देवलोक (९ से १२) और नव ग्रैवेयक में जावे तो ७ भव करे । (२) सन्नी तिर्यंच सातवीं नरक में जावे तो पहले, दूसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें आठवें गम्मे से उत्कृष्ट सात भव करे ।

(७) उत्कृष्ट स ख्याता भव- (१) पाँचों स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय में जावे तो गम्मा- १,२,४,५ से उत्कृष्ट स ख्याता भव करे । (२) तीन विकलेन्द्रिय औदारिक के ८ घर में (पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में) जावे तो गम्मा- १,२,४,५ से उत्कृष्ट स ख्याता भव करे ।

(८) उत्कृष्ट अस ख्य भव- (१) पृथ्वी आदि पाँचों स्थावर, पृथ्वी आदि ४ स्थावर में जावे तो गम्मा- १,२,४,५ से उत्कृष्ट अस ख्य भव करे ।(२) पृथ्वी आदि चार स्थावर, वनस्पति में जावे तो गम्मा- १,२,४,५ से अस ख्य भव करे ।

(९) उत्कृष्ट अन त भव- (१) वनस्पति मरकर वनस्पति में जावे तो गम्मा- १,२,४,५ से उत्कृष्ट अन त भव करे ।

(१०) उत्कृष्ट आठ भव- उपरोक्त ९ क्रमा क तक कहे गये स्थानों के सिवाय शेष बचे सभी में उत्कृष्ट ८ भव करते हक्त । जिसमें असन्नि मनुष्य सर्वत्र ३ गम्मों से (१,२,३ से) एव असन्नि तिर्यंच, सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य ये तीनों जहाँ भी (शेष बचे स्थानों में)जावे सर्वत्र नव गम्मों से और पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय जीव इन्हीं ८ घरों में जावे तो गम्मा न .३,६,७,८,९ से उत्कृष्ट ८ भव करे तथा ५ स्थावर ३ विकलेन्द्रिय, ये आठ जीव तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य के घर में जावे तो ९ ही गम्मों से उत्कृष्ट आठ भव करे । इस प्रकार यहाँ १ से १० पोइट में सभी प्रकार के उत्कृष्ट भव स ग्रहित किये गये हक्त ।

प्रश्न-१५ : असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक में जावे तो उसके ९ गम्मों के २० द्वार की रिद्धि और ५ णाणत्ते और कालादेश नव गम्मों का किस प्रकार होता है ? (उद्देशक-१)

उत्तर- इस शतक के प्रथम उद्देशक में नरक में जाने वाले असन्नि तिर्यंच का सर्व प्रथम विस्तृत वर्णन है । उसके बाद सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य के ७ नरक में जाने का वर्णन है । इनके सिवाय कोई जीव नरक में नहीं जाता है । अतः नरक के प्रथम उद्देशक में इन तीन जीवों के आने का ९ गम्मा २० द्वार से वर्णन है । जिसमें असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय का ९ गम्मों से वर्णन इस प्रकार है-

पहला गम्मा- औघिक से औघिक अर्थात् सभी प्रकार की स्थिति वाला असन्नि तिर्यंच पहली नरक की अपने योग्य सभी स्थिति प्राप्त करे उसके २० द्वार-

(१) उपपात- जघन्य १०००० वर्ष, उत्कृष्ट पल्योपम के अस ख्यातवें भाग की स्थिति नरक में प्राप्त कर सकता है ।

(२) परिमाण- एक समय में जघन्य १-२-३ जीव नरक में उत्पन्न होते हक्त, उत्कृष्ट अस ख्य जीव नरक में उत्पन्न हो सकते हक्त ।

(३) स घयण- नरक में जाने वाले असन्नि तिर्यंच में एक सेवार्त स हनन होता है । (इस तीसरे बोल से लेकर १९वें बोल तक सभी ऋद्धि जाने वाले जीव की अर्थात् असन्नि तिर्यंच की कही जाती है)

(४) अवगाहना- जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन(जलचर की अपेक्षा) होती है ।

(५) स स्थान- हु डक स स्थान एक ही होता है ।

(६) लेश्या- कृष्ण, नील, कापोत तीन लेश्या पाई जाती है ।

(७) दृष्टि- एक मिथ्यादृष्टि ही होती है ।

(८) ज्ञानाज्ञान- २ । अज्ञान पाये जाते हक्त । ज्ञान नहीं होते ।

(९) योग- दो । वचन और काया का ।

(१०) उपयोग- दो । साकारोपयोग और अनाकारोपयोग । २ अज्ञान और २ दर्शन होते हक्त ।

(११) स ज्ञा- चारों स ज्ञा पाई जाती है ।

(१२) कषाय- चारों होते हक्त ।

(१३) इन्द्रिय- पाँचों होती है ।

(१४) समुद्घात- तीन होती है, वेदनीय, कषाय और मारणांतिक ।

(१५) वेदना- शाता, अशाता दोनों वेदना होती है ।

(१६) वेद- एक नपु सक वेद होता है ।

(१७) आयुष्य- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट करोड पूर्व का आयुष्य हो सकता है ।

(१८) अध्यवसाय- शुभ-अशुभ दोनों अध्यवसाय होते हक्त ।

(१९) अनुब ध- जातिनाम गतिनाम आदि ६ प्रकार के अनुब ध आयुष्य के अनुसार होते हक्त ।

(२०) कायस वेध- (१) भवादेश- २ भव ही करे । एक अपना चालू भव और दूसरा नारकी का । उसके बाद सन्नी तिर्यंच या मनुष्य बनता है । (२) कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक दसहजार वर्ष दोनों जगह मिलकर काल व्यतीत होता है फिर अन्यत्र जाता है । उत्कृष्ट क्रोडपूर्व अधिक पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग, दोनों भव में मिलकर व्यतीत करता है । ***[प्रथम नरक में १ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है किंतु असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय अपने मन के अभाव में अधिकतम आयुष्यब ध पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ही कर सकता है ।]***

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य- सभी प्रकार की स्थिति का असन्नि तिर्यंच प्रथम नरक की जघन्य स्थिति में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- एक मात्र १०००० दस हजार वर्ष का । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान ऋद्धि कहना । **कालादेश-** जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व अधिक दस हजार वर्ष, दोनों जगह का मिलकर होता है ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट- सभी प्रकार की स्थिति वाले असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक की उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न होवे, उनका-(१) उपपात- एक मात्र पल्योपम का अस ख्यातवाँ

भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । **कालादेश-** जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक- मात्र अ तर्मुहूर्त की स्थिति का असन्नि तिर्यंच प्रथम नरक की सभी स्थितियों में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- जघन्य १० हजार वर्ष उत्कृष्ट पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ।(२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । किंतु **णाणत्ता-** तीन बोलों में फर्क होता है- (१) आयुष्य- अ तर्मुहूर्त (२) अनुब ध- आयुष्य अनुसार (३) अध्यवसाय- एक अशुभ ।

[असन्नि तिर्यंच के जो कुल ५ णाणत्ते कहे गये हक्त उनमें से ३ णाणत्ते चौथे पाँचवें छट्ठे गम्मे में होते हक्त और दो णाणत्ते सातवें आठवें नौवें गम्मे में होते हक्त । यों कुल मिलकर ५ णाणत्ते होते हक्त ।]

कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग । ***[इस चौथे गम्में में असन्नि तिर्यंच की एक मात्र जघन्य स्थिति है अत: अ तर्मुहूर्त ही कहा जाता है। नारकी की औघिक(सभी) स्थिति होने से जघन्य में दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट में पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कहा गया है ।]***

पाँचवाँ गम्मा- जघन्य से जघन्य- अ तर्मुहूर्त का असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक की दस हजार वर्ष की स्थिति में उत्पन्न होता है ।(१) उपपात- एक मात्र दस हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान णाणत्ता सहित कहना । **कालादेश-** एक मात्र अ तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष होता है ।

छट्ठा गम्मा- जघन्य से उत्कृष्ट- अ तर्मुहूर्त का असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक में पल्योपम के अस ख्यातवें भाग में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- एक मात्र पल्योपम का अस ख्यातवा भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक णाणत्ता सहित चौथ गम्मे के समान कहना । कालादेश- एकमात्र अ तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ।

सातवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से औघिक- क्रोडपूर्व का असन्नि तिर्यंच प्रथम नरक की औघिक(सभी) स्थिति में उत्पन्न होता है । (१)

उपपात- जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट पल्योपम का अस ख्यातवा भाग (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । किंतु णाणत्ता- दो बोलों में फर्क होता है- (१) आयुष्य क्रोडपूर्व का और (२) अनुब ध आयुष्य के अनुसार होता है । कालादेश- जघन्य क्रोड-पूर्व अधिक दसहजार वर्ष, उत्कृष्ट-क्रोडपूर्व अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ।

आठवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से जघन्य- क्रोडपूर्व का असन्नि तिर्यंच प्रथम नरक में जघन्य स्थिति में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- एक मात्र दस हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान णाणत्ता सहित । कालादेश- एक मात्र क्रोडपूर्व अधिक दस हजार वर्ष ।

नौवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट- क्रोडपूर्व का असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय प्रथम नरक में पल्योपम के अस ख्यातवें भाग की स्थिति में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- एक मात्र पल्योपम का अस ख्यातवा भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान णाणत्ता सहित । कालादेश- एक मात्र क्रोडपूर्व अधिक पल्योपम का अस ख्यातवा भाग ।

यह असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय का ९ गम्मों के माध्यम से नरक में जाने स ब धी २० द्वार की ऋद्धि का कथन पाँच णाणत्ते सहित कहा गया है । इसी तरह आगत स्थान के ३२१ जीवों का अपने योग्य ४४ घरों में उत्पन्न होने स ब धी गम्मा, णाणत्ता एव २० द्वार की ऋद्धि का कथन मूल पाठ से शास्त्र में २४ उद्देशकों के माध्यम से किया गया है जिसे पढने पर लघुद डक और गतागत का अभ्यासी पाठक उपरोक्त १ से १३ प्रश्नगत समाधानों को ध्यान में रखकर सहज समझ सकता है । विशेष जिज्ञासा के लिये सारा श पुस्तक का एव विवेचन की आगम पुस्तक का तथा गम्मा के थोकडे की पुस्तक का अवलोकन अुप्रेक्षण करना चाहिये । बार बार पुनरावर्तन, चर्चा-विचारणा से ही यह गम्मा प्रकरण परिमार्जित परिशुद्ध एव अभ्यस्त होता है । अ त में परिपूर्ण आत्मसात होकर ज्ञानान द दायक बनता है ।

तथापि उदाहरण रूप में कुछ महत्वशील आगत स्थानों का कथन प्रश्नोत्तर के माध्यम से किया जा रहा है । देखें प्रश्न–१६ से २४ तक ।

प्रश्न–१६ : सन्नी तिर्यंच सातवीं नरक में जावे, उसके ९ गम्मों से २० द्वार की रिद्धि किस प्रकार है ? (उद्देशक–१)

उत्तर– पहला गम्मा– औघिक से औघिक– सभी स्थिति का सन्नी तिर्यंच सातवीं नारकी की सभी स्थिति में उत्पन्न होवे उसके २० द्वार–

(१) उपपात– जघन्य २२ सागर उत्कृष्ट ३३ सागर (२) परिमाण– जघन्य १,२,३ उत्कृष्ट अस ख्य (३) अवगाहना– जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन । (४) स घयण– एक वज्र–ऋषभ–नाराच । (५) स स्थान– ६ । (६) कषाय–४ ।(७) स ज्ञा–४। (८) लेश्या–६ । (९) इन्द्रिय–५ । (१०) समुद्घात–५ । (११) दृष्टि–३ । (१२) ज्ञानाज्ञान–३ ज्ञान ३ अज्ञान । (१३) योग–३ । (१४) उपयोग–२ (१५) वेदना–२ । (१६) वेद–२ । (१७) आयुष्य– जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रोडपूर्व । (१८) अनुब ध– आयुष्य अनुसार । (१९) अध्यवसाय–दोनों । (२०) कायस वेध में भवादेश– जघन्य–३ उत्कृष्ट ७ भव करे । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व अधिक ६६ सागरोपम ।

[सातवीं नारकी में २२ सागर के ही तीन भव लगातार हो सकते हक्त उससे ज्यादा स्थिति के (३३ सागर तक के) दो भव ही लगातार हो सकते हक्त । तो उन दो भवों से तो उत्कृष्ट ३ क्रोडपूर्व साधिक ६६ सागर होते हक्त यह स्थिति मध्यम है । जब कि २२ सागर के तीन भव करने पर ४ क्रोडपूर्व साधिक ६६ सागरोपम होता है] अत: उत्कृष्ट कालादेश में उसे ही कहा जाता है ।

दूसरा गम्मा– औघिक से जघन्य । (१) उपपात–२२ सागर । (२–२०) परिमाण से भवादेश–कालादेश तक प्रथम गम्मा के समान है ।

तीसरा गम्मा– औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात–३३ सागर । (२–१९) परिमाण से अनुब ध तक प्रथम गम्मा के समान । (२०) कायस वेध में (१) भवादेश–जघन्य ३ भव, उत्कृष्ट–५ भव । (२) कालादेश–

जघन्य दो अ तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागर, उत्कृष्ट तीन क्रोडपूर्व साधिक ६६ सागरोपम ।

चौथा गम्मा– जघन्य से औघिक । (१) उपपात– जघन्य २२ सागर उत्कृष्ट ३३ सागरोपम । (२–२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान किंतु **णाणत्ते–** ८ बोल में फर्क होता है–(१) अवगाहना– अ गुल के अस ख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट अनेक धनुष की । (२) लेश्या–३ । (३) दृष्टि–१ । (४) अज्ञान–३, ज्ञान नहीं । (५) समुद्घात–३ । (६) अध्यवसाय–अशुभ । (७) आयुष्य–अ तर्मुहूर्त । (८) अनुब ध–आयुष्य जितना । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम ।

पाँचवाँ गम्मा– जघन्य से जघन्य । (१) उपपात–२२ सागरोपम । (२–२०) चौथे गम्मे के समान, णाणत्ता कालादेश सहित ।

छट्ठा गम्मा– जघन्य से उत्कृष्ट । (१) उपपात– ३३ सागरोपम । (२–१९) परिमाण से अनुब ध तक चौथे गम्मे के समान णाणत्ता सहित । (२०) भवादेश–जघन्य ३ भव उत्कृष्ट ५ भव । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागर, उत्कृष्ट ३ अ तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागर ।

सातवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात– जघन्य २२ सागर उत्कृष्ट ३३ सागर । (२–२०) प्रथम गम्मा के समान किंतु **णाणत्ता–**२ बोलों में फर्क है– (१) आयुष्य– क्रोडपूर्व और (२) अनुब ध आयुष्य जितना । कालादेश– जघन्य दो क्रोड पूर्व अधिक २२ सागर उत्कृष्ट ४ करोड पूर्व अधिक ६६ सागर ।

आठवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात– २२ सागरोपम मात्र । परिमाण से कालादेश तक सातवें गम्मे के समान ।

नौवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से उत्कृष्ट। (१) उपपात–३३ सागर । (२–१९) परिमाण से अनुब ध तक सातवाँ गम्मा के समान । (२०) भवादेश जघन्य ३, उत्कृष्ट–५ भव करे । कालादेश– जघन्य दो क्रोडपूर्व अधिक ३३ सागर, उत्कृष्ट–३ क्रोडपूर्व अधिक ६६ सागरोपम ।

प्रश्न-१७ : सन्नी तिर्यंच के पृथ्वीकाय में जाने स ब धी ९ गम्मों की रिद्धि णाणत्तों सहित किस प्रकार होती है ? (उद्दे.१२)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- अपनी सभी स्थिति वाले सन्नी तिर्यंच, पृथ्वीकाय की सभी स्थितियों में उत्पन्न हो तो उसका- (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष । (२) परिमाण- जघन्य १,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता-अस ख्याता उत्पन्न होते हक्त ।(३) स घयण- ६ । (४) स स्थान-६ (५) अवगाहना- जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट १००० योजन की (६) लेश्या-६ (७) दृष्टि-३ (८) ज्ञानाज्ञान- ३ ज्ञान ३ अज्ञान । (९) योग-३ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय-५ (१४) समुद्घात-५ (१५) वेदना-दोनों (१६) वेद-३ (१७) आयुष्य-जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व (१८) अनुब ध-आयुष्य अनुसार (१९) अध्यवसाय- दोनों (२०) कायस वेध में (१) भवादेश- जघन्य-२, उत्कृष्ट ८ भव (२) कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व और ८८ हजार वर्ष ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-अ तर्मुहूर्त । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान । कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-२२ हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष । उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक ।(यह जाने वाला जीव अपर्याप्त है) (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान । णाणत्ता- अपर्याप्त होने से ९ बोल में फर्क पडता है- (१) अवगाहना- अ गुल के अस ख्या-तवें भाग । (२) लेश्या-३ । (३) दृष्टि-१ । (४) ज्ञानाज्ञान-२ अज्ञान । (५) योग-१ काया का । (६) समुद्घात-३ । (७) आयुष्य- अ तर्मुहूर्त । (८) अनुब ध-आयुष्य के समान । (९) अध्यवसाय- अशुभ ।

कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष ।

पाँचवाँ गम्मा- जघन्य से जघन्य । (१) उपपात-अ तर्मुहूर्त । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान, णाणत्ता सहित । कालादेश-जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट-८ अ तर्मुहूर्त ।

छट्ठा गम्मा- जघन्य से उत्कृष्ट । (१) उपपात- २२ हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान, णाणत्ता सहित । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष ।

सातवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान किंतु **णाणत्ता-**२ बोलों में फर्क होता है- आयुष्य क्रोडपूर्व और अनुब ध आयुष्य जितना । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक क्रोड पूर्व, उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

आठवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात- अ तर्मुहूर्त । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक क्रोडपूर्व, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

नौवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात-२२ हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य २२ हजार वर्ष अधिक क्रोडपूर्व, उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

प्रश्न-१८ : असन्नि मनुष्य के वनस्पति में जाने स ब धी ३ गम्मों की रिद्धि किस प्रकार होती है ? (उद्दे.१६)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- अपनी अ तर्मुहूर्त की स्थिति से असन्नि मनुष्य,वनस्पतिकाय की सभी स्थिति में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट १० हजार वर्ष । (२) परिमाण- जघन्य १,२,३ उत्कृष्ट अस ख्य ।(३) स घयण- १ ।

(४) स स्थान-१ (५) अवगाहना- अ गुल के अस ख्यातवें भाग । (६) लेश्या-३ (७) दृष्टि-१ (८) ज्ञानाज्ञान- २ अज्ञान । (९) योग -१ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय- ५ (१४) समुद्घात-३ (१५) वेदना-दोनों (१६) वेद-१ (१७) आयुष्य- अ तर्मुहूर्त (१८) अनुब ध-आयुष्य अनुसार (१९) अध्यवसाय- अशुभ (२०) कायस वेध में (१) भवादेश- जघन्य-२ भव, उत्कृष्ट ८ भव (२) कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४० हजार वर्ष ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-अ तर्मुहूर्त (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान । कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ८ अ तर्मुहूर्त ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-१० हजार वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मा के समान । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४० हजार वर्ष । *(शेष ६ गम्मे असन्नि मनुष्य में नहीं होते है क्यों कि स्थिति एक प्रकार की अ तर्मुहूर्त मात्र की है ।)*

प्रश्न-१९ : वायुकाय के बेइन्द्रिय में जाने स ब धी ९ गम्मों की रिद्धि णाणत्तों सहित किस प्रकार होती है ? (उद्दे.१७)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- अपनी सभी प्रकार की स्थिति वाला वायुकाय, बेइन्द्रिय की सभी प्रकार की स्थिति में उत्पन्न होता है जिसका- (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट १२ वर्ष । (२) परिमाण- समय-समय स ख्याता जीव निर तर उत्पन्न होते हक्त । (३) स घयण-१ (४) स स्थान-१ (५) अवगाहना- जघन्य और उत्कृष्ट अ गुल के अस ख्यातवें भाग की । वैक्रिय की अपेक्षा भी उतनी ही (६) लेश्या-३ (७) दृष्टि-१ (८) ज्ञानाज्ञान-२ अज्ञान । (९) योग-१ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय-१ (१४) समुद्घात-४ (१५) वेदना-२ (१६) वेद-१ (१७) आयुष्य-जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष (१८) अनुब ध- आयुष्य अनुसार (१९) अध्यवसाय- दोनों (२०) कायस वेध में- (१)

भवादेश- जघन्य-२ भव, उत्कृष्ट स ख्याता भव (२) कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट स ख्याता काल ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-अ तर्मुहूर्त । (२-१०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट स ख्याता काल ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-१२ वर्ष । (२-१९) परिमाण से अनुब ध तक प्रथम गम्मे के समान । (२०) भवादेश- जघन्य २ भव, उत्कृष्ट-८ भव । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक १२ वर्ष, उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक १२ हजार वर्ष ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक ।(१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट १२ वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान पर तु णाणत्ता-४ बोलों में फर्क-(१) समुद्घात-३, (२) अध्यवसाय-अशुभ, (३) आयुष्य-अ तर्मुहूर्त । (४) अनुब ध-आयुष्य के समान, कालादेश- जघन्य दो अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट स ख्याता काल ।

पाँचवा गम्मा- जघन्य से जघन्य । (१) उपपात-अ तर्मुहूर्त । (२-२०) परिमाण से भवादेश-कालादेश तक चौथे गम्मे के समान ।

छट्ठा गम्मा- जघन्य से उत्कृष्ट । (१) उपपात- १२ वर्ष । (२-१९) परिमाण से अनुब ध तक चौथे गम्मे के समान । (२०) भवादेश-जघन्य २ भव, उत्कृष्ट ८ भव । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक १२ वर्ष, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४८ वर्ष ।

सातवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट १२ वर्ष । (२-१९) परिमाण से अनुब ध तक प्रथम गम्मे के समान । **णाणत्ता-**२ बोलों में फर्क- आयुष्य तीन हजार वर्ष और अनुब ध आयुष्य जितना । (२०) भवादेश- जघन्य २ भव, उत्कृष्ट ८ भव । कालादेश- जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक ३ हजार वर्ष, उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक १२ हजार वर्ष ।

आठवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात- अ तर्मुहूर्त । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान ।कालादेश- जघन्य

अ तर्मुहूर्त अधिक ३ हजार वर्ष, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक १२ हजार वर्ष ।

नौवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात–१२ वर्ष । (२–२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश– जघन्य १२ वर्ष अधिक ३ हजार वर्ष और उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक १२ हजार वर्ष ।

प्रश्न–२० : सन्नी मनुष्य के तिर्यंच प चेन्द्रिय में जाने स ब धी ९ गम्मों की रिद्धि णाणत्तों सहित किस प्रकार होती है ? (उद्दे.२०)

उत्तर– पहला गम्मा– औघिक से औघिक– अ तर्मुहूर्त से लेकर क्रोडपूर्व तक की सभी स्थिति वाला मनुष्य, तिर्यंच प चेन्द्रिय की सभी स्थितियों में उत्पन्न होवे तो उसका– (१) उपपात– जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३ पल्योपम । (२) परिमाण–१,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता (३) स घयण–६ । (४) स स्थान–६ (५) अवगाहना– जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ५०० धनुष (६) लेश्या–६ (७) दृष्टि–३ (८) ज्ञानाज्ञान– ४ ज्ञान ३ अज्ञान । (९) योग–३ (१०) उपयोग–२ (११) स ज्ञा–४ (१२) कषाय–४ (१३) इन्द्रिय–५ (१४) समुद्घात–६ (१५) वेदना–२ (१६) वेद–३ (१७) आयुष्य–जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व (१८) अध्यवसाय– दोनों (१९) अनुब ध–आयुष्य अनुसार (२०) कायस वेध में (१) भवादेश– जघन्य–२, उत्कृष्ट ८ भव (२) कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ७ क्रोडपूर्व अधिक तीन पल्योपम ।

दूसरा गम्मा– औघिक से जघन्य । (१) उपपात–अ तर्मुहूर्त । (२–२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

तीसरा गम्मा– औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात–३ पल्योपम । (२) परिमाण–१, २, ३ उत्कृष्ट स ख्याता । (५) अवगाहना–जघन्य अनेक अ गुल, उत्कृष्ट ५०० धनुष ।(१७) आयुष्य– जघन्य अनेक मास, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व । (१९) अनुब ध– आयुष्य अनुसार । (२०) भवादेश– जघन्य–उत्कृष्ट २ भव । कालादेश– जघन्य अनेक मास अधिक

तीन पल्योपम, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व अधिक तीन पल्योपम ।

चौथा गम्मा– जघन्य से औघिक । (१) उपपात– जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रोडपूर्व । (२) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता– ९ बोलों में फर्क–(१) अवगाहना– अ गुल के अस ख्यातवें भाग । (२) लेश्या–३ । (३) दृष्टि–१ । (४) ज्ञानाज्ञान– दो अज्ञान । (५) योग–१ । (६) समुद्घात–३ । (७) आयुष्य– अ तर्मुहूर्त । (८) अनुब ध–आयुष्य के समान । (९) अध्यवसाय–१ । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट चार अ तर्मुहूर्त अधिक चार क्रोडपूर्व ।

पाँचवाँ गम्मा– जघन्य से जघन्य । (१) उपपात–अ तर्मुहूर्त। (२–२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान । कालादेश– जघन्य दो अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट आठ अ तर्मुहूर्त ।

छट्ठा गम्मा– जघन्य से उत्कृष्ट । (१) उपपात–क्रोडपूर्व । (२–२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान । कालादेश– जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक क्रोड पूर्व, उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

सातवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात– जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३ पल्योपम । (२–२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता–३ बोलों में फर्क पडता है– (१) आयुष्य क्रोड–पूर्व (२) अनुब ध इतना ही (३) अवगाहना–५०० धनुष । कालादेश– जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक क्रोडपूर्व वर्ष, उत्कृष्ट ७ क्रोड पूर्व अधिक ३ पल्योपम ।

आठवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात– अ तर्मुहूर्त (२–२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश– जघन्य अ तर्मुहूर्त अधिक क्रोडपूर्व और उत्कृष्ट ४ अ तर्मुहूर्त अधिक ४ क्रोडपूर्व ।

नौवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात–३ पल्योपम । (२–१९) परिमाण से लेकर अनुब ध तक सातवें गम्मे के समान । (२०) भवादेश– २ भव मात्र । कालादेश– जघन्य–उत्कृष्ट क्रोडपूर्व अधिक ३ पल्योपम ।

प्रश्न-२१ : तिर्यंच युगलिक के ज्योतिषी देवों में जाने स ब धी गम्मे एव णाणत्ते किस प्रकार होते हक्त ? (उद्दे.२३)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग, उत्कृष्ट तीन पल्योपम का युगलिक ज्योतिषी की सभी स्थितियों में उत्पन्न होवे उसका- (१) उपपात- जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग, उत्कृष्ट १ पल्योपम एक लाख वर्ष । (२) परिमाण- जघन्य १,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता ।(३) स घयण-१ । (४) स स्थान-१ (५) अवगाहना- जघन्य अनेक धनुष उत्कृष्ट ६ गाउ (६) लेश्या-४ (७) दृष्टि-१ (८) ज्ञानाज्ञान-२ अज्ञान । (९) योग-३ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय-५ (१४) समुद्घात-३ (१५) वेदना-२ (१६) वेद-२ (१७) आयुष्य-जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग, उत्कृष्ट ३ पल्योपम (१८) आयुष्य के अनुसार अनुब ध (१९) अध्यवसाय- दोनों ।(२०) कायस वेध में (१) भवादेश-२ भव (२) कालादेश- जघन्य दो पल्योपम के आठवें भाग (पाव पल्योपम), उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक ४ पल्योपम ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-पल्योपम का आठवाँ भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो पल्योपम के आठवें भाग(पाव पल्योपम) उत्कृष्ट तीन पल्योपम और पल्योपम का आठवाँ भाग ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-१ पल्योपम १ लाख वर्ष । परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान किंतु आयुष्य- जघन्य एक पल्योपम एक लाख वर्ष, उत्कृष्ट ३ पल्योपम । कालादेश- जघन्य २ पल्योपम दो लाख वर्ष, उत्कृष्ट ४ पल्योपम एक लाख वर्ष ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक । (१) उपपात- पल्योपम का आठवाँ भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता- ३ बोलों में फर्क-(१) आयुष्य-पल्योपम का आठवाँ भाग मात्र । (२) अनुब ध भी इतना ही । (३) अवगाहना- जघन्य अनेक धनुष, उत्कृष्ट १८०० धनुष । कालादेश-जघन्य-उत्कृष्ट दोनों ही २ पल्योपम का आठवाँ भाग अर्थात् पाव पल्योपम ।

गम्मा-५-६ नहीं होता है, ४,५,६ तीनों एक सरीखे हो जाने से भिन्नता नहीं होने से तीन का एक ही गम्मा हो जाता है ।

सातवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात-जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग, उत्कृष्ट एक पल्योपम एक लाख वर्ष । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता-२ बोलों में फर्क- आयुष्य ३ पल्योपम और तदनुसार अनुब ध । कालादेश- जघन्य ३ पल्योपम और पल्योपम का आठवाँ भाग अधिक, उत्कृष्ट ४ पल्योपम और १ लाख वर्ष ।

आठवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात- पल्योपम का आठवाँ भाग । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य-उत्कृष्ट दोनों पल्योपम का आठवाँ भाग अधिक ३ पल्योपम ।

नौवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात-१ पल्योपम १ लाख वर्ष। (२) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य-उत्कृष्ट ४ पल्योपम और १ लाख वर्ष । ***(युगलिक अपनी स्थिति से कम का या अपनी स्थिति के समान का आयुब ध कर सकता है। ज्यादा का नहीं करता अर्थात् तीन पल्योपम का युगलिक ज्योतिषी की सभी स्थिति में जा सकता है अर्थात् एक पल्योपम १ लाख वर्ष का आयुष्य भी बा ध सकता है किंतु पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वाला उतनी ही स्थिति का आयुष्य बा धता है उससे अधिक स्थिति का ज्योतिषी का कोई भी आयुष्य नहीं बा धता है ।)***

प्रश्न-२२ : मनुष्य युगलिक के प्रथम देवलोक में जाने स ब धी गम्मे, रिद्धि एव णाणत्ते किस प्रकार होते हक्त ? (उद्दे.२४)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- (१) उपपात- जघन्य १ पल्योपम उत्कृष्ट ३ पल्योपम । (२) परिमाण- १,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता । (३) स घयण-१ । (४) स स्थान-१ (५) अवगाहना- जघन्य १ कोस, उत्कृष्ट ३ कोस (६) लेश्या-४ (७) दृष्टि-२ (८) ज्ञानाज्ञान- २ ज्ञान, २ अज्ञान । (९) योग-३ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय-५ (१४) समुद्घात-३ (१५) वेदना-२

(१६) वेद-२ (१७) आयुष्य-जघन्य १ पल्योपम, उत्कृष्ट ३ पल्योपम (१८) अनुब ध-आयुष्य के अनुसार (१९) अध्यवसाय- दोनों । (२०) कायस वेध में (१) भवादेश-२ भव (२) कालादेश- जघन्य दो पल्योपम, उत्कृष्ट ६ पल्योपम ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-१ पल्योपम । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो पल्योपम, उत्कृष्ट ४ पल्योपम ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-३ पल्योपम। (२-२०) परिमाण से लेकर भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान किंतु आयुष्य ३ पल्योपम मात्र और अवगाहना ३ कोस की । कालादेश- जघन्य-उत्कृष्ट ६ पल्योपम ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक । (१) उपपात- १ पल्योपम । परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता- ३ बोलों में फर्क-(१) आयुष्य-१ पल्योपम । (२) अवगाहना-१ कोस।(३) अनुब ध आयुष्य अनुसार । कालादेश-जघन्य-उत्कृष्ट दो पल्योपम।

पाँचवाँ-छट्ठा गम्मा नहीं होता है । पूर्ववत्(प्रश्न-२२ के समान) ।

सातवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात-जघन्य १ पल्योपम उत्कृष्ट ३ पल्योपम । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता-३ बोलों में फर्क- (१) आयुष्य- ३ पल्योपम का (२) अवगाहना-३ कोस की (३) अनुब ध-आयुष्य अनुसार । कालादेश- जघन्य ४ पल्योपम, उत्कृष्ट ६ पल्योपम ।

आठवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात- १ पल्योपम । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य-उत्कृष्ट दोनों ही ४ पल्योपम ।

नौवाँ गम्मा- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात-३ पल्योपम । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य-उत्कृष्ट ६ पल्योपम ।

प्रश्न-२३ : सन्नी मनुष्य के ग्रैवेयक में जाने स ब धी गम्मे, रिद्धि एव णाणत्ते किस प्रकार होते हक्त ? (उद्दे.२४)

उत्तर- पहला गम्मा- औघिक से औघिक- (१) उपपात- जघन्य २२ सागर, उत्कृष्ट ३१ सागर । (२) परिमाण-१,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता (३) स घयण-२(प्रार भ के) । (४) स स्थान-६ (५) अवगाहना- जघन्य अनेक हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष (६) लेश्या-६ (७) दृष्टि-३ (८) ज्ञानाज्ञान- ४ ज्ञान ३ अज्ञान । (९) योग-३ (१०) उपयोग-२ (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) इन्द्रिय-५ (१४) समुद्घात-६ (१५) वेदना-२ (१६) वेद-३ (१७) आयुष्य-जघन्य अनेक वर्ष, उत्कृष्ट क्रोडपूर्व (१८) अध्यवसाय- दोनों (१९) अनुब ध-आयुष्य अनुसार (२०) कायस वेध में- (१) भवादेश- जघन्य-३, उत्कृष्ट ७ भव । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व अधिक ९३ सागर ।

दूसरा गम्मा- औघिक से जघन्य । (१) उपपात-२२ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष अधिक २२ सागर और उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व अधिक ६६ सागर ।

तीसरा गम्मा- औघिक से उत्कृष्ट । (१) उपपात-३१ सागर । (२-२०) परिमाण से लेकर भवादेश तक पहले गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष अधिक ३१ सागर, उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व अधिक ९३ सागर ।

चौथा गम्मा- जघन्य से औघिक । (१) उपपात- जघन्य २२ सागर, उत्कृष्ट ३१ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता- ३ बोलों में फर्क-(१) अवगाहना- अनेक हाथ मात्र (२) आयुष्य- अनेक वर्ष मात्र (३) अनुब ध-आयुष्य के समान । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ अनेक वर्ष अधिक ९३ सागर ।

पाँचवाँ गम्मा- जघन्य से जघन्य । (१) उपपात-२२ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य २ अनेक वर्ष अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ अनेक वर्ष अधिक ६६ सागर ।

छट्ठा गम्मा– जघन्य से उत्कृष्ट । (१) उपपात-३१ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक चौथे गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष अधिक ३१ सागर और उत्कृष्ट ४ अनेक वर्ष अधिक ९३ सागर ।

सातवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से औघिक । (१) उपपात- जघन्य-२२, उत्कृष्ट ३१ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक प्रथम गम्मे के समान । णाणत्ता-३ बोलों में फर्क- (१) आयुष्य-क्रोडपूर्व मात्र (२) अवगाहना-५०० धनुष । (३) आयुष्य अनुसार अनुब ध । कालादेश- जघन्य २ क्रोडपूर्व अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ क्रोड पूर्व, अधिक ९३ सागर ।

आठवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से जघन्य । (१) उपपात- २२ सागर । (२-२०) परिमाण से भवादेश तक सातवें गम्मे के समान ।कालादेश- जघन्य २ क्रोडपूर्व अधिक २२ सागर, उत्कृष्ट ४ क्रोड पूर्व अधिक ६६ सागर ।

नौवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से उत्कृष्ट । (१) उपपात-३१ सागर । (२-२०) परिमाण से लेकर भवादेश तक सातवें गम्मे के समान । कालादेश- जघन्य २ क्रोडपूर्व अधिक ३१ सागर, उत्कृष्ट ४ क्रोडपूर्व अधिक ९३ सागरोपम ।

प्रश्न-२४ : सन्नी मनुष्य सर्वार्थसिद्ध विमान में जावे उसके गम्मे, णाणत्ते, रिद्धि कालादेश तक किस प्रकार होते हक्त ? (उद्देशक-२४)

उत्तर– सर्वार्थसिद्ध विमान में एक मात्र ३३ सागरोपम की स्थिति है इसलिये ९ गम्मे नहीं होकर ३ गम्मों से ही रिद्धि का कथन होता है।

प्रथम गम्मा– औघिक से औघिक- सभी प्रकार की अर्थात् जघन्य अनेक वर्ष उत्कृष्ट क्रोडपूर्व की स्थिति वाला मनुष्य सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होता है । (१) उपपात- ३३ सागर । (२) परिमाण- जघन्य-१,२,३ उत्कृष्ट स ख्याता । (३) स घयण- एक वज्रऋषभ- नाराच । (४) स स्थान-६ । (५) अवगाहना- जघन्य अनेक हाथ उत्कृष्ट- ५०० धनुष । (६) लेश्या-६ । (७) दृष्टि-तीन । (९) ज्ञानाज्ञान- चार ज्ञान, ३ अज्ञान । (९) योग-३ । (१०) उपयोग-२ ।

(११-१३) स ज्ञा, कषाय, इन्द्रिय-पूरेपूरी । (१४) समुद्घात-६ । (१५) वेदना- दोनों । (१६) वेद- ३ । (१७) आयुष्य- जघन्य अनेक वर्ष उत्कृष्ट करोड पूर्व । (१८) आयुष्य के अनुसार अनुब ध । (१९) अध्यवसाय-दोनों । (२०) कायस वेध में भवादेश-जघन्य उत्कृष्ट-३ भव । कालादेश- जघन्य दो अनेक वर्ष (१८ वर्ष) अधिक ३३ सागर, उत्कृष्ट दो क्रोड पूर्व अधिक ३३ सागरोपम । दूसरा तीसरा गम्मा नहीं होता ।

चौथा गम्मा– जघन्य से औघिक- अनेक वर्ष का (९ वर्ष का) मनुष्य सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होता है । जिसका उपपात से भावदेश पर्यंत प्रथम गम्मे के समान । किंतु णाणत्ता-३ है- (१) आयुष्य अनेक वर्ष मात्र, (२)अनुब ध आयु जितना (३) अवगाहना अनेक हाथ मात्र । कालादेश- जघन्य उत्कृष्ट दो अनेक वर्ष (१८ वर्ष) अधिक ३३ सागरोपम । पाँचवाँ छट्ठा गम्मा नहीं होता है ।

सातवाँ गम्मा– उत्कृष्ट से औघिक- क्रोडपूर्व का मनुष्य सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होवे उसका उपपात से भवादेश पर्यंत कथन प्रथम गम्मे के समान है । फर्क- णाणत्ता तीन बोल में है- (१) अवगाहना ५०० धनुष (२) आयुष्य क्रोडपूर्व (३) और आयुष्य अनुसार अनुब ध होता है । कालादेश- जघन्य उत्कृष्ट दो क्रोडपूर्व अधिक ३३ सागरोपम का होता है । आठवाँ नौवाँ गम्मा नहीं बनता है ।

सर्वार्थसिद्ध में एक ही स्थिति के कारण जघन्य और उत्कृष्ट नहीं होने से उसके जघन्य उत्कृष्ट स ब धी दूसरा, तीसरा एव ५, ६, ८, ९ ये ६ गम्मे नहीं होते हक्त अत: तीन गम्मों (१,४,७) से ही रिद्धि कही है ।

इस प्रकार यहाँ प्रश्न-१५ से २४ तक उदाहरण रूप में २४ उद्देशकों में से १० आगत स्थानों को गम्मे, रिद्धि, णाणत्ते आदि के स्पष्टीकरण सहित दर्शाये हक्त । कुल ३२१ आगत स्थान है, तो शेष ३११ आगत स्थानों को भी यथाशक्य स्वमति से समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

शतक-२५ : उद्देशक-१ से १२

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसके पूर्व २१ से २४ इन चार शतकों में एक-एक या अत्य त सीमित विषयों का निरूपण है । जब कि इस पच्चीसवें शतक में १२ उद्देशक विभागों के माध्यम से अनेकानेक महत्त्वपूर्ण तात्त्विक विषयों का विश्लेषण है । शतक के प्रार भ में एक स ग्रहणी गाथा द्वारा उद्देशकों के नाम-विषय निर्दिष्ट किये गये हक्त, वे इस प्रकार हक्त-

(१) लेश्या- प्रथम उद्देशक लेश्या के स क्षिप्त प्रश्नोत्तर से प्रार भ है । आगे इसमें जीव के १४ भेद से स ब धित जघन्य-उत्कृष्ट-२८ योगों की अल्पाबहुत्व है एव १५ योग के जघन्य-उत्कृष्ट के भेद से ३० योगों की अल्पाबहुत्व का निरूपण है ।

(२) द्रव्य- दूसरे उद्देशक में द्रव्यों एव पुद्गलों के ग्रहण निःसरण आदि तथा औदारिक शरीर, इन्द्रिय, योग आदि के निर्माण स ब धी निरूपण है।

(३) स स्थान- परिम डल आदि अजीव स स्थानों का, उनके कृत-युग्मादि का तथा विविध प्रकार से श्रेणियों का निरूपण है ।

(४) युग्म- जीव द्रव्य, षड्द्रव्य, जीव पर्याय में युग्म-जुम्मा, परमाणु आदि में युग्म, सक प-अक प पदार्थ, पुद्गल द्रव्य में अल्पाबहुत्व, षड्द्रव्य के मध्य प्रदेश इत्यादि विषय निरूपित है ।

(५) पर्यव- जीव-अजीव पज्जवा के लिये स क्षिप्त सूचन प्रज्ञापनापद-५ का है । उसके बाद काल की इकाइयों का विविध प्रकार से निरूपण है । निगोद और ६ भाव का स क्षिप्त सूचन है ।

(६) निर्ग्रंथ- ५-निय ठों का(६ निय ठों का) ३६ द्वारों से वर्णन है ।

(७) स यत- ५ चारित्र का ३६ द्वारों से वर्णन है । उसके बाद प्रतिसेवना, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाचारी एव तप के भेद-प्रभेदों का विस्तृत निरूपण है ।

(८-१२) इन पाँच उद्देशकों में जीव की उत्पत्ति, जीव की शीघ्र गति,

उत्पत्ति आदि में स्व कर्तृत्व वगैरह का समुच्चय निरूपण है । फिर ४ उद्देशों में क्रमशः भवी-अभवी और सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि इन चार विषयों का स क्षिप्त सूचन है ।

प्रश्न-२-३ : जीव के १४ भेद कौन से हक्त और उनके २८ योगों की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है तथा तीस प्रकार के योगों की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर- (१) २८ योग- स सारी जीवों के मौलिक १४ भेद यहाँ प्रथम उद्देशक में इस प्रकार कहे हक्त- (१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त (३-४) बादर एकेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त (५-६) बेइन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त (७-८) तेइन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त (९-१०) चौरेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त (११-१२) असन्नि प चेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त (१३-१४) सन्नी प चेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त ।

इन १४ जीवों के जघन्य योग और उत्कृष्ट योग ऐसे दो भेद करने से यहाँ योग के कुल-२८ बोल होते हक्त । उनकी अल्पाबहुत्व आगे चार्ट में देखें ।

(२) ३० प्रकार के योग- मन, वचन और काया तीन प्रकार के मौलिक योग के कुल १५ भेद होते हक्त- ४ मन के, ४ वचन के, ७ काया के । इन **प द्रह** योगों के दो बोल किये हक्त- जघन्य(न्यूनतम) योग और उत्कृष्ट योग । यथा- (१) जघन्य सत्यमन योग (२) उत्कृष्ट सत्यमन योग (३) जघन्य असत्यमन योग (४) उत्कृष्ट असत्यमन योग आदि मन योग के ८ भेद । इसीतरह वचन के भी (१) जघन्य सत्यवचन योग (२) उत्कृष्ट सत्यवचन योग (३) जघन्य असत्यवचन योग (४) उत्कृष्ट असत्यवचन योग आदि ८ भेद । इसी तरह काया के सात योग के जघन्य उत्कृष्ट से १४ भेद । यों कुल ८+८+१४=३० प्रकार के योग होते हक्त ।

योग के इन ३० में से कौन सा योग अर्थात् आत्म पुढषार्थ प्रयत्न, जीव की प्रवृत्त योग शक्ति, अल्प या अधिक है; उस तरतमता को इन ३० बोलों की अल्पाबहुत्व में बताया गया है । वह आगे चार्ट में देखें ।

जीव के १४ भेदों में योग की अल्पाबहुत्व :-

क्रम	जीव के भेद	योग	अल्पाबहुत्व
१	सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	१ अल्प
२	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	८ अस ख्य गुणा
३	बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	२ अस ख्य गुणा
४	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	९ अस ख्य गुणा
५	बेइन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	३ अस ख्य गुणा
६	बेइन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	१४ अस ख्य गुणा
७	तेइन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	४ अस ख्य गुणा
८	तेइन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	१५ अस ख्य गुणा
९	चौरेन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	५ अस ख्य गुणा
१०	चौरेन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	१६ अस ख्य गुणा
११	असन्नी प चेन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	६ अस ख्य गुणा
१२	असन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	१७ अस ख्य गुणा
१३	सन्नी प चेन्द्रिय अपर्याप्त का	जघन्य योग	७ अस ख्य गुणा
१४	सन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त का	जघन्य योग	१८ अस ख्य गुणा
१५	सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	१० अस ख्य गुणा
१६	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	१२ अस ख्य गुणा
१७	बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	११ अस ख्य गुणा
१८	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	१३ अस ख्य गुणा
१९	बेइन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	१९ अस ख्य गुणा
२०	बेइन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२४ अस ख्य गुणा
२१	तेइन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२० अस ख्य गुणा
२२	तेइन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२५ अस ख्य गुणा
२३	चौरेन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२१ अस ख्य गुणा
२४	चौरेन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२६ अस ख्य गुणा
२५	असन्नी प चेन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२२ अस ख्य गुणा
२६	असन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२७ अस ख्य गुणा
२७	सन्नी प चेन्द्रिय अपर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२३ अस ख्य गुणा
२८	सन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त का	उत्कृष्ट योग	२८ अस ख्य गुणा

प दर योगों की अल्पाबहुत्व :-

१	कार्मण काय योग का	जघन्य योग	१ सबसे अल्प
२	औदारिक मिश्र काय योग का	जघन्य योग	२ अस ख्य गुणा
३	वैक्रिय मिश्र काय योग का	जघन्य योग	३ अस ख्य गुणा
४	औदारिक काय योग का	जघन्य योग	४ अस ख्य गुणा
५	वैक्रिय काय योग का	जघन्य योग	५ अस ख्य गुणा
६	कार्मण काय योग का	उत्कृष्ट योग	६ अस ख्य गुणा
७	आहारक मिश्र काय योग का	जघन्य योग	७ अस ख्य गुणा
८	आहारक मिश्र काय योग का	उत्कृष्ट योग	८ अस ख्य गुणा
९	औदारिक मिश्र काय योग का	उत्कृष्ट योग	९ अस ख्य गुणा
१०	वैक्रिय मिश्र काय योग का	उत्कृष्ट योग	
११	व्यवहार मन का	जघन्य योग	१० अस ख्य गुणा
१२	आहारक काय योग का	जघन्य योग	११ अस ख्य गुणा
१३	सत्य मन का	जघन्य योग	
१४	असत्य मन का	जघन्य योग	
१५	मिश्र मन का	जघन्य योग	
१६	सत्य वचन का	जघन्य योग	१२ अस ख्य गुणा
१७	असत्य वचन का	जघन्य योग	१३ से १९ तक
१८	मिश्र वचन का	जघन्य योग	परस्पर सभी
१९	व्यवहार वचन का	जघन्य योग	समान है
२०	आहारक काय योग का	उत्कृष्ट योग	१३ अस ख्य गुणा
२१	सत्य मन का	उत्कृष्ट योग	
२२	असत्य मन का	उत्कृष्ट योग	
२३	मिश्र मन का	उत्कृष्ट योग	
२४	व्यवहार मन का	उत्कृष्ट योग	
२५	सत्य वचन का	उत्कृष्ट योग	१४ अस ख्य गुणा
२६	असत्य वचन का	उत्कृष्ट योग	२१ से ३० तक
२७	मिश्र वचन का	उत्कृष्ट योग	परस्पर सभी
२८	व्यवहार वचन का	उत्कृष्ट योग	एक समान है
२९	औदारिक काय योग का	उत्कृष्ट योग	
३०	वैक्रिय काय योग का	उत्कृष्ट योग	

सूचना– चार्ट में एक सरीखे न बर वाले(९-१२-१४) अपने अपने न बर वालों से परस्पर तुल्य हक्त ।

विशेष :– सामर्थ्य विशेष से ये योग अल्पाधिक होते हक्त । जीवों में अपर्याप्तों का सामर्थ्य कम होता है, पर्याप्तों का अधिक होता है । योगों में मन वचन का योग सामर्थ्य विशाल होता है, काया का योग सामर्थ्य कम होता है । मन वचन काया के व्यापार–प्रवृत्ति को योग कहते हक्त । उस योग की हीनाधिक सामर्थ्य शक्ति की यहाँ अल्पाबहुत्व की गई है । प्रथम समयोत्पन्न जीवों के भी आहारक–अनाहारक की अपेक्षा एव ऋजु–वक्र गति की अपेक्षा योग चौठाणवडिया अ तर हो सकता है और समान भी हो सकता है । दीर्घ स्थिति वालों का भी योग समान या चौठाण वडिया हो सकता है ।॥ उद्देशक–१ स पूर्ण ॥

प्रश्न–४ : जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य में कौन किसके काम आता है ?

उत्तर– अजीव द्रव्यों को ग्रहण करके जीव ५ शरीर ५ इन्द्रिय और तीन योग रूप में परिणमन करता है । तात्पर्य यह है कि अन त जीव द्रव्य है और अन त अजीव द्रव्य है । उसमें अजीव, जीव के काम आते हक्त किंतु जीव अजीव के कुछ काम नहीं आते हक्त ।

तैजस–कार्मण शरीर और मनयोग; इनमें स्थित पुद्‌गल ग्रहण किये जाते हक्त । शेष ३ शरीर ५ इन्द्रिय २ योग में स्थित–अस्थित दोनों तरह के पुद्‌गल ग्रहण होते हक्त ।

इन १३ बोलों में से लोका त में एकेन्द्रिय में पाये जाने वाले तीन शरीर एक औदारिक काय योग, स्पर्शेन्द्रिय ये पाँच में पुद्‌गल ग्रहण ३,४ या ५ दिशा से अथवा छहों दिशा से होते हक्त । शेष–८ में पुद्‌गल ग्रहण नियमा ६ दिशा से होते हक्त क्यों कि वे बोल लोक मध्य गत जीवों के ही होते हक्त ।

अ त में १४वाँ बोल श्वासोश्वास का है उसमें स्थित–अस्थित दोनों पुद्‌गल ग्रहण किये जाते हक्त । उसका वर्णन औदारिक काय योग के समान कहा है । अत: ३,४,५ एव ६ दिशा से पुद्‌गल ग्रहण होता है ॥ उद्देशक–२ स पूर्ण ॥

प्रश्न–५ : पुद्‌गल के ६ स स्थानों का क्या स्वरूप है और लोक में वे कितने होते हक्त ?

उत्तर– पुद्‌गल स्क धों के ६ स स्थान–आकार कहे गये हक्त, यथा– (१) परिम डल (२) वृत्त (३) चतुर स(चौकोन) (४) त्र्य स (५) आयत (६) अनिथ स्थ(मिश्र) । इसका स्वरूप क्रमश: इस प्रकार है–

(१) परिम डल स स्थान– यह चूडी के आकार का गोलाकार बीच में पोलार–स्पेश वाला होता है । चूडी आकार होने से इसमें अन्य स स्थानों की अपेक्षा प्रदेश ज्यादा लगते हक्त । जिससे इस स स्थान वाले पुद्‌गल लोक में कम होते हक्त ।

परिम डल स स्थान का पुद्‌गल द्रव्य स्वय प्रत्येक(विधानादेश से) तो कल्योज ही होता है । ओघादेश से अर्थात् समस्त परिम डल स स्थान वाले लोक में कम ज्यादा होते ही रहने से कभी कृतयुग्म होते हक्त, कभी तेओग, दावर और कल्योज स ख्या वाले भी लोक में हो सकते हक्त । यह द्रव्यापेक्षा कथन है ।

प्रदेशापेक्षा– परिम डल स स्थान दो प्रकार के होते हक्त– (१) प्रतर रूप (एक प्रदेशी जाडाई) (२) घन रूप(अनेक प्रदेशी जाडाई) । ये दोनों जघन्य(न्यूनतम) प्रदेशी भी होते हक्त और उत्कृष्ट अन तप्रदेशी भी होते हक्त । पुन: दोनों में एकी स ख्या वाले(ओज प्रदेशी) और बेकी स ख्या वाले (युग्म प्रदेशी) भी होते हक्त । ये दोनों भेद अन्य स स्थानों में होते हक्त किंतु परिम डल में एक मात्र युग्म(बेकी) स ख्या ही होती है । यथा– **प्रतर परिम डल** में जघन्य **२० प्रदेश** होते हक्त और **घन परिम डल(अनेकप्रतर)** में जघन्य **४० प्रदेश** होते हक्त । मध्यम में अनेक प्रदेश बेकी स ख्या वाले और उत्कृष्ट में अन त प्रदेश बेकी स ख्या वाले दोनों प्रकार के(प्रतर–घन) परिम डल स स्थान में होते हक्त।

अवगाहना– जघन्य प्रदेशी में तो अवगाहना उतने ही आकाश प्रदेशों की होती है । मध्यम प्रदेशी में अवगाहना भिन्न भिन्न होती है और उत्कृष्ट अन त प्रदेशों में अवगाहना अस ख्य आकाश प्रदेशों की होती है । विधानादेश से– प्रत्येक परिम डल की अपेक्षा अवगाहना कृतयुग्म प्रदेशों की या द्वावरयुग्म प्रदेशों की होती है । ओघादेश से–

सभी परिम डल तो पूरे लोक में हक्त और लोक कृतयुग्म आकाश प्रदेश वाला है अत: ओघादेश से परिम डल स स्थानों की अवगाहना कृतयुग्म आकाश प्रदेशों की है ।

स्थिति–वर्णादि– परिम डल स स्थानों की स्थिति एक समय से अस ख्य समय तक की कोई भी हो सकती है। वर्णादि भी एक गुण से लेकर अन तगुण तक कोई भी हो सकते हक्त । अत: विधानादेश– प्रत्येक की अपेक्षा चार में से कोई भी एक युग्म की स्थिति एव वर्णादि होते हक्त । ओघादेश– सभी की अपेक्षा चारों ही प्रकार के युग्म स्थिति और चारों ही प्रकार के युग्म वर्णादि परिम डल स स्थान में होते हक्त ।

(२) वृत्त स स्थान– परिम डल के सिवाय सभी प्रकार के गोल स स्थानों को वृत्त स स्थान कहा जाता है । इसमें झालर, थाली, च द्र तथा मोदक आदि के आकार समाविष्ट होते हक्त । परिम डल स स्थान की अपेक्षा यह स स्थान कम प्रदेशों से भी बनता होने से लोक में परिम डल स स्थान की अपेक्षा इस स स्थान वाले पुद्‌गल अधिक होते हक्त ।

विधानादेश से प्रत्येक वृत्त संस्थान स्वय कल्योज ही है और ओघादेश से समस्त वृत्त संस्थान लोक में कृतयुग्म आदि चारों में से कोई भी स ख्या वाले हो सकते हक्त क्यों कि लोक में वृत्त स स्थान वाले पुद्‌गल घटते–बढते रहते हक्त ।यह द्रव्यापेक्षा कथन है ।

प्रदेशापेक्षा– वृत्त स स्थान दो प्रकार के होते हक्त– (१) प्रतर रूप (२) घन रूप । ये दोनों जघन्य प्रदेशी और उत्कृष्ट प्रदेशी भी होते हक्त । पुन: दोनों में एकी स ख्या वाले वृत्त और बेकी स ख्या वाले वृत्त भी होते हक्त । यथा– प्रतर वृत्त में एकी प्रदेश स ख्या–५ और बेकी स ख्या–१२ होती है । घन वृत्त में एकी प्रदेश स ख्या–७ और बेकी प्रदेश स ख्या–३२ होती है । ये चारों न्यूनतम प्रदेश स ख्या होती है । मध्यम में अनेकों प्रदेश स ख्या चारों से होती है और उत्कृष्ट में अन त प्रदेश चारों प्रकार के वृत्त स स्थानों में– (१) प्रतर (२) घन (३) एकी स ख्या वाले (४) बेकी स ख्या वाले होते हक्त ।

अवगाहना– जघन्य प्रदेशी चारों प्रकार के वृत्त स स्थानों में उतने ही आकाश प्रदेश की अवगाहना जघन्य होती है । मध्यम प्रदेशी

वृत्तों में अवगाहना भिन्न–भिन्न होती है । और उत्कृष्ट अन त प्रदेशी वृत्त स स्थान में अवगाहना अस ख्य आकाश प्रदेशों की होती है । **विधानादेश** से अर्थात् प्रत्येक वृत्त स स्थान की अपेक्षा, कृतयुग्म आदि चारों में से कोई भी युग्म स ख्या वाले आकाश प्रदेशों की अवगाहना हो सकती है । **ओघादेश से** अर्थात् सर्व वृत्त स स्थान के स पूर्ण लोक में होने से कृत्ययुग्म आकाश प्रदेशों की लोकप्रमाण अवगाहना होती है ।

स्थिति–वर्णादि– परिम डल स स्थान के समान ही सभी स्थिति, सभी एक गुण आदि वर्णादि तथा दोनों में चारों ही युग्म स ख्या, विधाना देश–ओघादेश से परिम डल स स्थान के समान ही समझना ।

(३) चतुर स(चौकोन) स स्थान– यह बाजोट आदि के समान सम चतुष्कोण आकार वाला होता है । यह वृत्त स स्थान की अपेक्षा अल्प प्रदेशों से बनता होने से लोक में परिम डल और वृत्त स स्थान से इसकी स ख्या अधिक होती है ।

सभी चौकोन स स्थान खुद की अपेक्षा एक होने से विधानादेश से कल्योज ही होते हक्त और ओघादेश से सर्व चौकोन स स्थान वाले पुद्‌गल स्क ध लोक में घटते–बढते रहने से कभी कल्योज युग्म स ख्या वाले होते हक्त और कभी द्वापर, तेओग या कृतयुग्म स ख्या वाले हो सकते हक्त । यह द्रव्यापेक्षा कथन है ।

प्रदेशापेक्षा– वृत्त स स्थान के समान प्रतर, घन, ओज= एकी स ख्या वाले और युग्म= बेकी स ख्या वाले; यों चारों प्रकार के होते हक्त । यथा–प्रतर चौकोन में– जघन्य एकी प्रदेश स ख्या–९ और जघन्य बेकी प्रदेश स ख्या–४; घन चौकोन में– जघन्य एकी प्रदेश स ख्या–२७ और बेकी स ख्या–८ होती है । उत्कृष्ट प्रदेश स ख्या सभी में अन त होती है । मध्य में चारों प्रकार के चौकोन स स्थानों में अनेकों प्रदेश स ख्या होती है ।

अवगाहना– जघन्य प्रदेशी चारों चौकोन स स्थान उतने ही आकाश प्रदेश का अवगाहन करते हक्त । मध्यम प्रदेशी अनेकविध अवगाहना वाले होते हक्त और उत्कृष्ट अन तप्रदेशी चौकोन स स्थान में अस ख्य आकाश प्रदेश की अवगाहना होती है । **विधानादेश** से

प्रत्येक चौकोन स स्थान में कृतयुग्म आदि चारों में से कोई भी युग्म स ख्या वाले आकाश प्रदेशों की अवगाहना होती है और **ओघोदेश** से समस्त चौकोन स स्थान स पूर्ण लोक में होने से कृतयुग्म आकाश प्रदेशों की आखा लोक प्रमाण अवगाहना होती है ।

स्थिति-वर्णादि- पूर्व स स्थानों के समान सभी स्थिति, सभी एक गुण से अन तगुण तक के वर्णादि के लिये ओघादेश, विधानादेश से कृतयुग्म आदि चारों युग्म चौकोन स स्थान में होते हक्त ।

(४) त्र्य स(त्रिकोण) स स्थान- सि घोडा के आकार वाला यह त्रिकोण स स्थान होता है । यह स स्थान पूर्व के तीनों स स्थान की अपेक्षा कम प्रदेशों से भी बनता होने से लोक में इस स स्थान वाले पुद्‌गल अधिक होते हक्त । **विधानादेश से-** प्रत्येक त्रिकोण स स्थान स्वय एक होने से कल्योज युग्म है । **ओघादेश से-** समस्त त्रिकोण स स्थान वाले लोक में घट-वध होते रहने से चारों युग्म में से कोई भी युग्म रूप हो सकता है । यह द्रव्यापेक्षा कथन है ।

प्रदेशापेक्षा- यह स स्थान भी प्रतर, घन, ओज(एकी) और युग्म(बेकी) स ख्या वाले; यों चारों प्रकार के होते हक्त । यथा- प्रतर त्रिकोण में जघन्य एकी स ख्या-३, बेकी स ख्या-६ और घन त्रिकोण में जघन्य एकी स ख्या-३५, बेकी स ख्या-४ होती है । उत्कृष्ट प्रदेश स ख्या चारों में अन त होती है और मध्यम स ख्या सभी में अनेक प्रकार की होती है ।

अवगाहना- जघन्य प्रदेशी चारों त्रिकोण में अवगाहना उतने ही आकाश प्रदेश की होती है । मध्यम प्रदेशी में अनेक अवगाहनाएँ होती है और उत्कृष्ट अन तप्रदेशी चारों त्रिकोण में अस ख्य आकाश प्रदेश की अवगाहना होती है । **विधानादेश से-** प्रत्येक त्रिकोण में कृतयुग्म आदि चारों युग्म में से कोई भी एक युग्म स ख्या वाले आकाशप्रदेश की अवगाहना हो सकती है और **ओघादेश से-** समस्त लोक में त्रिकोण स स्थान वाले पुद्‌गल होने से कृतयुग्म प्रदेश की अवगाहना होती है ।

स्थिति-वर्णादि- सभी स्थितियों के लिये और एक गुण से अन तगुण तक के सभी वर्णादि के लिये ओघादेश तथा विधानादेश से

कृतयुग्म आदि चारों युग्म स ख्याएँ त्रिकोण स स्थान में होती है ।

(५) आयत स स्थान- यह लकडी के लम्बे पाटिये आदि जैसा आकार वाला होता है । इसके श्रेणी आयत, प्रतर आयत और घन आयत ऐसे तीन प्रकार होते हक्त । इन तीनों के एकी-बेकी जघन्य प्रदेश स ख्या इस प्रकार है- श्रेणी आयत एकी प्रदेश स ख्या-३, बेकी स ख्या-२; प्रतर आयत की एकी प्रदेश स ख्या-१५, बेकी स ख्या-६; घन आयत की एकी प्रदेश स ख्या-४५, बेकी स ख्या-१२ होती है । उत्कृष्ट प्रदेश स ख्या अन त और मध्यम प्रदेश स ख्या अनेक विध तीनों प्रकार के एकी-बेकी आयत स स्थान में होती है । अवगाहना, विधानादेश, ओघादेश, स्थिति एव वर्णादि का वर्णन पूर्व स स्थानवत् समझना । श्रेणी आयत का कथन इसमें विशेष है ।

(६) अणिथ स्थ स स्थान- उपर के पाँच स स्थानों के अतिरिक्त स स्थान; उन पाँच में समाविष्ट नहीं होने वाले अवशेष विविध आकार के पुद्‌गलों को समाविष्ट करने वाला यह छट्ठा स स्थान भेद कहा गया है । परमाणु में अन्य कोई स स्थान स भव नहीं होने से यही स स्थान माना गया है । अन्यत्र जीव के ६ स स्थानों में से कोई भी स स्थान सिद्धों में नहीं होने से उनमें भी अनिथ स्थ स स्थान कहा है । प्रस्तुत प्रकरण में पाँच स स्थानों स ब धी ही विविध विषयों का अर्थात् अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव जघन्य प्रदेश स ख्या एकी- बेकी आदि स ख्या का वर्णन है, अनिथ स्थ स स्थान स ब धी वैसा कुछ भी वर्णन यहाँ नहीं है । अतः परमाणु के सिवाय यह स स्थान बादर अन त प्रदेशी में ही होता है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

अल्पाबहुत्व- द्रव्य-प्रदेश से- (१) सब से थोडे परिम डल स स्थान के पुद्‌गल स्क ध है (२) उससे वृत्त स स्थान वाले स ख्यातगुणे (३) उससे चतुर स चोकोन स स्थान वाले स ख्यातगुणे (४) उससे त्रिकोण स स्थान वाले स ख्यातगुणे (५) उससे आयत स स्थान स ख्यातगुणे (६) उससे अनिथ स्थ स स्थान पुद्‌गल **द्रव्य** स ख्यातगुणे (७) उससे परिम डल स स्थान के प्रदेश अस ख्यगुणे (८) उससे वृत्त स स्थान के प्रदेश स ख्यातगुणे (९-११) उससे चौकोन, त्रिकोण और आयत स स्थान के प्रदेश क्रमशः स ख्यातगुणे (१२) उससे अनिथ स्थ स स्थान के प्रदेश अस ख्यगुणे ।

स क्षेप में छहों स स्थान वाले पुद्‌गल स्क ध स पूर्ण लोक में है और प्रत्येक अन त-अन त है और जहाँ एक स स्थान का स्क ध है वहाँ भी अन त-अन त अन्य चारों स स्थान वाले स्क ध है । क्यों कि सूक्ष्म अन त प्रदेशी स्क ध एक दूसरे के अवगाहित होने में बाधक नहीं होते हक्त । अनिथ स्थ, इसे स स्थान का छट्ठा भेद कहा है और द्रव्यप्रदेश की अल्पा बहुत्व में उसका कथन किया है । अन्य सभी वर्णन, भेद-प्रभेद, एकी-बेकी प्रदेश, प्रतर-घन, कृतयुग्म आदि प्रदेश, ओघादेश-विधानादेश वगैरह वर्णन यहाँ पाँच स स्थानों को लेकर ही किया गया है । तत्स ब धी कुछ वर्णन पुनः कोष्टक से दिया जाता है-

पाँच स स्थानों की प्रदेश स ख्या आदि-

स स्थान	स स्थानभेद	प्रदेशभेद	प्रदेश स ख्या		अवगाहना	
			ज.	उ.	ज.	उ.
वृत्त	प्रतर वृत्त	ओज प्रदेशी	५	अन त	५	अस ख्य
वृत्त	प्रतर वृत्त	युग्म प्रदेशी	१२	अन त	१२	अस ख्य
वृत्त	घन वृत्त	ओज प्रदेशी	७	अन त	७	अस ख्य
वृत्त	घन वृत्त	युग्म प्रदेशी	३२	अन त	३२	अस ख्य
त्र्य स	प्रतर त्र्य स	ओज प्रदेशी	३	अन त	३	अस ख्य
त्र्य स	प्रतर त्र्य स	युग्म प्रदेशी	६	अन त	६	अस ख्य
त्र्य स	घन त्र्य स	ओज प्रदेशी	३५	अन त	३५	अस ख्य
त्र्य स	घन त्र्य स	युग्म प्रदेशी	४	अन त	४	अस ख्य
चतुर स	प्रतर चतुर स	ओज प्रदेशी	९	अन त	९	अस ख्य
चतुर स	प्रतर चतुर स	युग्म प्रदेशी	४	अन त	४	अस ख्य
चतुर स	घन चतुर स	ओज प्रदेशी	२७	अन त	२७	अस ख्य
चतुर स	घन चतुर स	युग्म प्रदेशी	८	अन त	८	अस ख्य
आयत	श्रेणी आयत	ओज प्रदेशी	३	अन त	३	अस ख्य
आयत	श्रेणी आयत	युग्म प्रदेशी	२	अन त	२	अस ख्य
आयत	प्रतर आयत	ओज प्रदेशी	१५	अन त	१५	अस ख्य
आयत	प्रतर आयत	युग्म प्रदेशी	६	अन त	६	अस ख्य
आयत	घन आयत	ओज प्रदेशी	४५	अन न्त	४५	अस ख्य
आयत	घन आयत	युग्म प्रदेशी	१२	अन न्त	१२	अस ख्य
परिम डल	प्रतर परिम डल	युग्म प्रदेशी	२०	अन न्त	२०	अस ख्य
परिम डल	घन परिम डल	युग्म प्रदेशी	४०	अन न्त	४०	अस ख्य

प्रश्न-६ : लोक और अलोक में श्रेणियाँ कितनी है और किस प्रकार है ?

उत्तर- श्रेणियाँ- आकाश की श्रेणियाँ अन त है । ये एक प्रदेशी चौडी एव अन तप्रदेशी ल बी लोकालोक प्रमाण स लग्न होती है । अपेक्षा से इसके लोकाकाश की श्रेणियाँ और अलोकाकाश की श्रेणियाँ ऐसे दो भेद विवक्षित किये जाते हक्त ।

लोक अस ख्य प्रदेश लम्बा चौडा और ऊँचा नीचा है । अतः इस अपेक्षा से वे श्रेणियाँ अस ख्य प्रदेशी है और लोक में वे श्रेणिया भी अस ख्य ही है अन त नहीं है । लोक में चारों दिशाओं में तिरछे कोने भी हक्त यथा- पाँचवें देवलोक के पास, इस कारण और इस भेद विवक्षा से लोक में कुछ स ख्यात प्रदेशी श्रेणियाँ होती है शेष सभी अस ख्य प्रदेशी होती है । अलोक में भी इसी कारण स ख्यात अस ख्यात प्रदेशी कुछ श्रेणियाँ लोक के बाहर निकट में होती है । उनके अतिरिक्त सभी अन तप्रदेशी श्रेणियाँ होती है ।

लोक उपर-नीचे समतल है । चारों दिशाओं में वृद्धि होने के कारण विषम है । उस विषमता के कारण ही अस ख्य प्रदेशी ल बे चौडे लोक में स ख्यात प्रदेशी श्रेणियाँ बनती है और उसी कारण से अन त प्रदेशी अलोक में अस ख्यात और स ख्यात प्रदेशी श्रेणियाँ बनती है। वे उपर से नीचे की अपेक्षा बनती है ।

लोक की सभी श्रेणियाँ सादि सा त है अर्थात् दोनों दिशाओं में उनका अ त है । अलोक में लोक के कारण सादि अन त है और लोक के अतिरिक्त स्थान वाली अनादि अन त है ।

श्रेणीयुग्म- समुच्चय श्रेणियाँ, लोक की श्रेणियाँ और अलोक की श्रेणियाँ तीनों कृतयुग्म है । उनके प्रदेश समुच्चय में कृतयुग्म है, लोक में पूर्व-पश्चिम कृतयुग्म या दावर युग्म है, उपर नीचे कृतयुग्म है । अलोक में पूर्व-पश्चिम की अपेक्षा चारों युग्म प्रदेश हो सकते हक्त, उपर नीचे की अपेक्षा तीन युग्म हो सकते हक्त, कल्योज युग्म नहीं है।

प्रश्न-७ : जीव और अजीव की गति की अपेक्षा कितनी श्रेणियाँ कही गई है ?

उत्तर- श्रेणियाँ सात प्रकार की होती है- (१) सीधी (२) एक मोड वाली (३) दो मोड वाली (४) एक तरफ त्रस नाडी के बाहर जाने वाली (५) दोनों तरफ त्रस नाडी के बाहर जाने वाली (६) चक्रवाल (७) अर्धचक्रवाल । ये जीव और पुद्‍गल की गति की अपेक्षा कही गई है । यों स्वत: श्रेणियाँ सभी सीधी ही है ।

जीव प्रार भ की पाँच गति श्रेणी से गमन करते हक्त और पुद्‍गल सातों श्रेणि गति से गमन करते हक्त । इस प्रकार जीव और अजीव अनुश्रेणी से ही गमन करते हक्त । इन श्रेणियों के अतिरिक्त विश्रेणि से गति नहीं करते हक्त । जिस प्रकार वायुयान के जाने के मार्ग आकाश में निश्चित होते हक्त, उन्हीं मार्गों से वे जाते आते हक्त । वैसे ही जीव पुद्‍गल के गमन के मार्ग रूप ये श्रेणी गतियाँ होती है । अमार्ग रूप विश्रेणि गतियाँ नहीं होती है । ॥ उद्देशक-३ स पूर्ण ॥

प्रश्न-८ : कृत युग्म आदि का निरूपण किस-किस प्रकार से है ?

उत्तर- उद्देशक-४ में कृतयुग्म आदि का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है । यथा- (१) षट्द्रव्यों में प्रदेशों में (२) षट्द्रव्यों की अवगाहना में (३) जीवद्रव्य में (४) जीव द्रव्य की अवगाढता में (५) जीव द्रव्य की स्थिति में (६) जीव द्रव्य के वर्णादि पर्यायों में एव (७) ज्ञानादि पर्यायों में ।

(१) धर्मास्ति-अधर्मास्ति एव आकाशास्तिकाय तीनों द्रव्य एक-एक होने से कल्योजयुग्म है । जीवास्ति और काल द्रव्य अन त होने से कृतयुग्म है । पुद्‍गलास्तिकाय **द्रव्य** अन त होते हुए भी उसके स्क धों की स ख्या में घट-वध होती ही रहती है अत: वह चारों ही युग्म में से कोई भी एक युग्म हो सकता है । **प्रदेशापेक्षया**- प्रदेश सभी द्रव्यों के निश्चित हक्त पुद्‍गलास्तिकाय के भी प्रदेश-परमाणु तो निश्चित स ख्या वाले हक्त । अत: छ ही द्रव्यों के प्रदेश कृतयुग्म स ख्यावाले निश्चित रूप से अस ख्य या अन त हक्त ।

(२) छहों द्रव्यों की अवगाहना कृतयुग्म प्रदेश की है । क्यों कि सभी के अवगाहन प्रदेश निश्चत है । जिसमें आकाशास्तिकाय के अन त और शेष पाँचों के अस ख्य अवगाहन प्रदेश हक्त । पाँचों में भी

काल ढाईद्वीप प्रमाण है और शेष चार लोकप्रमाण है ।

(३) जीवद्रव्य-प्रदेश- एक जीव कल्योज युग्म होता है और अनेक जीव स्वत त्र अपेक्षा में सभी स्वय कल्योज युग्म होते है । सम्मिलित अपेक्षा से सभी जीव कृतयुग्म स ख्या वाले हक्त । स्वत त्र अपेक्षा के लिये शास्त्र में **विधानादेश** एव सम्मिलित अपेक्षा के लिये **ओघादेश** शब्द का प्रयोग किया गया है ।

द्रव्य- चौवीस द डक में भी एक जीव कल्योज युग्म होता है । अनेक जीव सम्मिलित अपेक्षा से चारों में से कोई भी एक युग्म हो सकता है और स्वत त्र अपेक्षा में अनेक सभी स्वय कल्योजयुग्म है।

प्रदेश- जीव के प्रदेश निश्चित रूप से कृतयुग्म होने से एक-अनेक सम्मिलित या स्वत त्र पृच्छा में भी कृतयुग्मप्रदेश ही होते हक्त । उनके शरीर के प्रदेश चारों में से कोई भी कृतयुग्म वाले हो सकते हक्त । यह समुच्चय जीव का कथन है । २४ द डक में भी इसी प्रकार समझना । सिद्धों में शरीर का कथन नहीं है ।

(४) जीव अवगाहना- स सारी जीव की अवगाहना शरीरापेक्षया होती है अत: एक जीव में अवगाहना के प्रदेश चारों में से कोई भी कृतयुग्म हो सकते है । अनेक जीव में विधानादेश-स्वत त्र अपेक्षा में चारों ही युग्म होते हक्त और सम्मिलित अपेक्षा में(ओघादेश से) सभी जीव पूरे लोक को अवगाहन किये होने से मात्र कृतयुग्म अवगाहन प्रदेश है ।

२४ द डक में से १९ द डक में अनेक जीव में ओघादेश से चारों में से कोई एक युग्म और विधानादेश से चारों युग्म होते हक्त । एकेन्द्रिय स पूर्ण लोक में होने से अनेक जीव में मात्र कृतयुग्म प्रदेश अवगाहन है और सिद्धों में भी अनेक जीवों का अवगाहन क्षेत्र सिद्ध-शिला प्रमाण कृतयुग्म स ख्या के आकाशप्रदेश हक्त ।

(५) जीव स्थिति- समुच्चय जीव में एक-अनेक सभी जीव शाश्वत होने से कृतयुग्म समय की स्थिति होती है । २४ द डक में एक जीव कोई भी एक युग्म समय की स्थिति वाला होता है । अनेक जीव में विधानादेश की अपेक्षा(स्वत त्र अपेक्षा से) चारों युग्म समय की

स्थिति वाले होते हक्त और सम्मिलित अपेक्षा से(ओघादेश से) चारों युग्म में से कोई एक युग्म समय की स्थिति होती है ।

(६) वर्णादि– जीव तो अरूपी है । शरीर की अपेक्षा वर्णादि समझना । अतः चारों में से कोई एक युग्म काले आदि वर्ण का होता है । ऐसा ही २४ द डक का समझना । सिद्ध में वर्णादि नहीं होते हक्त । अनेक जीव में ओघादेश से चारों में से एक युग्म कालागुण वर्णादि का होता है । विभागादेश से चारों ही युग्म होते हक्त । ऐसा ही २४ द डक में शरीर की अपेक्षा समझना । जीव की अपेक्षा वर्णादि नहीं होते हक्त ।

(७) मति ज्ञानादि– मति ज्ञान आदि के अन त पर्यव है, उन पर्यव की अपेक्षा युग्म का कथन है । एक जीव की अपेक्षा चारों युग्म में से एक युग्म होता है और अनेक जीव में ओघादेश से चारों में से एक युग्म होता है । विभागादेश से चारों ही होते हक्त । इसी प्रकार जिनके जो ज्ञान है वह समझ लेना । जीव, मनुष्य एव सिद्ध तीनों में केवल ज्ञान केवलदर्शन के पर्यव कृतयुग्म ही होते हक्त । तीन अज्ञान एव तीन दर्शन मतिज्ञान के समान समझना ।

प्रश्न–९ : पुद्‌गल स ब धी युग्मों का कथन किस प्रकार है ?

उत्तर– इसी चौथे उद्देशक में परमाणु से लेकर अन त प्रदेशी स्क धों के द्रव्य से प्रदेश से, अवगाहना से, स्थिति एव वर्णादि से युग्मों का कथन किया गया है, वह इस प्रकार है–

द्रव्य से– एक परमाणु यावत् एक अन तप्रदेशी स्क ध द्रव्य से कल्योज युग्म है । अनेक परमाणु आदि ओघादेश(सम्मिलित अपेक्षा) से कोई एक युग्म होता है और विधानादेश(स्वत त्र अपेक्षा) चारों ही युग्म स ख्या वाले होते हक्त ।

प्रदेश से– एक परमाणु, एक पाँच प्रदेशी, एक ९ प्रदेशी, एक १३ प्रदेशी आदि ये कल्योज प्रदेशी है । एक–एक २ प्रदेशी, ६ प्रदेशी, १० प्रदेशी,१४ प्रदेशी आदि दावर युग्मप्रदेशी है। ३,७,११,१५ प्रदेशी एक–एक स्क ध तेओगयुग्म है और ४,८,१२,१६ प्रदेशी आदि एक–एक स्क ध कडजुम्म युग्म है । आगे स ख्यात अस ख्यात अन त प्रदेशी एक–एक युग्म में चारों में से कोई एक युग्म यथायोग्य होता है ।

बहुवचन में ओघादेश(सम्मिलित अपेक्षा) परमाणु से अन त प्रदेशी तक सभी में चार में से कोई एक युग्म होता है और विधाना–पेक्षा(स्वत त्र अपेक्षा) प्रदेश स ख्या के अनुसार उपर बताया वैसे ही कोई कल्योज, कोई दावर, कोई तेओग कोई कडजुम्म प्रदेशी होते हक्त । विभागादेश से स ख्यात, अस ख्यात, अन त प्रदेशी में चारों युग्म बहुवचन में होते हक्त ।

अवगाहना से– अपनी प्रदेश स ख्या से अवगाहन स ख्या कम हो सकती है अधिक नहीं हो सकती है । अतः परमाणु में कल्योज, द्विप्रदेशी में दावरयुग्म बढा, तीन प्रदेशी में त्र्योजयुग्म बढा, चार प्रदेशी में कृतयुग्म बढा, फिर अस ख्य प्रदेशावगाढ तक चारों युग्म होते हक्त । अर्थात् एक वचन की पृच्छा में कोई एक होता है बहुवचन की पृच्छा में ओघादेश से कोई एक होता है विभागादेश से चारों होते हक्त । तीन प्रदेशी में तीनों या तीनों में से एक, दो प्रदेशी में दोनों में से एक युग्म होता है ।

स्थिति– परमाणु से अन त प्रदेशी तक एक वचन में चारों युग्म में से कोई भी युग्म की स्थिति हो सकती है बहुवचन में ओघादेश में कोई एक युग्म की स्थिति होती है और विभागादेश से चारों युग्म की स्थिति वाले परमाणु आदि होते हक्त ।

वर्णादि– स्थिति के समान ही वर्णादि १६ बोल समझना । किन्तु परमाणु आदि जिसमें जो वर्णादि होवे उसकी अपेक्षा जानना । कर्कशादि चार स्पर्श अन त प्रदेशी में ही होते हक्त । कर्कश स्पर्श पर्यव भी एक वचन में चारों में से एक युग्म वाले होते हक्त । बहुवचन में ओघादेश से चारों युग्म में से एक युग्म होता है विभागादेश से चारों ही होते हक्त ।

प्रश्न–१० : जीव और पुद्‌गल स ब धी सक प–अक प का निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर– जीव में– वाटे वहेता जीव और प्रथम समयवर्ती सिद्ध ये सर्व सक प होते हक्त । शैलेशी अणगार और अप्रथम समय के सिद्ध अक प होते हक्त । शेष सभी स सारी और अशैलेशी अणगार ये देशक प या सर्वक प दोनों होते हक्त ।

२४ द डक के जीव विग्रहगति में सर्व सक प एव अन्य समय में देश सक प होते हक्त ।

पुद्गलों में– परमाणु से अन तप्रदेशी तक सभी सक प–अक प दोनों होते हक्त । एक वचन की अपेक्षा इनकी स्थिति एव अ तर होता है और बहुवचन में सभी स्क ध सक प–अक प शाश्वत मिलते हक्त । अत: उनकी स्थिति या अ तर नहीं होता है । एक वचन में सक प की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग । निष्क प की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यातकाल की होती है ।

अ तर– सक प–अक प एक वचन की अपेक्षा अ तर दो प्रकार का होता है– स्वस्थान और पर स्थान । **स्वस्थान का अर्थ है परमाणु, परमाणु रूप रहते हुए सक प–अक प बने और परस्थान का अर्थ है– परमाणु, द्विप्रदेशी आदि में जाकर आवे । स्वस्थान की** अपेक्षा परमाणु के सक प की स्थिति ही अक प का अ तर है और अक प की स्थिति सक प का अ तर है । परस्थान की अपेक्षा सक प–अक प दोनों का अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्यकाल का है अर्थात् परमाणु उत्कृष्ट अस ख्यकाल के बाद अवश्य पुन: परमाणु बनता है । द्वि–प्रदेशी आदि का भी अ तर स्वस्थान–परस्थान उक्त प्रकार से ही समझना पर तु उसमें परस्थान का उत्कृष्ट अ तर अन त काल का होता है अर्थात् ये पुन: द्विप्रदेशी आदि बने उसके बीच अन तकाल बीत सकता है ।

प्रश्न–११ : परमाणु से अन तप्रदेशी तक के पुद्गलों की, उनके सक प–अक प की तथा देशक प–सर्वक प की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर– पुद्गलों की प्रश्नगत तीनों प्रकार की अल्पाबहुत्व द्रव्य से, प्रदेश से, अवगाहना से, स्थिति से एव वर्णादि से यों विभिन्न प्रकार से अल्पाबहुत्व यहाँ इस उद्देशक में कही गई है, वे इस प्रकार हक्त–

(१) परमाणु आदि की द्रव्यप्रदेश से अल्पाबहुत्व– (१) सबसे कम अन तप्रदेशी स्क ध द्रव्य (२) उससे दसप्रदेशी स्क ध अन तगुणे (३) उससे नौप्रदेशी स्क ध अधिक(विशेषाधिक) होते हक्त । (४–१०) उससे

आठ, सात, छ, पाँच, चार, तीन, दो प्रदेशी स्क ध क्रमश: अधिक–अधिक होते हक्त । (११) उससे परमाणु अधिक होते हक्त । (१२) उससे स ख्यात प्रदेशी स ख्यात गुणे (१३) उससे अस ख्य प्रदेशी स्क ध द्रव्य अस ख्यातगुणे होते हक्त ।

प्रदेश की अपेक्षा– (१) सबसे कम अन तप्रदेशी स्क धों के प्रदेश (२) उससे परमाणु अप्रदेश रूप से अन तगुणा (३) उससे द्विप्रदेशी के प्रदेश अधिक (४–११) यों क्रमश: तीन, चार, पाँच, छ, सात, आठ, नौ, दस प्रदेशी के प्रदेश अधिक–अधिक होते हक्त । (१२) उससे स ख्यात प्रदेशी के प्रदेश स ख्यात गुणे (१३) उससे अस ख्यप्रदेशी के प्रदेश अस ख्यगुणे ।

द्रव्यप्रदेश की सम्मिलित– (१) सबसे कम अन तप्रदेशी द्रव्य (२) उसी के प्रदेश अन तगुणे (३) उससे दसप्रदेशी द्रव्य अन तगुणे (४–११) उससे क्रमश: नौ, आठ, सात, छ, पाँच, चार, तीन, दो प्रदेशी द्रव्य अधिक–अधिक । (१२) उससे परमाणु द्रव्य और अप्रदेश से अधिक (१३) उससे द्वि प्रदेशी के प्रदेश अधिक (१४–२१) उससे तीन, चार, पाँच, छ, सात, आठ, नौ, दस प्रदेशी के प्रदेश अधिक–अधिक (२२) उससे स ख्यातप्रदेशी के स्क ध द्रव्य स ख्यात गुणा (२३) उससे उसी के प्रदेश स ख्यात गुणे (२) उससे अस ख्य प्रदेशी स्क ध द्रव्य अस ख्यगुणे (२५) उससे उसी के प्रदेश अस ख्यगुणे ।

अवगाढ आदि की अल्पाबहुत्व– एक प्रदेशावगाढ पुद्गल कम होते हक्त, उससे स ख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल स ख्यातगुणे और उससे अस ख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल अस ख्य गुणे होते हक्त । यही क्रम प्रदेश में जानना ।

दस प्रदेशावगाढ पुद्गल से एक प्रदेशावगाढ पुद्गल तक क्रमश: विशेषाधिक होते हक्त । प्रदेश में इससे विपरीत क्रम समझना । इसी प्रकार **स्थिति की** सम्पूर्ण अल्पाबहुत्व जानना ।

वर्ण–ग ध रस के एक गुण आदि की अल्पबहुत्व परमाणु से अन त प्रदेशी तक की अल्पबहुत्व के समान जानना ।

कर्कश स्पर्श एक से १० गुण तक १० बोल क्रमश: विशेषाधिक

है आगे अन तगुण तक क्रमशः अधिक–अधिक, अवगाहना के समान है किन्तु अन तगुण का बोल अधिक है तथा एक गुण कर्कश से स ख्यात गुण कर्कश पुद्गल प्रदेश से अस ख्य गुणा कहना। स ख्यातगुण कर्कश पुद्गलों से उनके प्रदेश स ख्यात गुण ही कहना । कर्कश के समान मृदु, गुरू, लघु, स्पर्श भी जानना । शेष चार स्पर्श वर्ण के समान होते हक्त ।

सक प–अक प पुद्गलों की अल्पाबहुत्व– परमाणु से अस ख्यप्रदेशी तक सक प अल्प होते हक्त निष्क प अस ख्यगुणे होते हक्त । अन त प्रदेशी में निष्क प अल्प होते हक्त सक प अन तगुणे होते हक्त । (१) अन त प्रदेशी स्क ध निष्क प अल्प होते हक्त उससे (२) वे ही सक प अन तगुणे (३) परमाणु सक प अन तगुणे (४) स ख्यात प्रदेशी सक प अस ख्यगुणे (५) अस ख्यात प्रदेशी सक प अस ख्यगुणे (६) परमाणु निष्क प अस ख्य गुणे (७) स ख्यात प्रदेशी निष्क प स ख्यातगुणे (८) अस ख्यात प्रदेशी निष्क प अस ख्यगुणे ।

प्रदेश की अपेक्षा भी यही क्रम है परमाणु के अप्रदेश कहना एव स ख्यात प्रदेशी के निष्क प अस ख्यात गुणे कहना ।

द्रव्य–प्रदेश की सम्मिलित अल्पाबहुत्व– (१) अन तप्रदेशी स्क ध निष्क प सबसे अल्प है (२) उनके प्रदेश अन त गुणे (३) वे ही सक प अन तगुणे (४) उनके प्रदेश अन तगुणे (५) परमाणु सक प अन तगुणे (६) स ख्यात प्रदेशी सक प अस ख्य गुणे (७) वे ही प्रदेश से स ख्यातगुणे (८) अस ख्यात प्रदेशी सक प अस ख्यगुणे (९) उन्हीं के प्रदेश अस ख्य गुणे (१०) परमाणु निष्क प अस ख्यगुणे (११) स ख्यात प्रदेशी निष्क प अस ख्यगुणे (१२) उन्हीं के प्रदेश संख्यातगुणे (१३) अस ख्यात प्रदेशी निष्क प अस ख्यगुणे (१४) उनके ही प्रदेश अस ख्यगुणे ।

देश सर्व सक प– परमाणु सर्व–सक प होते हक्त । द्वि प्रदेशी आदि देश और सर्व दोनों सक प होते हक्त । बहुवचन में भी ऐसे ही समझना । द्विप्रदेशी आदि के देश और सर्व सक प की कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिका के अस ख्यातवें भाग की होती है । शेष कायस्थिति परमाणु आदि की सक प निष्क प के समान है । बहुवचन

में देश सर्व सभी की कायस्थिति सर्वद्धा काल की होती है । अ तर एव अल्पाबहुत्व सक प निष्क प के समान है । जिसकी तालिका इस प्रकार है–

पुद्गल	कायस्थिति उत्कृष्ट	स्वस्थान अ तर	परस्थान अ तर
सर्वसक प परमाणु	आवलिका के अस ख्यातवें भाग	अस ख्यकाल	अस ख्यकाल
सर्वसक प द्विप्रदेशी आदि	आवलिका के अस ख्यातवें भाग	अस ख्यकाल	अन त काल
देशसक प द्विप्रदेशी आदि	आवलिका के अस ख्यातवें भाग	अस ख्यकाल	अन त काल
निष्क प परमाणु	अस ख्यकाल	आवलिका के अस ख्यातवें भाग	अस ख्य काल
निष्क प द्विप्रदेशी आदि	अस ख्यकाल	आवलिका के अस ख्यातवें भाग	अस ख्य काल

अल्पाबहुत्व– (१) सर्व सक प परमाणु अल्प है, उससे निष्क प परमाणु अस ख्य गुणा (२) सर्व सक प द्विप्रदेशी अल्प है, उससे देश सक प अस ख्यगुणे, उससे निष्क प अस ख्यगुणे । अस ख्य प्रदेशी तक इसी प्रकार है । (३) अन प्रदेशी में सर्व सक प अल्प है, उससे निष्क प अन तगुणा उससे देश सक प अन तगुणा है ।

नोट– (१) द्वि प्रदेशी के समान ही अन त प्रदेशी तक स्थिति, अ तर है (२) जघन्य सभी की कायस्थिति और अ तर एक समय का ही होता है ।

सम्मिलित २० बोल पुद्गल की अल्पाबहुत्व– परमाणु के सक प, अक प दो भेद हक्त । स ख्यात प्रदेशी के सर्व सक प, देश सक प और निष्क प ये तीन और इनके प्रदेश के तीन यों ६ भेद हक्त । ऐसे ही ६–६ भेद अस ख्य और अन त प्रदेशी के हक्त । ये कुल ६X३+२=२० बोल ।

(१ से ६) अन त प्रदेशी के हक्त । उनका क्रम– सर्व सक प द्रव्य, प्रदेश, फिर निष्क प द्रव्य, प्रदेश और फिर देश सक प द्रव्य, प्रदेश, ये सभी क्रमशः अन तगुणे है । (७) अस ख्यात प्रदेशी सर्व सक प अन त गुणा (८) उन्हीं के प्रदेश अस ख्यगुणा (९) स ख्यात प्रदेशी सर्व सक प अन तगुणा (१०) उन्हीं के प्रदेश स ख्यातगुणा (११) परमाणु सर्व सक प

अस ख्यगुणा (१२) स ख्यात प्रदेशी देश सक प अस ख्यगुणा (१३) उन्हीं के प्रदेश स ख्यातगुणा (१४) अस ख्यात प्रदेशी देश सक प अस ख्यगुणा (१५) उन्हीं के प्रदेश अस ख्यगुणा (१६) परमाणु निष्क प अस ख्यगुणा (१७) स ख्यात प्रदेशी निष्क प स ख्यातगुणा (१८) उनके प्रदेश स ख्यातगुणा (१९) अस ख्यात प्रदेशी निष्क प अस ख्यगुणा (२०) उन्हीं के प्रदेश अस ख्यगुणा । ॥ उद्देशक-४ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१२ : काल की इकाइयों के स ब ध में एव निगोद के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- अस ख्य समयों की आवलिका होती है यावत् सागरोपम भी असंख्य समयों का होता है । पुद्गल परावर्तन में अन त समय होते हक्त । स ख्यात वर्षों में आवलिका आदि स ख्यात होती है । पल्योपम आदि अस ख्यात वर्षों में अस ख्य आवलिका आदि होते हक्त । पुद्गल परावर्तन में आवलिकादि अन त होते हक्त ।

समय से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक ४६ भेद हक्त, उत्कृष्ट १९४ अ क होते हक्त । यहाँ तक गणना स ख्या है, आगे उपमा स ख्या है ।

भूतकाल और भविष्यकाल अन त होने से बराबर होते हक्त, किन्तु वर्तमान का एक समय अलग होता है । उसे भविष्य काल में समाविष्ट करने से भविष्य काल समयाधिक कहा जाता है । सर्वद्धा काल भूतकाल से दुगुना साधिक होता है ।

निगोद- निगोद शरीर और निगोद के जीव यों दो प्रकार है । पुनः सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद यों दो भेद हक्त । सूक्ष्म निगोद चक्षु ग्राह्य नहीं होते और बादर निगोद के अस ख्य शरीर मिलने पर चक्षु ग्राह्य होते हक्त । इनका विशेष वर्णन, स्थिति आदि जीवाभिगम सूत्र में है ।॥ उद्देशक-५ स पूर्ण ॥

प्रश्न-१३ : 'निय ठा' के कितने प्रकार है और उनके भेद-प्रभेद किस प्रकार हक्त ?

उत्तर- ''निय ठा-निर्ग्रंथ'' यह शब्द श्रमण, स यमी, मुनि एव जैन साधु का पर्यायवाची शब्द है । प्रस्तुत उद्देशक-६ में निर्ग्रंथ-श्रमणों के गुणों एव योग्यतानुसार सापेक्ष ६ विभाग दर्शाये है अर्थात् निय ठा

के ६ भेदों में समस्त स यमी-श्रमणों का, गुणस्थान ६ से १४ तक का समावेश किया गया है । वे ६ नाम इस प्रकार है- (१) पुलाक (२) बकुश (३) प्रतिसेवना कुशील (४) कषाय कुशील (५) निर्ग्रंथ (६) स्नातक ।

इन छहों में से प्रत्येक के ५-५ प्रकार कहे गये हक्त, यथा- (१) पुलाक के ५ प्रकार- ज्ञान पुलाक, दर्शन पुलाक, चारित्र पुलाक, लि ग पुलाक, यथासूक्ष्म पुलाक ।

(२) बकुश के पाँच प्रकार- आभोग बकुश, अनाभोग बकुश, स वुड बकुश अस वुड बकुश, यथासूक्ष्म बकुश ।

(३) प्रतिसेवना कुशील के पाँच प्रकार- ज्ञान प्रतिसेवना कुशील, दर्शन प्रतिसेवना कुशील, चारित्र प्रतिसेवना कुशील, लि ग प्रतिसेवना कुशील और यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील ।

(४) कषाय कुशील के पाँच प्रकार- ज्ञान कषाय कुशील, दर्शन कषाय कुशील, चारित्र कषाय कुशील, लि ग कषाय कुशील, यथासूक्ष्म कषाय कुशील ।

(५) निर्ग्रंथ के पाँच प्रकार- प्रथम समय निर्ग्रंथ, अप्रथम समय निर्ग्रंथ, चरम समय निर्ग्रंथ, अचरम समय निर्ग्रंथ, यथासूक्ष्म निर्ग्रंथ ।

(६) स्नातक के ५ गुणों का कथन है- अछवि, असबले, अकम्म से, अपरिश्रावी, प्रतिपूर्ण ज्ञान-दर्शन के धारक ।

प्रश्न-१४ : पुलाक निर्ग्रंथ का स्वरूप छत्तीस द्वारों से किस प्रकार निरूपित किया गया है ?

उत्तर- (१) प्रज्ञापना द्वार- स यम के ग्रहण करने के प्रार भ में कषाय कुशील निय ठा प्राप्त होता है । उसके कुछ स यम पर्याय की वृद्धि होने पर और ९ पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद किसी साधक को पुलाक लब्धि (उत्पन्न) प्राप्त होती है । वह जब किसी आवश्यक प्रस ग पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र स ब धी प्रयोजन से उस लब्धि का प्रयोग करता है तब उस लब्धि प्रयोग अवस्था में अ तर्मुहूर्त के लिये जो निय ठा रहता है वह **पुलाक निय ठा** कहा जाता है ।

वह पुलाक निर्ग्रंथ कभी भी साधु आदि पर आई हुई आपत्ति को दूर करने के लिये चक्रवर्ती राजा आदि को भी भयभीत कर सकता है, द ड दे सकता है और उस आपत्ति का निवारण कर सकता है । ऐसा करने में उसके स यम में अवश्य ही मूलगुण प्रतिसेवना(दोष) या कभी उत्तरगुण प्रतिसेवना होती है । इस निय ठे का सम्पूर्ण काल अ तर्मुहूर्त का है । अतः लब्धिप्रयोग के कार्य से अ तर्मुहूर्त में ही निवृत्त हो जाता है और आलोचना प्रायश्चित कर शुद्ध स यम दशा में अर्थात् कुशील निय ठा में आ जाता है । यदि अ तर्मुहूर्त में निवृत्त नहीं होवे या आलोचना आदि के भाव नहीं होवे तो अ तर्मुहूर्त की स्थिति समाप्त होने पर अस यम अवस्था को प्राप्त कर लेता है । इस लब्धि प्रयोग की अवस्था में तीन शुभ लेश्या में से ही कोई एक लेश्या रहती है, अशुभ लेश्या नहीं रहती । फिर भी प्रवृत्ति में आवेश और अक्षमाभाव होने से तथा छोटे या बडे किसी दोष की नियमा होने से इस निय ठे के प्रार भ से ही स यम पर्यव की इतनी कमी आने लग जाती है कि बकुश निय ठे के जघन्य चरित्र पर्यव से इसके अन त गुणहीन चरित्र पर्यव हो जाते है ।

यह निय ठा जीवन में उत्कृष्ट तीन बार ही आ सकता है । लब्धि प्रयोग में ज्ञान दर्शन आदि का कोई न कोई हेतु निमित्त होता है । उन निमित्तों की अपेक्षा से इसके ५ प्रकार कहे गये हक्त ।

(१) ज्ञान पुलाक– ज्ञान(अध्ययन) के स ब ध में, किसी के द्वारा, किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न की जाने पर, उस विकट परिस्थिति में जो कोई पुलाकलब्धि का प्रयोग करता है तो वह **ज्ञान पुलाक निर्ग्रंथ** कहलाता है ।

(२) दर्शन पुलाक– दर्शन के स ब ध में अर्थात् श्रद्धा प्ररूपणा के स ब ध में किसी के द्वारा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न की जाने पर उस विकट परिस्थिति में जो कोई पुलाकलब्धि का प्रयोग करता है, वह **दर्शन पुलाक निर्ग्रंथ** कहलाता है ।

(३) चरित्र पुलाक– स यम पालन की आवश्यक विधियों में किसी के द्वारा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न की जाने पर उस विकट परिस्थिति

में जो कोई पुलाकलब्धि का प्रयोग करता है, वह **चरित्र पुलाक निर्ग्रंथ** कहलाता है ।

(४) लि ग पुलाक– आवश्यक वेशभूषा व उपधि के स ब ध में किसी के द्वारा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न की जाने पर विकट परिस्थिति में जो कोई पुलाकलब्धि का प्रयोग करता है, वह **लि ग पुलाक निर्ग्रंथ** कहलाता है ।

(५) यथा सूक्ष्म पुलाक– अन्य विविध कारणों से अर्थात् स घ या व्यक्ति(साधु, श्रावक, दीक्षार्थी आदि) कोई पर आई हुई आपत्ति आदि की विकट परिस्थिति में जो पुलाकलब्धि का प्रयोग करता है, वह **यथासूक्ष्म पुलाक** कहलाता है ।

आगम में ३६ द्वारों से पुलाक का स्वरूप बताया गया है जिसके प्रथम द्वार में ये पाँच भेद करके व्याख्या की गई है । इस निय ठे के नाम से ही स्पष्ट है कि यह निय ठा पुलाक नामक लब्धि के प्रयोग करने से साधु को प्राप्त होता है ।

यद्यपि ३६ ही द्वारों से इसका यही उक्त अर्थ फलित होता है, फिर भी– (१) प्रज्ञापना (२) लेश्या (३) स्थिति (४) गति (५) भव (६) आकर्ष (७) अ तर (८) प्रतिसेवना (९) लि ग (१०) स यम पर्यव (११) समुद्घात आदि द्वारों से तो अत्य त ही स्पष्ट हो जाता है कि यह अवस्था लब्धि प्रयोग के समय की है । अन्य कोई पुलाक अवस्था सूत्रकार को अपेक्षित या विवक्षित नहीं है ।

अतः टीकाकारों द्वारा कल्पित लब्धि पुलाक और आसेवना पुलाक दो भेद करना अनुपयुक्त है और आसेवना पुलाक के ही ये पाँच भेद हक्त, ऐसा कहना भी सूत्रानुकुल नहीं है । क्यों कि ऐसी कोई सूचना ३६ द्वारों में नहीं की गई है । किन्तु केवल लब्धि पुलाक को ही इस भेद में विवक्षित कर समस्त वर्णन किया गया है और ऐसा मानने पर ही शेष द्वारों में वर्णित विषयों की स गति सम्यक् प्रकार से हो सकती है । इस विषय की तर्क सहित विचारणा सारा श पुष्प-१७ पृ.१४ में की गई है ।

(२) वेद द्वार–पुढषवेदी तथा पुढष नपु सक वेदी को पुलाक निय ठा

होता है । स्त्री वेदी और स्त्री नपु सक वेदी को यह निय ठा नहीं होता है । क्यों कि उन्हें पूर्वों का ज्ञान नहीं होता है और पूर्वों के ज्ञान वालों को ही पुलाक लब्धि होती है। ***[नपु सक के स्त्री नपु सक और पुढष नपु सक ऐसे दो भेद हक्त । ये भेद उनके योनि, लि ग, स्तन आदि अ गोपा ग की अपेक्षा होते हक्त । ये दोनों भेद स्वाभाविक जन्म से होते हक्त । कृत नपु सक या विकृति प्राप्त नपु सक सभी मौलिक रूप से प्राय: पुढष ही होते हक्त । इन नपु सकों में केवल स्त्री नपु सक में एक भी निय ठा नहीं होता है । पुढष नपु सक में कोई–कोई निय ठे होते हक्त ।]***

(३) राग द्वार– पुलाक सरागी होता है, वीतरागी नहीं होता है ।

(४) कल्प द्वार– पुलाक में स्थित, अस्थित दोनों कल्प हो सकते हक्त और स्थविर कल्प होता है, जिनकल्प और कल्पातीत नहीं होता है । क्यों कि जिनकल्पी लब्धिप्रयोग नहीं करते और कल्पातीत तो प्राय: वीतरागी ही होते हक्त ।

(५) चारित्र द्वार– पुलाक में सामायिक और छेदोपस्थानीय दो ही चारित्र होते हक्त । शेष तीन में लब्धि प्रयोग नहीं होता है । अत: ये तीनों चारित्र पुलाक में नहीं होते ।

(६) प्रतिसेवना द्वार– पुलाक नियमत: प्रतिसेवी(दोष सेवी) होते हक्त । पुलाक लब्धिप्रयोग से स यम के मूलगुण में या उत्तरगुण में अवश्य दोष लगता है ।

(७) **ज्ञान द्वार**– पुलाक में ३ ज्ञान होते हक्त । मति, श्रुत एव अवधिज्ञान । श्रुतज्ञान– जघन्य देशोन ९ पूर्व, उत्कृष्ट ९ पूर्व पूरा ।

(८) तीर्थ द्वार– पुलाक तीर्थ में ही होते हक्त, अतीर्थ में नहीं होते । कोई भी तीर्थंकर का शासन चालू हो, वह समय तीर्थ का कहलाता है । जब किसी तीर्थंकर का शासन नहीं हो या विच्छेद गया हो तो वह समय **अतीर्थ** कहलाता है ।

(९) लि ग द्वार– पुलाक, द्रव्य से एव भाव से स्वलि ग में ही होता है । अन्यलि ग और गृहस्थलि ग में नहीं होता है क्यों कि पूर्वों का ज्ञान तथा पुलाक लब्धि स्वलि ग में ही होती है, गृहस्थलि ग और अन्यलि ग में नहीं होती है ।

(१०) शरीर द्वार– पुलाक में तीन शरीर होते हक्त । वैक्रिय और आहारक शरीर नहीं होता है क्यों कि इसकी अ तर्मुहूर्त मात्र की स्थिति होती है ।

(११) क्षेत्र द्वार– जन्म की अपेक्षा और सद्भाव की अपेक्षा यह १५ कर्मभूमि में ही होता है । पुलाक निर्ग्रंथ का लब्धिप्रयोग के अ तर्मुहूर्त में स हरण भी नहीं होता है ।

(१२) काल द्वार– पुलाक **उत्सर्पिणी** के तीसरे चौथे आरे में होता है । **अवसर्पिणी** के तीसरे, चौथे आरे में जन्मे हुए को तीसरे, चौथे और पाँचवें आरे में सद्भाव की अपेक्षा पुलाक लब्धिप्रयोग हो सकता है । उत्सर्पिणी के तीसरे चौथे आरे में ही जन्म और सद्भाव होता है, बाकी आरों में पुलाक नहीं होते । पुलाक का स हरण नहीं होने से अन्य किसी आरे में नहीं होता है । नोउत्सर्पिणी–नोअवसर्पिणी काल में अर्थात् पाँच महाविदेह क्षेत्र में सभी(१६०) विजयों में हो सकता है । स हरण नहीं होने से देवकुढ आदि महाविदेह के किसी भी विभाग रूप क्षेत्रों में नहीं होता है ।

(१३) गति द्वार– पुलाक निर्ग्रंथ अ तर्मुहूर्त मात्र लब्धिप्रयोग के समय में होता है । अत: उसकी गति के कथन में पुलाक लब्धि से निवृत्त हो जाने के बाद के निकट के क्षणों में काल करने वाले को भी पुलाक की गति ही लागु पडती है । उस निकट समय में काल करने पर वह पुलाक प्रथम देवलोक से आठवें देवलोक तक जाता है । अन्य किसी गति में या भवनपति आदि देवों में नहीं जाता है । निकट समय में यदि आलोचना प्रायश्चित्त आदि आराधना के परिणामों में काल करे तो इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिंशक और लोकपाल पद में उत्पन्न हो सकता है और आलोचना प्रायश्चित्त न करने रूप विराधना के परिणामों में उस निकट समय में काल करे तो आठों देवलोक में इन चार पद के सिवाय देवों में उत्पन्न होता है ।

निकट के क्षणों के सिवाय आगे के समयों में फिर उसे पुलाक की गति लागु नहीं पडती है । वह कषाय कुशील आदि अन्य जिस निय ठे में चला जाता है उसकी गति लागु पडती है । यदि वह अस यम भावों में चला जाय और निय ठा कोई भी नहीं रहे तो वह अस यम

भावों की कोई भी गति-द डक में जा सकता है । कोई भी निय ठे में रहते हुए अथवा उस निय ठे के परिवर्तित हो जाने के निकट समय में भी उस पूर्व के निय ठे की आराधक या विराधक गति ही आगम में कही जाती है अर्थात् वह उस पूर्व के निय ठे के गति वाले वैमानिक देवलोकों में ही जाता है । आराधना के परिणामों में उपरोक्त पदवी प्राप्त कर सकता है और विराधना परिणामों में अन्य देव बनता है पर तु वैमानिक सिवाय कहीं भी नही जाता है । निय ठे छूटकर अस यम में पहुँच जाने पर फिर वह वैमानिक सिवाय कहीं भी जा सकता है ।
स्थिति- वैमानिक में जघन्य २ पल्योपम उत्कृष्ट १८ सागरोपम प्राप्त करता है ।

(१४) स यम स्थान द्वार- स यम के दर्जे-स्थान अस ख्य होते हक्त । उसमें इस पुलाक निर्ग्रंथ के भावात्मक न्यूनाधिकता के अस ख्य दर्जे होते हक्त । ये दर्जे सकषाय अवस्था एव छद्मस्थता के कारण, परिणामों की विविधता च चलता से बनते हक्त । जब जीव को वीतरागदशा ११-१२वाँ गुणस्थान एव केवली अवस्था प्राप्त हो जाती है तब इस प्रकार की विभिन्नताएँ नहीं रहती है । जिससे ११वें से १४वें गुणस्थान तक स यमस्थान एक ही होता है, अनेक या स ख्यात होने का विकल्प भी नहीं होता है ।

(१५) स निकर्ष द्वार- स निकर्ष का अर्थ है-तुलना में । यहाँ पर स यम पर्यव की तुलना दर्शाई गई है । स यम पर्यव पुलाक आदि सभी निय ठों में अन त-अन त होते हक्त । उनकी परस्पर तुलना में पुलाक के अन त स यम पर्यव भी अन्य पाँचों निय ठों में से चार से तो अन तगुण हीन ही होते हक्त । अन्य पुलाक वालों से तथा कषाय कुशील निय ठे वालों से हीनाधिक या समान सभी विकल्प(छट्ठाणवडिया)होते हक्त अर्थात् आपस में समान भी हो सकते हक्त और असमान भी हो सकते हक्त । वह असमानता ६ तरह की हो सकती है-(१) स ख्यातवाँ भाग हीनाधिक (२) अस ख्यातवाँ भाग हीनाधिक (३) अन तवाँ भाग हीनाधिक (४) स ख्यातगुण हीनाधिक (५) अस ख्यातगुण हीनाधिक और (६) अन तगुण हीनाधिक । इसे आगम में **छट्ठाणवडिया** शब्द से कहा जाता है ।

चौदहवें द्वार में कहे गये स यमस्थान दर्जे-अवस्थाओं रूप है और इस प द्रहवे द्वार में कहे गये स यमपर्यव तपस यम रूपी धन की वृद्धि रूप और हानि रूप स्टोक है । एक प्रकार की स यम-तप से इकट्ठी होने वाली पूँजी रूप है । यह पूँजी वीतरागी दोनों निय ठों में अन्य चार निय ठों से अन तगुणी ज्यादा होती है । जब कि स यम स्थान तो उन वीतरागियों में केवल एक ही होता है । यह स यमस्थान और स यमपर्यव में फर्क समझना चाहिये ।

(१६) योग द्वार- पुलाक **सयोगी** होता है, इसमें मन, वचन, काया के तीनों योग होते हक्त । विस्तार की अपेक्षा १५ योग में से १० योग (४ मन, ४ वचन, औदारिककाय, कार्मणकाय योग) होते हक्त ।

(१७) उपयोग द्वार- पुलाक में साकार-अनाकार दोनों उपयोग होते हक्त और १२ उपयोग में से (३ ज्ञान ३ दर्शन) ६ उपयोग होते हक्त ।

(१८) कषाय द्वार- चारों कषाय होने से पुलाक सकषायी होता है ।

(१९) लेश्या- पुलाक में तीन शुभ लेश्या ही होती है अर्थात् शुभ लेश्या, शुभ उद्देश्य से ही इस पुलाक लब्धि का प्रयोग किया जाता है । अशुभ उद्देश्य-लेश्या में पुलाक निय ठा नहीं रहता है, अस यम की प्राप्ति हो जाती है क्यों कि इसमें लब्धिप्रयोग में मूलगुण या उत्तर गुण कोई भी दोष होता है और स यम में दोष जहाँ भी होता है वहाँ शुभ लेश्या युक्त दोष सेवन होता है तभी निय ठा रहता है । अशुभ लेश्या युक्त दोष सेवन में कोई भी निय ठा नहीं रहता है, छूट जाता है । तब साधक का भाव स यम या सर्वविरति का गुणस्थान भी नहीं रहता है । इत्यादि कारणों से यहाँ पुलाक में तीन शुभ लेश्या ही स्वीकारी गई है ।

(२०) परिणाम द्वार- पुलाक में वर्धमान और हायमान परिणाम जघन्य एक समय उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त रह सकते हक्त । अवस्थित परिणाम जघन्य एक समय उत्कृष्ट सात समय रह सकते हक्त ।

(२१-२३) ब ध-उदय-उदीरणा द्वार- सात कर्मों का ब ध होता है विशिष्ट लब्धि प्रयोग में आयुष्य का ब ध नहीं होता है । आठों कर्मों का उदय होता है । उदीरणा ६ कर्मों की होती है । आयुष्य और वेदनीय

कर्म की उदीरणा नहीं होती है । ***[उदीरणा के दो प्रकार है- (१) स्वाभाविक कर्मों की उदीरणा (२) औपक्रमिकी-स्व-पर के उपक्रम से उदीरणा अर्थात् कोई मारे या दु:ख दे अथवा स्वय मरे या कष्ट पैदा करे । इसमें दूसरे प्रकार की उदीरणा छट्ठे गुणस्थान तक होती है, सातवें आदि गुणस्थानों में नहीं होती है । पुलाक में गुणस्थान छट्ठा ही होता है तो भी उसके दूसरे प्रकार की उदीरणा दो कर्मों की नहीं होती है । अत: यहाँ ६ कर्मों की उदीरणा कही है । स्वाभाविक उदीरणा वेदनीय समुद्घात के समय और मारणांतिक समुद्घात के समय पुलाक को होना स भव है । पुलाक में समुद्घात तीन कही होने से और उदीरणा नहीं कही होने से ऐसा तात्पर्य समझ लेना चाहिये]***

(२४) उवस पदा द्वार- पुलाक अपनी स्थिति-प्रवृत्ति पूर्ण करके फिर कषायकुशील निग्रंथ अवस्था को प्राप्त करता है, धारण करता है, स्वीकार करता है इसे उवस पदा कहा गया है अथवा कभी अस यम को भी प्राप्त कर सकता है। इसलिए पुलाक की ये दो उव स पदाएँ है ।

(२५) स ज्ञा द्वार- पुलाक में लब्धिप्रयोग की तल्लीनता के कारण चारों ही स ज्ञा नहीं होती है । अत: इसे नोस ज्ञोपयुक्त कहा गया है ।

(२६) आहार द्वार- पुलाक आहारक ही होता है, अनाहारक नहीं होता है। क्यों कि १,२,४ और १३,१४ ये पाँच गुणस्थान में अनाहारक भाव होता है, शेष सभी गुणस्थान रोमाहार की अपेक्षा निर तर आहारक भाव में ही रहते हक्त । पुलाक में मात्र छट्ठा गुणस्थान ही है ।

(२७-२८) भव और आकर्ष द्वार- एक जीव को पुलाक अधिकतम तीन भव में आ सकता है तथा एक भव में उत्कृष्ट तीन बार और तीन भव में उत्कृष्ट सात बार आ सकता है अर्थात् एक जीव अनेक भवों में कुल सात बार पुलाक आदि लब्धि प्रयोग कर सकता है और उत्कृष्ट तीन भवों में लब्धि प्राप्त कर सकता है ।

(२९) काल-स्थिति द्वार- पुलाक निग्रंथ जघन्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त रहता है अर्थात् किसी की एक समय की स्थिति भी नहीं होती है और अ तर्मुहूर्त से ज्यादा भी यह निय ठा नहीं रहता है । प्राय: इतने समय में साधक लब्धिप्रयोग से निवृत्त हो जाता है, कदाचित् कोई

अ तर्मुहूर्त बाद भी निवृत्त नहीं होवे तो यह पुलाक निय ठा नहीं रहता है । साधक वास्तव में अस यम दशा को प्राप्त कर लेता है, व्यवहार से श्रमणवेश में रहता है पर तु ज्ञानियों की दृष्टि से वह छट्ठे गुणस्थान से भी च्युत हो जाता है ।

पुलाक अनेक स ख्या में लोक में हो तो वह अनेक स ख्या जघन्य एक समय भी रह सकती है अर्थात् एक समय के बाद पुन: एक पुलाक हो जाता है और उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त के बाद अनेकता समाप्त हो जाती है अर्थात् एक पुलाक रहे या एक भी नहीं रहे ।

(३०) अ तर द्वार- एक साधक जघन्य अ तर्मुहूर्त बाद पुन: पुलाक लब्धिप्रयोग कर सकता है और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन के बाद भी पुलाक लब्धि का प्रयोग कर सकता है । अत: एक जीव की अपेक्षा पुलाक का अ तर जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन होता है । अनेक स ख्या रूप पुलाक निग्रंथों का अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट स ख्याता वर्ष है अर्थात् एक समय बाद पुन: अनेक स ख्या हो सके । अधिकतम स ख्याता वर्ष बाद फिर अनेक पुलाक साथ में होते हक्त ।

(३१) समुद्घात द्वार- पुलाक में वेदनीय कषाय और मारणा तिक ये तीन समुद्घात मूलपाठ में कही है ।

विचारणा- (१) पुलाक में वेदनीय और आयुष्य कर्म की उदीरणा नहीं कही है तथापि यहाँ वेदनीय और मारणातिक समुद्घात कही है । इसमें विरोधाभास जैसा लगता है क्यों कि वेदनीय समुद्घात में वेदनीय कर्म की और मारणा तिक समुद्घात में आयुष्य कर्म की उदीरणा होना माना-समझा जाता है । इसीलिये उपर उदीरणा द्वार में कुछ समाधान करने का प्रयत्न किया गया है ।

(२) इसी प्रकार के वर्णन से धारणा में ऐसा स्वीकारा जाता है कि पुलाक निग्रंथ अवस्था में मरण नहीं होता है । वास्तव में यहाँ कितने ही द्वारों के वर्णन से पुलाक में मृत्यु हो सकती है ऐसा अनुमान होता है और कितने ही द्वारों के वर्णन से पुलाक में नहीं मरने का भी अनुमान होता है । इस प्रकार उभयात्मक अनुभव के कारण

निश्चयात्मक अथवा आग्रहयुक्त निरूपण **नहीं करना** ही योग्य होता है । क्यों कि आगम में स्पष्ट शब्दों में कहीं भी पुलाक में मरने या नहीं मरने का कथन नहीं किया गया है ।

(३२-३३) क्षेत्र-स्पर्शना द्वार- पुलाक निर्ग्रंथ लोक का अस ख्यातवा भाग क्षेत्र अवगाहन करता है और अवगाहन से स्पर्शना का क्षेत्र साधिक होता है । छहों दिशाओं में अवगाहित क्षेत्र के बाहर के एक-एक प्रदेशों की स्पर्शना होती है ।

(३४) भाव द्वार- निय ठे उपशम,क्षयोपशम या क्षायिक भाव से(मोहकर्म के क्षय-उपशम-क्षयोपशम से) प्राप्त होते हक्त । जिसमें प्रार भ के चार निय ठे क्षयोपशम भाव से, पाँचवा निय ठा क्षायिक या उपशम भाव से तथा छट्ठा स्नातक निय ठा क्षायिक भाव से प्राप्त होता है । अर्थात् उदयभाव से या पारिणामिक भाव से ये निय ठे नहीं आते हक्त ।

(३५) परिमाण द्वार- नये प्रतिपद्यमान पुलाक कभी होवे, कभी नहीं होवे । जब होवे तो एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अनेक सौ हो सकते हक्त । पूर्वप्रतिपन्न अर्थात् पुलाक अवस्था में रहे हुए अस्तित्व वाले पुलाक निर्ग्रंथ भी लोक में कभी होवे, कभी नहीं होवे । जब होते हक्त तो जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अनेक हजार हो सकते हक्त ।

(३६) अल्पाबहुत्व द्वार- छ निय ठों में से पुलाक केवल पाँचवें निर्ग्रंथ निय ठे से स ख्यातगुणे अधिक हो सकते हक्त, यह उत्कृष्ट स ख्या की अपेक्षा कथन है । ये दोनों ही अशाश्वत निय ठे होने से कभी दोनों परस्पर ज्यादा या कम भी हो सकते हक्त । शेष चारों (बकुश, प्रतिसेवना और कषाय कुशील, स्नातक) निय ठे शाश्वत हक्त और वे पुलाक से सदा स ख्यात गुणे ही होते हक्त ।

प्रश्न-१५ : बकुश निय ठा-निर्ग्रंथ का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार कहा गया है ?

उत्तर- (१) प्रज्ञापना द्वार- पुलाक के समान यह निय ठा भी स यम ग्रहण करने के प्रार भ में नहीं आता है । कुछ स यम पर्याय के बाद पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव से अन तगुणा अधिक चारित्र पर्यव

हो जाने पर उत्तरगुण के दोष रूप शिथिल प्रवृत्तियों के आचरण से यह निय ठा आता है । अर्थात् शरीर तथा उपकरणों की विभूषा करने वाला, हाथ पैर मुख, शय्या-स थारा, वस्त्रादि को बिना खास प्रयोजन धोने वाला या बार-बार धोने वाला तथा अन्य भी अनेक शिथिल प्रवृत्तियों को अपनी ढचि एव आदत से करने वाला और स यम परिणामों की जागढकता(प्रगतिशीलता) में कमी लाने वाली प्रमाद रूप अनावश्यक प्रवृत्तियाँ करने वाला साधक शुद्ध निर्ग्रंथ अवस्था से हटकर बकुश निर्ग्रंथ कहलाता है । यह निर्ग्रंथ मूल गुण में दोष नहीं लगाता है । इसके दोष की प्रवृत्तियाँ सूक्ष्म दर्जे की, उत्तरगुण दोष के सीमा तक की व शिथिल मानसवृत्ति की होती है । दोष का दर्जा अपनी सीमा से आगे बढ जाने पर यह निय ठा नहीं रहता है । तब वह साधक अस यम में या प्रतिसेवना कुशील निय ठा में चला जाता है । दोष की शुद्धि आलोचना प्रायश्चित्त के द्वारा कर ले तो फिर यह दोष वाला निय ठा नहीं रह कर, विशुद्ध कषाय कुशील निय ठा आ जाता है । लगे दोष की शुद्धि नहीं करे और कुछ प्रवृत्तियाँ सूक्ष्म दोष की चालू रखे, उसके अतिरिक्त शुद्ध स यम आराधना में तत्पर बन जाय तो यदि दोष का दर्जा, इसकी सीमा तक का हो तो यह निय ठा उत्कृष्ट जीवन भर भी रह सकता है । यह निय ठा भी तीन शुभ लेश्या के रहने पर ही रहता है । अशुभ लेश्या के परिणाम होते ही इस निय ठे वाला अस यम में पहुँच जाता है । इस निर्ग्रंथ के दोष सेवन में ज्ञान दर्शन आदि के निमित्त की प्रमुखता न रह कर शिथिल मानस वृत्ति की प्रमुखता होती है । अत: इसमें ज्ञानादि के निमित्त की अपेक्षा से भेद नहीं करके प्रवृत्ति की अपेक्षा ५ भेद कहे गये हक्त । यथा-

(१) आभोग बकुश- स यम विधि का, शास्त्र की आज्ञा का तथा शिथिल प्रवृत्तियों का व उनकी उत्पत्ति के स्वरूप का जानकार, अनुभवी होते हुए भी शिथिल मानस एव लापरवाही से शिथिल प्रवृत्ति करने वाला **आभोग बकुश** कहलाता है ।

(२) अनाभोग बकुश- जो चली आई हुई प्रवृत्ति के अनुसार, देखा-देखी, स गति के अनुसार, शिथिल प्रवृत्तियाँ करता है, जिसने शास्त्राज्ञा

को नहीं समझा है, अत: अपनी प्रवृत्ति को ठीक समझकर या बिना कुछ समझे विचारे करता है, वह **अनाभोग बकुश** कहलाता है ।

(३) स वुड बकुश– इस निय ठे के दर्जे की प्रवृत्तियों को गुप्त रूप से करे, विशेष प्रगट रूप में नहीं करे, वह **स वुड बकुश** कहलाता है ।

(४) अस वुड बकुश– दुस्साहस और प्रवृत्ति के बढ जाने से जो नि:स कोच होकर प्रगट रूप से उन प्रवृत्तियों को करता है वह **अस वुड बकुश** कहलाता है ।

(५) यथासूक्ष्म बकुश– विभूषा आदि की चालू प्रवृत्तियों को लिहाज, दबाव आदि से सेवन करे तथा निष्कारण औषध सेवन, विगय सेवन एव नशीले पदार्थ का सेवन करे । किसी भी चीज के प्रति लगाव रखे । आलस–निद्रा, प्रमाद में अनावश्यक अमर्यादित समय खर्च करे । स यम प्रवृत्तियों को अविधि अविवेक व उतावल से करने की प्रवृत्ति रखे । रसासक्त बने और अनावश्यक अमर्यादित पदार्थों का सेवन करे, इत्यादि अनेक प्रवृतियाँ करने वाला **यथा सूक्ष्म बकुश** कहलाता है अर्थात् जिन प्रवृत्तियों से विनय, वैराग्य, इन्द्रिय दमन, इच्छानिरोध, ज्ञान, तप आदि स यम गुणों के विकास में बाधा पडती हो, उन प्रवृत्तियों को करने वाला **यथा सूक्ष्म बकुश** कहा जाता है ।

(२) वेद द्वार– बकुश निय ठा स्त्री, पुढष और पुढष नपु सक तीनों को हो सकता है । **(३) राग**– बकुश सरागी होता है, वीतरागी नहीं होता है । **(४) कल्प**– बकुश में स्थित और अस्थित दोनों कल्प होते हक्त एव जिनकल्प और स्थविरकल्प भी होते हक्त । बकुश में कल्पातीत कोई नहीं होते हक्त । **(५) चारित्र**– बकुश में सामयिक, छेदोपस्थानीय दो चारित्र होते हक्त, शेष तीन नहीं होते । क्यों कि वे तीनों दोष रहित होते हक्त और बकुश निय ठा दोष सहित ही होता है ।

(६) प्रतिसेवना– बकुश निय ठा नियमा उत्तरगुण पडिसेवी होता है । मूलगुण रूप महाव्रतों के दोष इसमें नहीं होते । बकुश निर्ग्रंथ यदि मूलगुण में दोष सेवन करे तो प्राय: अस यम में चला जाता है । कभी कोई प्रतिसेवना कुशील में भी जा सकता है यदि उस निय ठे की

परिभाषा के अनुरूप लक्षण हों तो । **(७) ज्ञान**– बकुश में ३ ज्ञान या दो ज्ञान हो सकते हक्त, मन:पर्यवज्ञान नहीं होता है । श्रुतज्ञान की अपेक्षा इसमें जघन्य अष्टप्रवचन माता का एव उत्कृष्ट १० पूर्वों का ज्ञान हो सकता है । चौदह पूर्वी और मन:पर्यवज्ञानी इस निय ठे में नहीं होते । क्यों कि वे साधक दोष रहित चारित्र वाले ही होते हक्त । यदि कोई मन:पर्यवज्ञानी या चौदहपूर्वी किसी भी प्रकार का चारित्र में दोष सेवन करे तो उनका वह ज्ञान नष्ट हो जाता है । **(८) तीर्थ**– बकुश निय ठा तीर्थ में ही होता है, अतीर्थ में नहीं होता है । **(९) लि ग**– द्रव्य से स्वलि ग, अन्यलि ग और गृहस्थलि ग तीनों में हो सकता है किंतु भाव से स्वलि ग में अर्थात् छट्ठे–सातवें गुणस्थान में ही होता है । ***[कभी किसी परिस्थिति से साधक को गृहस्थ वेश या अन्यमत का वेश धारण करके कोई क्षेत्र या समय परिस्थिति को पार करना जरूरी हो सकता है अत: द्रव्य से बकुश में तीनों लि ग कहे गये हक्त । भाव से तो वह स्वलि ग में ही रहता है ।]*** **(१०) शरीर**– बकुश में ४ शरीर हो सकते हक्त आहारक शरीर नहीं होता है । **(११) क्षेत्र**– जन्म और सद्भाव आसरी १५ कर्म भूमि में तथा स हरण आसरी कर्मभूमि और अकर्मभूमि दोनों में होवे । **(१२) काल**– जन्म और सद्भाव आसरी **अवसर्पिणी** के तीसरे चौथे पाँचवें आरे में होवे और **उत्सर्पिणी** के दूसरे तीसरे चौथे आरे के जन्मे हुए को सद्भाव से तीसरे चौथे आरे में होवे । स हरण आसरी सभी आरों में होवे ।

नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी रूप महाविदेह क्षेत्र चौथे आरे के जैसे काल में जन्म सद्भाव की अपेक्षा बकुश होवे । स हरण आसरी सभी जगह देवकुढ आदि में होते हक्त । **(१३) गति**– बकुश निय ठा वैमानिक के १२ देवलोक में जाता है । निकट **समय में** कषाय कुशील बनकर बकुश आराधक बने तो इन्द्र आदि पदवी प्राप्त कर सकता है और बकुश की विराधना दशा में ही काल करे तो इन्द्रादि चारों पदवी के सिवाय देव बनता है । स्थिति जघन्य दो पल्योपम उत्कृट २२ सागरोपम प्राप्त करता है । **(१४) स यम**– अस ख्य स यम स्थान पुलाक के समान है ।

(१५) पर्यव– पुलाक के समान स यमपर्यव(स यम धन स्टोक) अन त है । बकुश के जघन्य पर्यव भी पुलाक के उत्कृट पर्यव से अन त गुणे अधिक होते हक्त और बकुश के उत्कृष्ट स यम पर्यव से प्रतिसेवना निय ठे के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुण अधिक होते हक्त । बकुश के मध्यम स यम पर्यव, प्रतिसेवना और कषायकुशील के मध्यम पर्यव से छट्ठाण वडिया होते हक्त । जघन्य पर्यव में बकुश और प्रतिसेवना वाले समान होते हक्त । निर्ग्रंथ और स्नातक के चरित्र पर्यव बकुश से अन तगुणे ही होतेहक्त । **(१६) योग**– बकुश सयोगी होता है, इसमें तीनों योग होते हक्त । विस्तार की अपेक्षा १५ योग में से १२ योग होते हक्त । आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण ये ३ योग नहीं होते । **(१७) उपयोग**– बकुश में उपयोग दोनों होते हक्त । १२ उपयोग में से ६ उपयोग(३ ज्ञान ३ दर्शन)होते हक्त । **(१८) कषाय**– बकुश सकषायी है और इसमें चारों कषाय होते हक्त । **(१९) लेश्या**– इसमें पुलाक के समान ही **तीन** शुभ लेश्या समझना । **(२०) परिणाम**– वर्धमान, हायमान और अवस्थित तीनों परिणाम पुलाक के समान समझना । **(२१–२३) ब ध, उदय, उदीरणा**– बकुश में सात या आठ कर्मों का ब ध होता है । आठ ही कर्मों का उदय होता है । उदीरणा ७ या ८ अथवा कभी ६ कर्मों की होती है ।

(२४) उवस पदा– बकुश, बकुश अवस्था को छोडता हुआ सीधा कभी प्रतिसेवना कुशील में, कभी कषाय कुशील में, कभी स यमा स यम में और कभी अस यम में यों चार स्थानों में से किसी को भी प्राप्त कर सकता है । **(२५) स ज्ञा**– बकुश में चारों स ज्ञा होती है और कभी वह अप्रमत्तदशा में नोस ज्ञोपयुक्त भी हो सकता है । क्यों कि बकुश निय ठा में गुणस्थान छट्ठा–सातवा दोनों होते हक्त । **(२६) आहार**– यह निय ठा आहारक ही होता है, अनाहारक नहीं होता है । **(२७–२८) भव–आकर्ष**– बकुश निय ठा एक जीव को उत्कृष्ट आठ भवों में आ सकता है, उससे अधिक में नहीं आता है । एक भव में यह निय ठा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट अनेक सौ बार आ सकता है और अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट अनेक हजार

बार आ सकता है । **(२९) स्थिति**– बकुश निय ठे में यह साधक जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व वर्ष भी रह सकता है । अनेक जीवों की अपेक्षा बकुश निय ठा शाश्वत है अर्थात् महाविदेह क्षेत्र में बकुश निर्ग्रंथ सदा होते हक्त । **(३०) अ तर**– जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्‌गल परावर्तन का अ तर पड सकता है अर्थात् एक जीव बकुश निय ठे को छोडकर अ तर्मुहूर्त में वापिस बकुश में आ सकता है और काल करके अन त भव करे तो उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्‌गल परावर्तन के बाद मनुष्य भव प्राप्त करके बकुश बन सकता है । अनेक जीवों की अपेक्षा बकुश निय ठा शाश्वत है अत: अ तर नहीं है । **(३१) समुद्‌घात**– बकुश में ५ समुद्‌घात पाई जा सकती है । इसमें आहारक और केवली समुद्‌घात नहीं होती है । **(३२–३३) क्षेत्र–स्पर्शना**– बकुश का अवगाहन क्षेत्र लोक के अस ख्यातवें भाग का होता है और स्पर्शना क्षेत्र उससे कुछ अधिक होता है । **(३४) भाव**– यह निय ठा क्षयोपशम भाव में होता है, अन्य उपशम उदय भावों में नहीं होता है अर्थात् मोहकर्म के क्षयोपशम से यह निय ठा आता है । **(३५) परिमाण**– नये उत्पन्न होने की अपेक्षा कभी तो नहीं होते है, कभी होते हक्त, तो जघन्य १–२–३ एव उत्कृष्ट अनेक सौ । अस्तित्व की अपेक्षा बकुश शाश्वत रूप से अनेक सौ करोड सदा मिलते हक्त । यह स ख्या पाँच महाविदेह क्षेत्र की मुख्यता से है । **(३६) अल्पाबहुत्व**– बकुश निय ठे वाले पुलाक और स्नातक निर्ग्रंथ से स ख्यात गुणे होते हक्त और प्रतिसेवना से परस्पर तुल्य होते हक्त तथा कषाय कुशील से स ख्यातवें भाग(कम) होते हक्त । यह कथन उत्कृष्ट स ख्याओं की अपेक्षा किया जाता है ।

प्रश्न–१६ : प्रतिसेवना निय ठा का ३६ द्वारों से स्वरूप किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– **(१) प्रज्ञापना द्वार**– यह निय ठा भी स यम ग्रहण के प्रार भ में नहीं आता है । कुछ स यम पर्याय के बाद व पुलाक के उत्कृष्ट स यम पर्याय से अन तगुण अधिक संयमपर्यव हो जाने पर कभी भी सकारण मूलगुण में या उत्तर गुण में अमुक सीमा के दोष सेवन करने

पर यह निय ठा आता है । इस निय ठे वाले के दोष सेवन में शिथिल मानस की मुख्यता न होकर किसी प्रकार की लाचारी, असहनीय स्थिति अथवा कवचित् प्रमाद, कुतूहल, दर्प तथा अशुद्ध समझ होती है तथा ज्ञान आदि पाँच के निमित्त से दोष का सेवन किया जाता है ।

इस निय ठे के दोष के दर्जे बकुश के दोषों से आगे दर्जे के भी होते हक्त । किन्तु शिथिलाचार मानस रूप में न होकर उपरोक्त लाचारी (विवशता) आदि कारण से या ज्ञानादि के निमित्त से होते हक्त । लगे दोष की शुद्धि कर लेने पर यह निय ठा नहीं रहता है और विशुद्ध कषाय कुशील निय ठा आ जाता है । लगे दोष की शुद्धि तो नहीं करे किन्तु दोष रहित शुद्ध स यम के पालन में तत्पर हो जाए तो उसके यह निय ठा बना रहता है । लगे दोष की शुद्धि न करे और वह दोष प्रवृत्ति भी चालू रहे किन्तु उसके अतिरिक्त शुद्ध स यम आराधना में लग जाए तब यदि दोष का दर्जा इस निय ठे की सीमा तक का हो और प्रवृत्ति में शिथिलता का मानस न हो तो जीवनभर भी यह निय ठा रह सकता है । शुभ तीन लेश्या की मौजूदगी में ही यह निय ठा रहता है । अशुभ लेश्या के आते ही इस निय ठे वाले को अस यम दशा प्राप्त हो जाती है । इसका कारण यह है कि दूसरा (डबल) भार आने पर स यम नहीं रहता अर्थात् एक तो दोष सेवन करना और दूसरा परिणाम भी अशुभ करना यह अक्षम्य हो जाता है । इसी कारण ये तीनों निय ठे प्रतिसेवी होने से शुभ लेश्या में ही रह सकते हक्त । इस प्रतिसेवना कुशील निय ठे के भी पुलाक के समान निमित्त की अपेक्षा से ५ प्रकार कहे गये हक्त–

(१) ज्ञान प्रतिसेवना कुसील– ज्ञान सीखने, सीखाने व प्रचार करने इत्यादि ज्ञान के स ब धित प्रस गो से मूल गुण या उत्तरगुण में दोष लगावे । यथा– पुस्तकें आदि खरीदे, म गावे, दोषयुक्त ग्रहण करे, सवेतनीक(साधु के लिये वेतन दिया जाता हो ऐसे) प डित से पढे । लहियों आदि से लिखाना, छपाई के कार्य में भाग लेना इत्यादि अनेक मर्यादाओं का ज्ञान के लिये भ ग करना; इन दोष प्रवृत्तियों वाला **ज्ञान प्रतिसेवना कुशील** निर्ग्रंथ कहलाता है ।

(२) दर्शन प्रतिसेवना कुशील– शुद्ध–श्रद्धा के प्राप्ति या प्रचार के लिये, दर्शन विषयों के अध्ययन के लिये, जो मूलगुण या उत्तरगुण में दोष का सेवन करे, वह **दर्शन प्रतिसेवना कुशील** कहलाता है ।

(३) चरित्र प्रतिसेवना कुशील– चरित्र की प्रवृत्तियों के पालन करने में, पालन कराने में और पालन करने वालों को तैयार करने में, किसी प्रकार का मूलगुण या उत्तरगुण का दोष लगावे तथा चारित्र पालन का साधन शरीर है इससे फिर ज्यादा स यम गुणों की वृद्धि होगी, इस भावना से दोष सेवन करे, इस तरह चरित्र के निमित्त से दोष सेवन करने वाला **चरित्र प्रतिसेवना कुशील** निर्ग्रंथ कहलाता है ।

(४) लि ग प्रतिसेवना कुशील– लि ग(वेशभूषा) के स ब ध से तथा साधुलि ग के आवश्यक उपकरण वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि के निमित्त से दोष लगावे तथा लि ग स ब धी किसी प्रकार की भगवदाज्ञा का उल्ल घन करे वह **लि ग प्रतिसेवना कुशील** निर्ग्रंथ कहलाता है ।

(५) यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील– यह पाँचवा भेद सभी निय ठों में शेष बचे हुए विषय को स ग्रह करने की अपेक्षा कहा गया है । अर्थात् पूर्व के चार भेदों में जिन प्रवृत्तियों, अवस्थाओं का समावेश नहीं हो ऐसी उन निय ठे के दर्जे की शेष अवस्थाओं को कहने वाला यह पाँचवाँ भेद सूत्र में कहा गया है ।

पौदगलिक सुख की लालसा से, इच्छापूर्ति के लिये, कष्ट सहन नहीं कर सकने से, अपनी बात रखने के लिये, मान कषाय आदि के पोषण के लिये, क्षेत्र या श्रावक आदि रूप परिग्रहवृत्ति की भावना से, दूसरों के लिहाज दबाव से, अशुद्ध समझ से, जैसे कि **उपकार होगा** इत्यादि से मूलगुण या उत्तरगुण में दोष लगावे, जिनाज्ञा से विपरीत प्रवृत्ति करे, वह **यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील निर्ग्रंथ** कहलाता है तथा जो साधु 'मकान–पाट, पानी पात्र आदि में आधाकर्मी या क्रीत आदि दोष लगते ही है' ऐसी अशुद्ध मनोवृत्ति रखते हुए इन पदार्थों की गवेषणा और उपभोग करता है । इसके अतिरिक्त शुद्ध स यम का पालन करता है तो भी वह **यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील निर्ग्रंथ** कहलाता है ।

(२–३६) वेद द्वार से अल्पाबहुत्व तक का वर्णन आगे चार्ट में देखें ।

प्रश्न–१७ : पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना इन तीनों निय ठों के स ब धी तुलनात्मक एव परिशीलनात्मक स्वरूप किस प्रकार है ?

उत्तर– ये तीनों निय ठे स यम ग्रहण करने के समय नहीं आते हक्त । ये तीनों प्रतिसेवी निय ठे हक्त अर्थात् इनका स यम शुद्ध नहीं होता है । इन तीनों निय ठों में परिणाम लेश्या तीन शुभ ही रहती है । जब कि कषाय कुशील निय ठे में शुभ–अशुभ ६ ही लेश्या में स यम भाव टिकता है पर तु इन तीनों निय ठों के यदि कभी अशुभ लेश्या आ जाय तो निय ठा तत्काल अस यम में परिवर्तित हो जाता है ।

पुलाक निय ठा वाला मूलगुण या उत्तरगुण में दोष लगावे तो भी उसके स यम रहता है किन्तु अ तर्मुहूर्त बाद तक दोष अवस्था रहे तो स यम नहीं रहता है । **बकुश** निय ठा शीर्फ उत्तर गुण के दोष तक में जीवन भर रह सकता है पर तु इसके उत्तर गुण के दोषों की भी जो सीमा है उसका उल्ल घन कर जाय तो वह अस यम में चला जाता है । क्यों कि यह निय ठा शिथिलाचार प्रवृत्ति रूप होता है अत: दोष लगाने में कोई कारण, परिस्थिति, अशक्यता, लाचारी, खेद आदि की मुख्यता न होने से इसमें सूक्ष्म दोषों तक ही स यम टिक सकता है, दोष की सीमा बढने पर अस यम आ जाता है । अत: केवल उत्तरगुण प्रतिसेवना में ही यह निय ठा टिकता है ।

बकुश के लिये दृष्टा त– जिस प्रकार पानी की कोई बडी कोठी या ट की का मालिक यदि लापरवाह वृत्ति वाला है और उसमें बारीक तराडें हो जाय, पानी निर तर निकले तो भी बहुत समय तक काम चल सकता है, ठीक कराने का ध्यान नहीं करे तो भी पानी स रक्षण और वितरण का कार्य ब द नहीं होता है, यदि वे तराडे चौडी हो जाने पर भी लापरवाही चलावे तो पानी ज्यादा निकल जायेगा और सारी व्यवस्था बिगड जायेगी । इसी तरह बकुश के दोष की तराडे बडी होने लग जाय तो स यम अवस्था खराब होकर अस यम हो जायेगा ।

प्रतिसेवना कुशील निय ठा मूलगुण और उत्तरगुण दोनों तरह के अमुक सीमा के दोष सेवन तक जीवनभर भी रह सकता है । इसमें शिथिलता और लापरवाही न होकर कोई कारण दशा की मुख्यता होती है । परिस्थिति, लाचारी, अशक्यता अथवा दोष का खेद, खटक मन में रहने से बकुश की अपेक्षा कुछ बडे(सीमा के) दोषों के सेवन में भी इसका स यम टिक सकता है । इस निय ठे वाला दोष प्रस ग के समाप्त होते ही शुद्धि की भावना रखता है और शुद्धि करता है । फिर भी कभी कोई प्रस ग, परि–स्थिति, ल बे समय के लिये आ जाय या आजीवन के लिये भी आ जाय तो भी इसकी सीमा का दोष होने पर यह निय ठा जीवन भर भी रह सकता है ।

प्रतिसेवना के लिये दृष्टा त– इसके लिये छिद्र वाली टकी का दृष्टा त समझना अर्थात् उसमें बोर, मोस बी आदि जितने बडे छिद्र हो जाय और उसको साधन जुटाकर ठीक करे तब कुछ समय लग सकता है और फिर छिद्र ब द कर देने से ट की पुन: व्यवस्थित हो जाती है अथवा उस ट की में खस खस जितने अत्य त छोटे कुछ छिद्र हो जाय और ठीक नहीं करे तो भी ल बे समय तक काम चल सकता है । क्यों कि ट कियों में पानी के आवक की अपेक्षा छोटे–छोटे छिद्रों से निकलने वाला पानी नगण्य हो जाता है । उसी तरह प्रतिसेवना कुशील निय ठे में अन्य ज्ञान दर्शन चरित्र की बहुत पुष्टी चालु रहे तो इसके ये कुछ दोष सेवन नगण्य होकर स यम रह जाता है ।

अत: स यम में किसी भी प्रकार का छोटा या बडा दोष लगाने वालों को इतनी सावधानी रखने की आवश्यकता है कि उस दोष के अतिरिक्त तप स यम ज्ञान आदि की शुद्ध आराधना रखे, प्ररूपणा श्रद्धा शुद्ध रखे, भावों की पूर्ण शुद्धि रखे, किसी के प्रति मलीन विचार न हो । लेश्याओं के स्वरूप को समझ कर तीन अशुभ लेश्याओं को किंचित् भी नहीं आने दे, दोष का दर्जा आगे न बढ पावे यह सदा ध्यान रखे, शुद्धि करने की भावना और

खेद रखे, तो वह साधक निय ठे के दर्जे में रह सकता है अन्यथा इन सावधानियों के न रहने पर वह अस यम में पहुँच जाता है ।

क्रमिक अपेक्षा से तो बकुश से प्रतिसेवना निय ठा ऊँचा होता है क्यों कि पुलाक से बकुश के चरित्र पर्यव अन तगुण अधिक हक्त और बकुश के उत्कृष्ट पर्यवों से प्रतिसेवना कुशील के उत्कृष्ट पर्यव अनत गुणे हक्त और अन्य अपेक्षा से दोनों आपस में **छट्ठाणवडिया** होने से व्यक्तिगत कोई बकुश किसी प्रतिसेवना कुशील से ऊँचे दर्जे में भी हो सकता है ।

इन दोनों निय ठों के अस यम में पहुँचने रूप खतरे की स्थिति सदा बनी रहती है। लेश्या अशुभ आ जाय या स यम पर्यव की वृद्धि बराबर न होवे या पुलाक के उत्कृष्ट चरित्र पर्यवों से अन तगुण अधिक स यम पर्यव न रहे तो भी अस यम दशा आ जाती है । दोष की प्रवृत्ति अपनी सीमा के क्षम्य दोष से आगे बढ जावे तो भी साधक अस यम में चला जाता है ।

जीव को प्रार भ में एक बार तो कषाय कुशील निय ठा आने पर ही फिर ये दोनों निय ठे आ सकते हक्त । इसके बाद इन दोनों का अस यम में सीधे आना-जाना हो सकता है तथा इन दोनों निय ठों का भी आपस में भी आना-जाना हो सकता है । यदि सावधानियाँ बराबर रहे तो इन निय ठों वाले अस यम में नहीं जाते हक्त । दोष का दर्जा सूक्ष्म उत्तरगुण तक रहे तो शिथिल मानसता में **बकुश निय ठा** रह जाता है और शिथिल मानस के बिना, परिस्थिति या आवश्यकता से सीमित मूलगुण या उत्तरगुण के दोष तक में **प्रतिसेवना कुशील निय ठा** रह जाता है ।

बकुश के दोष के दर्जे छोटे(सूक्ष्म) होने से शिथिलाचारता टिकती है तो प्रतिसेवना के दोष के दर्जे उससे आगे के बडे होने से शिथिलाचारता अक्षम्य होने से स यम नहीं टिक सकता है, तो पुलाक में आवेश की तीव्रता आदि कारणों से उत्तर गुण दोष हो या मूलगुण दोष हो तो अ तर्मुहूर्त से ज्यादा स यम नहीं रह सकता है ।

दोष सेवन होते हुए भी ये तीनों निय ठे अपनी सीमा में हो तो क्षम्य है और आगमकार उन्हें निर्ग्रंथ स्वीकार करते हक्त । अत: ये व दनीय है । वैमानिक के सिवाय किसी भी गति में नहीं जाते है । सीमित दोष के सिवाय स पूर्ण ज्ञान दर्शन चरित्र की आराधना में और भगवद् आज्ञा में सावधान रहने से जीवनभर भी वे निर्ग्रंथ दशा में रह सकते हक्त । खतरों से सावधानी नहीं रखे तो उनके दोष अक्षम्य हो जाने पर वे भाव से अस यम में पहुँच जाते हक्त ।

पुलाक के स यम पर्यव अत्यधिक ह्रास होने में मशक के मुख को खोलने का दृष्टा त ठीक घटित होता है । बकुश के स यम पर्यव ह्रास होने में पानी की ट की में तराडे पडने का दृष्टा त ठीक लागू पडता है और प्रतिसेवना कुशील के लिये पानी की कोठी में छिद्र होने का दृष्टा त ठीक घटित होता है और इन तीनों दृष्टा तों से इनका स्वरूप सरलता पूर्वक समझ में आ जाता है । ट की के उपर के मुख से पानी भरा जाता है वैसे ही बकुश प्रतिसेवना में स यम पर्यव रूप पानी भरता रहता है साथ ही थोडा निकलता रहता है । मशक में नीचे के मुख से पानी शीघ्र निकल जाता है और उपर के मुख से पुन: भर दिया जाता है । वैसे ही पुलाक में शीघ्र स यम पर्यव खाली होते हक्त और कुछ शेष रहने तक में वापिस कषाय कुशील में आकर स यम पर्यव का बढना चालू हो जाता है ।

प्रश्न-१८ : कषाय कुशील निय ठा का ३६ द्वारों से स्वरूप किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- (१) प्रज्ञापना द्वार- स यम ग्रहण करने के प्रार भ में प्रत्येक जीव को यही निय ठा प्राप्त होता है । इस निय ठे वाला स यम में किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगाता है और कोई भी दोष लगाने पर यह निय ठा नहीं रहता है । यदि स यम ग्रहण करते समय से ही कोई साधक मूलगुण या उत्तरगुण में दोष लगाने वाला है तो उसको यह निय ठा प्रार भ से ही नहीं आता है और इस निय ठे के आए बिना अन्य कोई भी निय ठा नहीं

आता है । अत: वैसा साधक प्रार भ से ही स यम रहित वेष मात्र का साधु बनता है ।

यह कषाय कुशील निर्ग्रंथ महाव्रत, समिति, गुप्ति, स यमाचार में किंचित् भी अतिचार या अनाचार का सेवन नहीं करता है । इस निय ठे में केवल सीमित दर्जे के क्रोधादि कषाय उत्पन्न होते हक्त एव विनष्ट हो जाते हक्त अर्थात् स ज्वलन के कषाय का उदय अप्रकट या कभी शारणा वारणा या अन्य प्रस ग से प्रगट रूप में भी हो जाता है ।

वह कषाय, कषाय तक ही सीमित रहता है, महाव्रत समिति आदि के दोष में नहीं पहुँचता है तथा स ज्वलन की सीमा का भी उल्ल घन नहीं करता है । सीमा यह है कि कषाय आने के समय वह म द या तेज कैसा भी दिखे पर ज्यादा समय नहीं टिकता है किन्तु पानी की लकीर के मिट जाने के समान शीघ्र शा त हो जाता है । पानी की लकीर बारीक भी हो सकती है एव विशाल भी हो सकती है पर तु उसकी विशेषता यही है कि वह मिटती तुर त है । उसी तरह दिखने में कषाय उग्र या म द कैसा भी दिखे किन्तु जल्दी ही दिमाग शा त हो जाये, कषाय अवस्था हट जावे, बस यही स ज्वलनता की पहिचान है ।

इस निय ठे में ६-७-८-९-१० ये पाँच गुणस्थान हो सकते हक्त। छट्ठे के सिवाय तो आगे के अप्रमत्त गुणस्थानों में प्रगट कषाय भी नहीं होते किन्तु अप्रकट उदय चालू होने से भी कषाय कुशील निर्ग्रंथ कहलाते हक्त । बकुश प्रतिसेवना निय ठे में गुणस्थान दो होते हक्त- छट्ठा और सातवाँ । पुलाक में केवल छट्ठा गुणस्थान ही होता है ।

कई दोष, दोष होते हुए भी क्षम्य दर्जे के होते हक्त उनसे इस कषायकुशील निय ठे में बाधा नहीं आती है । यथा- अनजान से दोष युक्त आहार पानी खाने-पीने में आ गया हो, रास्ते में वर्षा आ गई हो, दोष लगाने वाले की सेवा की हो या उससे स ब ध रखा गया हो इत्यादि कुछ अनजानता और परिस्थितियों के दोष नगण्य हो जाते हक्त और वहाँ यह निय ठा रह भी सकता है । उसके

सिवाय अपने-अपने दर्जे के दोष से कभी बकुश अथवा प्रतिसेवना निय ठा या अस यम आ जाता है । इस निय ठे के भी पाँच प्रकार निमित्त की अपेक्षा से कहे गये हक्त-

(१) ज्ञान कषाय कुशील- ज्ञान सीखने में, सीखाने में, प्रेरणा या प्रचार करने आदि किसी भी प्रस ग से स ज्वलन के उदय से प्रमत्त दशा में प्रकट रूप से स ज्वलन की कषाय अवस्था आ जाय, वह ज्ञान कषाय कुशील कहलाता है ।

(२) दर्शन कषाय कुशील- दर्शन श्रद्धा के विषयों को परस्पर समझने समझाने में व शुद्ध श्रद्धा की प्रेरणा-प्ररूपणा में, प्रस गवश स ज्वलन के उदय से, प्रमत्त दशा में, प्रकट रूप से स ज्वलन की कषाय अवस्था आ जाय, वह दर्शन कषाय कुशील कहलाता है ।

(३) चरित्र कषाय कुशील- चरित्र की प्रवृत्ति या सेवा कार्य करने में, कराने में इत्यादि चरित्र विधि के नियमों के निमित्त से, किसी प्रस ग में, स ज्वलन के उदय से, प्रमत्त दशा में, प्रकट रूप से स ज्वलन कषाय की अवस्था आ जाय, वह चरित्र कषाय कुशील कहलाता है ।

(४) लि ग कषाय कुशील- शुद्ध लि ग वेश भूषा से खुद रहने में, दूसरों को रखने में इत्यादि लिंग के स ब ध में या उसके उपकरणों के स ब ध में, किसी प्रस ग से, स ज्वलन के उदय से, प्रमत्त दशा में, प्रगट रूप से स ज्वलन कषाय की अवस्था आ जाय, वह लि ग कषाय कुशील कहलाता है ।

(५) यथासूक्ष्म कषाय कुशील- परिशेष विषय की अपेक्षा से शास्त्रकार यह पाँचवाँ भेद करते हक्त । अत: जिनका समावेश चार भेद में नहीं हो सकता वे इस भेद में ग्रहित हो जाते हक्त । तदनुसार जिनको किसी भी निमित्त से, प्रकट कषाय दशा न हो, केवल उदय मात्र से अप्रकट कषाय होने से छट्ठे प्रमत्त गुणस्थान वाले और ७-८-९-१० वें अप्रमत्त गुणस्थानों वाले सभी यथासूक्ष्म कषाय कुशील कहलाते हक्त । तथा किसी प्रकार के छोटे बडे अनुकूल प्रतिकूल परीषह उपसर्ग सहन नहीं होने से, खान-पान, रहन-सहन

में अपने अनुकूल प्रवृत्ति नहीं होने से, अपनी इच्छा या आज्ञा से विपरीत कार्य होने से, साथी के निमित्त से अर्थात् किसी से कोई गलती हो जाने पर इत्यादि परिशेष निमित्तों से, किसी प्रस ग में स ज्वलन के उदय से, प्रमत्त दशा में, प्रगट रूप से स ज्वलन कषाय अवस्था आ जाय, वह भी यथासूक्ष्म कषाय कुशील कहलाता है ।

इस निय ठे का कषाय स ज्वलन दशा से आगे बढ जाय या उस कषाय के कारण विनय, विवेक, स यम प्रवृत्तियों में, समिति आदि में, दोष की स्थिति हो जाय तो यह कषाय कुशील निय ठा नहीं रह सकता है, वह अन्य निय ठों में या अस यम में परिवर्तित हो जाता है । वर्तमान काल में तीन निय ठे स यम अवस्था में आ सकते हक्त, यथा- बकुश, प्रतिसेवना और यह कषायकुशील निय ठा ।**(२-३६)** वेद से अल्पबहुत्व तक का वर्णन आगे चार्ट से देखें ।

प्रश्न-१९ : निर्ग्रंथ निय ठा का ३६ द्वारों से स्वरूप किस प्रकार है ?

उत्तर- (१) प्रज्ञापना द्वार- यह निय ठा ११वें १२ वें गुणस्थान में होता है । इसमें किसी प्रकार का दोष सेवन या कषाय उदय कुछ भी नहीं होता । अकषाय दशा होने से वे साधक वीतराग कहलाते हक्त और ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षय न होने से तथा उदय होने से छद्मस्थ कहलाते हक्त । चार निय ठों के ५-५ भेद की शैली का अनुकरण करते हुए इसके भी पाँच भेद किये हक्त पर तु भेद बनने का कोई निमित्त प्रतिसेवना और कषाय तो यहाँ नहीं रहे हक्त । किसी के कषाय पूर्ण उपशा त है, किसी के पूर्ण क्षय है । किन्तु यह निय ठा अशाश्वत है, इसलिये उस अपेक्षा को लेकर इसके पाँच भेद किये हक्त । वे इस प्रकार हक्त-

(१) किसी समय एक भी निर्ग्रंथ लोक में नहीं होते हक्त और होते हक्त तो किसी विवक्षित समय में सभी सिर्फ प्रथम समयवर्ती होते हक्त (२) किसी विवक्षित समय में सभी सिर्फ अप्रथम समयवर्ती होते हक्त अथवा (३) किसी विवक्षित समय में सभी केवल चरम समयवर्ती होते हक्त (४) किसी विवक्षित समय में सभी केवल अचरम समयवर्ती ही होते हक्त और (५) किसी विवक्षित समय में द्विस योगी आदि भ ग

से भी होते हक्त । इस तरह पाँच भेदों का अर्थ समझना चाहिए ।

पाँच की स ख्या मिलाने की शैली के अतिरिक्त व्यक्ति की अपेक्षा भी इसके अनेक प्रकार से दो दो भेद हो सकते हक्त और सरलता से समझ में भी आ सकते हक्त, यथा- उपशा त कषाय निर्ग्रंथ और क्षीण कषाय निर्ग्रंथ **अथवा** प्रथम समय का निर्ग्रंथ और अप्रथम समय का निर्ग्रंथ । **ऐसे ही** चरम समय का निर्ग्रंथ और अचरम समय का निर्ग्रंथ । इस प्रकार व्यक्तिगत अपेक्षा से तो दो दो भेद ही बन सकते हक्त । सूत्रोक्त पाँच भेद तो अशाश्वतता को ध्यान में लेकर स सार के समस्त जीवों की अपेक्षा है । जो उपरोक्त तरीके से बन भी जाते हक्त और समझ में भी आ जाते हक्त । वे सूत्रोक्त पाँच भेद इस प्रकार हक्त- १. प्रथम समयवर्ती निर्ग्रंथ २. अप्रथम समयवर्ती निर्ग्रंथ ३. चरम समयवर्ती निर्ग्रंथ ४. अचरम समयवर्ती निर्ग्रंथ ५. यथासूक्ष्म निर्ग्रंथ अर्थात् द्विस योगी आदि अवस्थाएँ ।**(२-३६)** वेद द्वार से अल्पबहुत्व तक का वर्णन आगे चार्ट से देखें ।

प्रश्न-२१ : स्नातक निय ठा का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर- (१) प्रज्ञापना द्वार- चार घातीकर्म के स पूर्ण क्षय हो जाने पर यह निय ठा आता है और केवलज्ञान, केवलदर्शन युक्त दो गुणस्थान(१३-१४) में पाया जाता है । यहाँ पर भेद बनने में कोई दोष का निमित्त भी नहीं है, कषाय का निमित्त भी नहीं है तथा अशाश्वतता भी नहीं है अर्थात् यह निय ठा शाश्वत है । इस निय ठे वालों में एक ही स यम स्थान समान रूप से होता है, आत्मगुण ज्ञान- दर्शन भी सब का समान होता है । अत: भेद बनने में कोई भी कारण नहीं है । फिर भी ५ की स ख्या शैली का अनुसरण करते हुए शास्त्रकार ने ५ प्रकार कहे हक्त, तो वे अलग-अलग पाँच गुणों के स ग्राहक रूप में ही है किन्तु भेद रूप नहीं है, यथा-

(१) अछवि- योग निरोध अवस्था में काय योग के अभाव में यह गुण प्रगट होता है । **(२)** असबले- स पूर्ण दोष रहित स यम अवस्था ही प्रार भ से होती है । **(३)** अकम्म से- चार घाती कर्म से रहित

अवस्था प्रार भ से ही होती है । **(४)** स सुद्धणाणद सण धरे– प्रार भ से विशुद्ध ज्ञान दर्शन के धारी होते हक्त । **(५)** अपरिश्रावी– इस निर्ग्रंथ के योग निरोध करने के बाद जब शाता वेदनीय का ब ध भी रूक जाता है तब अक्रिय अवस्था प्राप्त होती है । **(२–३६)** वेद द्वार से अल्पबहुत्व तक का वर्णन आगे चार्ट से देखें ।

प्रश्न–२१ : इस निय ठा प्रकरण में स क्षिप्त में क्या ज्ञेय हेय उपादेय शिक्षा मिलती है और इनमें गुणस्थान कौन कौन से होते हक्त ?

उत्तर– प्रस्तुत वर्णन में यह बताया गया है कि बकुश और प्रतिसेवना दोनों दोष लगाने वाले निय ठे लोक में शाश्वत रहते हक्त एव कम से कम भी अनेक सौ करोड सदा मिलते हक्त ।

इससे स्पष्ट होता है कि महाविदेह क्षेत्र में भी मूलगुण और उत्तरगुण में दोष लगाने वाले निर्ग्रंथ कम से कम अनेक सौ करोड शाश्वत मिलते हक्त जिन्हें यह भगवती आगम, निर्ग्रंथ रूप में स्वीकार करता है और जो निर्ग्रंथ होते हक्त उनमें छट्ठा गुणस्थान या उससे उपर के कोई भी गुणस्थान होते हक्त । अत: वे सभी मूलगुण उत्तरगुण के दोषी निर्ग्रंथ भी व दनीय निर्ग्रंथ है, यदि वे उपरोक्त बकुश प्रतिसेवना निर्ग्रंथ की सूक्ष्म और स्थूल सभी परिभाषाओं में सत्य सिद्ध हो सके। अत: प्रत्येक साधक को इस विशद विवेचन से सही तत्त्व समझ कर आत्म निरीक्षण करना चाहिए एव सही प्ररूपण ही करना चाहिए । झूठ ही किसी को साधु या असाधु की छाप नहीं लगा देनी चाहिये । साथ ही स यम आराधना करनी हो तो इस विशद विवेचन में सूचित सावधानियों का सतर्कता से आचरण करना चाहिये ।

गुणस्थान– (१) पुलाक में छठा गुणस्थान होता है । (२–३) बकुश प्रतिसेवना में छठा–सातवाँ दो गुणस्थान होते हक्त । (४) कषाय कुशील में ६ से १० तक के पाँच गुणस्थान होते हक्त । (५) निर्ग्रंथ में ११ वाँ १२ वाँ दो गुणस्थान होते है। (६) स्नातक में १३–१४वाँ दो गुणस्थान होते है । मूलपाठ में गुणस्थान द्वार अलग

नहीं है फिर भी ३६ द्वारों के वर्णन से ऐसा ही फलित होता है ।

छ : निय ठो का ३६ द्वारो से स क्षिप्त विवरण :–

सूचना : चार्ट गत कोई निर्देश समझ में न आवे तो उपरोक्त प्रश्नों को पुन: ध्यान से पढ़ कर समझने का प्रयत्न करना चाहिये तथा चार्ट के बाद टिप्पण भी पढ़कर समझने का प्रयत्न करेंगे ।

द्वार	पुलाक	बकुश	प्रतिसेवना	कषाय कुशील	निर्ग्रन्थ	स्नातक
१ प्रज्ञापना भेद[१]	ज्ञानादि ५	आभोगादि ५	ज्ञानादि ५	ज्ञानादि ५	पढम आदि ५	५ गुण
२ वेद	२	३	३	३+अवेदी	अवेदी	अवेदी
३ राग	सरागी	सरागी	सरागी	सरागी	वीतरागी	वीतरागी
४ कल्प[२]	३	४	४	५	३	३
५ चारित्र[३]	२	२	२	४	१	१
६ प्रतिसेवना[४]	२	१	२	अप्रतिसेवी	=	=
७ ज्ञान	३	३	३	४	४	१
७ श्रुत[५-६]	९ पूर्वमें न्यून/पूर्ण	१० पूर्व	१० पूर्व	१४ पूर्व	१४ पूर्व	श्रुत व्यतिरिक्त
८ तीर्थ	तीर्थ में	तीर्थ में	तीर्थ में	दोनों में	दोनों में	दोनों में
९ लि ग द्रव्य/भाव	३/१	३/१	३/१	३/१	३/१	३/१
१० शरीर	३	४	४	५	३	३
११ क्षेत्र जन्म	१ (कर्मभूमि)	१	१	१	१	१
११ स हरण	नहीं[७]	२	२	२	२	२
१२ काल	३	३	३	३	३	३
१२ अव–सर्पिणी[९] जन्म/सद्भाव	३-४ आरा / ३–४–५	३–४–५	३–४–५	३–४–५	३–४ / ३–४–५	३–४ / ३–४–५
१२ उत्सर्पिणी जन्म/सद्भाव	२-३-४/ ३-४	=	=	=	=	=

द्वार	पुलाक	बकुश	प्रतिसेवना	कषाय कुशील	निर्ग्रन्थ	स्नातक
१२ स हरण	x	सर्वत्र[८]	=	=	=	=
१२ नो उत्सर्पिणी०[९] जन्म/स हरण	१(महा विदेह)/ x	१/४ पलिभाग	=	=	=	=
१३ गति	१ से ८ देवलोक	१ से १२ देवलोक	=	वैमानिक सभी(३५)	५ अणुत्तर देव	मोक्ष
१३ स्थिति	२ पल्य/ १८ सागर	२ पल्य/ २२ सागर	२/पल्य २२ सागर	२/पल्य ३३ सागर	३३ सागर	सादि अन त
१३ पदवी	४	४	४	५	१	x
१४ स यम स्थान	अस ख्य	=	=	=	१	१
१४ अल्प बहुत्व	२ अस . गुणा	३ =	४ =	५ =	१ अल्प	१ अल्प
१५ पर्यव	अन त	=	=	=	=	=
१५ पुलाक पर्यव	छट्ठाण[१०] वडिया	अन तवा भाग	=	छट्ठाण वडिया	अन तवा भाग	=
१५ बकुश प्रतिसेवना पर्यव	अन त गुण	छट्ठाण	=	=	अन तवा भाग	=
१५ कषाय कुशील	छट्ठाण	=	=	=	अन तवा भाग	अन तवा भाग
१५ निर्ग्रन्थ स्नातक	अन त गुण	=	=	=	तुल्य	तुल्य
१५ अल्पबहुत्व[११]	१/२	३/४	३/५	१/६	७ अन त गुणा	=
१६ योग	३	३	३	३	३	३/अयोगी
१७ उपयोग	२	२	२	२	२	२
१८ कषाय	४	४	४	४,३,२,१	अकषायी	=
१९ लेश्या	३	३	३	६	१	१/अलेशी
२० परिणाम	३	३	३	३	२	२

द्वार	पुलाक	बकुश	प्रतिसेवना	कषाय कुशील	निर्ग्रन्थ	स्नातक
२० वर्धमान स्थिति	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	=	=	=	अ तर्मुहूर्त	=
२० हायमान स्थिति	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	=	=	=	x	x
२० अवस्थित स्थिति	१ समय/ ७ समय	=	=	=	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त/ उ.देशोन करोडपूर्व
२१ कर्म ब ध	७	७-८	७-८	७-८-६	१	१/अब ध
२२ उदय (वेदन)	८	८	८	८	७	४
२३ उदीरणा[१२]	६	७,८,६	७,८,६	७,८,६,५	५,२	२/अनुदीरणा
२४ उवस पदा (गत) स यम आदि में	२ कषायकु० अस यम	४ ३ निय ठा अस यम	४ =	६ ५ निय ठा अस यम	३	मोक्ष
२५ स ज्ञा	नो स ज्ञो- पयुक्त	५	५	५	नो स ज्ञो पयुक्त	=
२६ आहार	आहारक	=	=	=	=	दोनों
२७ भव ज/उ	१/३	१/८	१/८	१/८	१/३	१/मोक्ष
२८ आकर्ष १ भव में	१/३ बार	१/अनेक सौ बार	=	=	१/२	१
अनेक भव में	२/७ बार	२/अनेक हजार	=	=	२/५	१
२९ स्थिति १ जीव	अ तर्मुहूर्त	१ समय/ देशोन करोड पूर्व	=	=	१ समय अ तर्मुहूर्त	अत/ देशोन करोडपूर्व
अनेक जीव	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	शाश्वत	=	=	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	शाश्वत
३० अ तर एक जीव	ज. अ तर्मु. उ. अर्द्ध पुद्‌गल.	=	=	=	=	x

द्वार	पुलाक	बकुश	प्रतिसेवना	कषाय कुशील	निर्ग्रन्थ	स्नातक
अनेक जीव	ज. एक समय उ. स ख्य वर्ष	X	X	X	ज. १ समय उ.६ मास	X
३१ समुद्घात	३ क्रमशः	५	५	६	X	१
३२ क्षेत्र (अवगाहन)	अस ख्यांश लोक	=	=	=	=	सर्व लोक आदि अस . लोक
३३ स्पर्शना	अस ख्यांश लोक साधिक	=	=	=	=	सर्व लोक आदि अस ख्यांश लोक
३४ भाव	क्षयोपशम भाव	=	=	=	२ भाव	क्षायिक भाव
३५ परिमाण नये	०/१/ अनेक सौ[१३]	=	=	०/१/ अनेक हजार	०/१/ १६२	०/१/ १०८
३५ नये पुराने	०/अनेक हजार	अनेक सौ करोड	=	अनेक हजार करोड	०/१/ अनेक सौ.	अनेक करोड
३६ अल्प बहुत्व	२ स ख्य गुणा	४ =	५=	६=	१ अल्प	३ स ख्य गुणा

टिप्पण :-(१)पुलाक आदि के ५-५ प्रकार उपर के प्रश्न-१३ से २० तक में समझाये गये है । (२) पुलाक में स्थित, अस्थित और स्थविर ये तीन कल्प हक्त । निर्ग्रन्थ स्नातक में- स्थित, अस्थित और कल्पातीत ये तीन कल्प हक्त । जहाँ पर चार कल्प हक्त, वहा पर कल्पातीत नहीं है । (३) जहाँ बराबर (=) का चिन्ह है उसका अर्थ है उसके पूर्ववर्ती निय ठे के समान है, यथा-प्रतिसेवना द्वार में निर्ग्रंथ में बराबर का चिन्ह है तो वह कषाय कुशील के समान अप्रतिसेवी जानना । इसी प्रकार सर्वत्र सभी चार्टो में ऐसा ही समझना (४) चारित्र द्वार में जो भी स ख्या है, वे चारित्र क्रमशः जानना । (५) पुलाक का जघन्य श्रुतज्ञान ९ वें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु(तीसरा अध्याय) है अर्थात्

८ पूर्वों का ज्ञान स पूर्ण और ९ वें पूर्व का अध्ययन चलता हो उसे पुलाक लब्धि हो सकती है । उत्कृष्ट स पूर्ण ९ पूर्व के ज्ञान वाला पुलाक लब्धि का प्रयोग कर सकता है । ९ पूर्व से अधिक ज्ञान वाले, पुलाक लब्धिप्रयोग नहीं करते हक्त और करे तो ९ पूर्व से अधिक का क्षयोपशमिक ज्ञान घट कर ९ पूर्व में आ जाता है । (६) बकुश आदि में जघन्य श्रुत आठ प्रवचनमाता का है चार्ट में केवल उत्कृष्ट ही दिया है । (७) पुलाक का स हण नहीं होता है इसका तात्पर्य यह है कि अकर्मभूमि या अन्य अकर्मक आरों के स्थान पर पुलाक लब्धि सम्पन्न साधु का स हरण कर भी दे तो वहाँ लब्धिप्रयोग का प्रस ग नहीं आता है इस अपेक्षा स हरण का निषेध समझना चाहिये । किन्तु किसी पुलाक लब्धिसम्पन्न अणगार को भरत क्षेत्र के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में कोई देव स हरण करके रख दे तो वहाँ आवश्यक होने पर वह अणगार पुलाक लब्धि का प्रयोग कर सकता है । निषेध करने का आशय लब्धिप्रयोग के अयोग्य अन्य क्षेत्र एव आरे हक्त । उन्हीं की अपेक्षा समझना चाहिये । (८) स हरण की अपेक्षा **सर्वत्र** कहने का आशय है ६ ही आरे और चारों पलिभाग में पावे । (९) नोउत्सर्पिणी॰ का मतलब, नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी= महाविदेह क्षेत्र और ६ अकर्म भूमि के तीन पलिभाग । (१०) छट्ठाणवडिया का अर्थ उपर प्रश्न-१४ में दिया गया है । १५ वें पर्यव द्वार के चार्ट में ६ ही निय ठों की ६ निय ठों से पर्याय की तुलना अलग अलग बताई गई हक्त । **द्वार** के कालम में कहा गया पुलाक आदि, छहों कोलम में कहे गये पुलाक आदि से-ऐसा समझना ।(११) प द्रहवें द्वार में पर्यव की अल्पबहुत्व कहीं है । वहाँ १/२ का मतलब जघन्य पर्यव/उत्कृष्ट पर्यव है अर्थात् पुलाक का जघन्य सबसे अल्प है और उत्कृष्ट दूसरे नम्बर में अन तगुणा है । १/६ का मतलब है कषाय कुशील के जघन्य पर्यव सबसे अल्प है एव पुलाक के जघन्य से तुल्य है और उत्कृष्ट पर्यव का अल्पबहुत्व में छट्ठा नम्बर है और अन तगुण तो स्वतः ही समझ लेना । इसीप्रकार ३/४ और ३/५ का मतलब भी समझ लेना । जो १ या ३ या ७ दो दो बार अ क दिये जाते हक्त उनका मतलब है कि वे आपस में तुल्य है उनका अल्पाबहुत्व का नम्बर एक समान है । (१२) उदीरणा में ७ कर्म=आयु नहीं। ६ कर्म=वेदनीय नहीं । ५ कर्म= मोहनीय नहीं । २ कर्म= नाम और गौत्र कर्म । (१३) परिणाम द्वार में ०/१/ अनेक सौ=इसमें शून्य (०/) का मतलब है कि कभी उस निय ठे में एक भी नहीं होता है तथा एक (१/) का मतलब जघन्य १-२-३ । फिर 'अनेक सौ' का मतलब उत्कृष्ट इतने हो

सकते हक्त । नये का मतलब प्रतिपद्यमान=उस निय ठे में नये प्रवेश करने वाले । नये पुराने का मतलब=पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् कुल कितने होते हक्त । नये पुराने में जहाँ शून्य नहीं है वे उतने सदा शाश्वत मिलते हक्त । **॥चार्टगत टिप्पण समाप्त॥**

प्रश्न–२२ : कल्प द्वार में २+३=५ कल्प कहे गये है, उनका स्वरूप क्या है ।

उत्तर– १. **स्थित कल्प**– इस कल्प में १० कल्पों का पूर्ण रूप से नियमत: पालन किया जाता है । **२. अस्थित कल्प**– इस कल्प में चार कल्पों का पूर्ण रूप से पालन किया जाता है और शेष ६ कल्पों का वैकल्पिक पालन होता है अर्थात् किसी कल्प की कुछ अलग व्यवस्था होती है और किसी कल्प का पालन ऐच्छिक निर्णय पर होता है । **३. स्थविर कल्प**– इस कल्प में स यम के सभी छोटे–बड़े नियम–उपनियमों का उत्सर्ग रूप से (सामान्यतया) पूर्ण पालन किया जाता है और विशेष परिस्थिति में गीतार्थ–बहुश्रुत की स्वीकृति से अपवाद सेवन किया जाता है अर्थात् सकारण स यम मर्यादा से बाह्य आचरण करके उसका आगमोक्त प्रायश्चित्त लिया जाता है एव परिस्थिति समाप्त होने पर पुन: शुद्ध स यम का पालन किया जाता है; ऐसे उत्सर्ग और अपवाद के वैकल्पिक आचरण वाला यह कल्प 'स्थविर कल्प' है । इस कल्प में गीतार्थ बहुश्रुत की आज्ञा से शरीर एव उपधि का परिकर्म भी किया जा सकता है । **४. जिन कल्प**– जिन का अर्थ होता है राग द्वेष के विजेता वीतराग । अत: जिस कल्प में शरीर के प्रति पूर्ण वीतरागता के तुल्य आचरण होता है वह जिनकल्प कहा जाता है । इस कल्प में स यम के नियम–उपनियमों में किसी प्रकार का अपवाद सेवन नहीं किया जाता है । इसके अतिरिक्त इस कल्प में शरीर एव उपकरणों का किसी प्रकार का परिकर्म भी नहीं किया जा सकता है । अर्थात् निर्दोष औषध–उपचार करना, कपडे–धोना, सीना, आदि भी नहीं किया जाता है । रोग आ जाय, पाँव में काँटा लग जाय, शरीर के किसी अ ग में चोट लग जाय, खून बहे, तो भी कोई उपचार नहीं किया जाता है । ऐसी शारीरिक वीतरागता धारण जिसमें की जाती है, वह 'जिनकल्प' है । **५. कल्पातीत**– जो

शास्त्राज्ञाओं मर्यादाओं प्रतिब धो से परे हो जाते हक्त, मुक्त हो जाते हक्त । अपने ही ज्ञान और विवेक से आचरण करना जिनका धर्म हो जाता है । ऐसे पूर्ण योग्यता सम्पन्न साधकों का आचार 'कल्पातीत' (अर्थात् उक्त चारों कल्पों से मुक्त) कहा जाता है । तीर्थंकर एव उपशा त वीतराग, क्षीण वीतराग (११–१२–१३–१४ वें गुणस्थान वाले) आदि कल्पातीत होते हक्त । तीर्थंकर भगवान के अतिरिक्त छद्मस्थ, मोहकर्म युक्त कोई भी साधक कल्पातीत नहीं होते हक्त, आगम विहारी हो सकते हक्त ।

दस कल्प :– स्थितकल्प वालों के दस कल्प इस प्रकार हक्त–

(१) अचेल कल्प– मर्यादित एव अल्प मूल्य वाले सफेद वस्त्र रखना तथा पात्र आदि अन्य उपकरण भी मर्यादित रखना अर्थात् जिस उपकरण की गणना और माप जो भी सूत्रों में बताया है उसका पालन करना और जिनका माप सूत्रों में स्पष्ट नहीं है उनकी बहुश्रुतों के द्वारा निर्दिष्ट मर्यादानुसार पालन करना, यह 'अचेलकल्प' है ।

(२) औद्देशिक– समुच्चय साधु समूह के निमित्त बनी वस्तु (आहार मकान आदि) औद्देशिक होती है । व्यक्तिगत निमित्त वाली वस्तु आधाकर्मी होती है । जिस कल्प में औद्देशिक का त्याग करना प्रत्येक साधक को आवश्यक होता है, वह औद्देशिक कल्प कहा जाता है ।

(३) राजपिंड– मुकुटब ध अन्य राजाओं द्वारा अभिषिक्त हो ऐसे बडे राजाओं के घर का आहार राजपिंड कहा जाता है तथा उनका अन्य भी अनेक प्रकार का राजपिंड निशीथ सूत्र आदि में बताया गया है, उसे ग्रहण नहीं करना, यह 'राजपिंड' नामक तीसरा कल्प है ।

(४) शय्यातर पिंड– जिसके मकान में श्रमण–श्रमणी ठहरते हक्त वह शय्यातर कहलाता है । उसके घर का आहार, वस्त्र आदि शय्यातर पिंड कहलाते हक्त, उन्हें ग्रहण नहीं करना 'शय्यातर पिंड' कल्प है ।

(५) मासकल्प– श्रमण एक ग्रामादि में २९ दिन से ज्यादा न रहे और श्रमणी ५८ दिन से ज्यादा न रहे इसे 'मासकल्प' कहते हक्त ।

(६) चौमासकल्प – आषाढी पूनम से कार्तिक पूनम तक आगमोक्त

कारण बिना विहार नहीं करना किन्तु एक ही जगह स्थिरता पूर्वक रहना यह 'चौमासकल्प' है ।

(७) व्रतकल्प– पाँच महाव्रत एव छट्ठे रात्रि भोजन व्रत का पालन करना या चातुर्याम धर्म का पालन करना 'व्रतकल्प' है ।

(८) प्रतिक्रमण– सुबह शाम दोनों वक्त नियमित प्रतिक्रमण करना यह 'प्रतिक्रमण' कल्प है ।

(९) कृति कर्म– दीक्षा पर्याय से वडील को प्रतिक्रमण आदि यथा समय व दन करना 'कृतिकर्म कल्प' है ।

(१०) पुढष ज्येष्ठ कल्प– कोई भी श्रमण (पुढष) किसी भी श्रमणी (स्त्री) के लिये, ज्येष्ठ ही होता है अर्थात् व दनीय ही होता है । अत: छोटे-बड़े सभी श्रमण, साध्वी के लिये बड़े ही माने जाते हक्त और तदनुसार ही यथासमय विनय, व दन-व्यवहार किया जाता है और साधु कोई भी दीक्षापर्याय वाला हो वह साध्वी को व्यवहार व दन नहीं करता है यह 'पुढष ज्येष्ठ' नामक दसवाँ कल्प है ।

ये १० कल्प प्रथम और अ तिम तीर्थंकर के शासन में पालन करने आवश्यक है अर्थात् उन श्रमणों के ये उक्त दसों नियम पूर्णरूपेण लागू होते हक्त । शेष २२ मध्यम तीर्थंकरों के शासन में एव महाविदेह क्षेत्र में ६ कल्प वैकल्पिक होते हक्त, उनकी व्यवस्था इस प्रकार है-

१-अचेलकल्प : स्वमति निर्णय अनुसार वस्त्र पात्र हीनाधिक मात्रा में अल्पमूल्य, बहुमूल्य जैसा भी समय पर मिले, लेना चाहे, ले सकते हक्त । र गीन लेने का कथन अयोग्य है, वैसा अर्थ नहीं करना चाहिये । क्यों कि ऐसा करने में स्वलिंगता में अव्यवस्था होती है । अन्य धर्म में भी भगवा र ग आदि एक ही प्रकार के वस्त्र होते हक्त ।

२-औद्देशिक : अनेक साधु समुह के उद्देश्य से बना आहार व्यक्तिगत कोई श्रमण लेना चाहे तो ले सकता है । यदि उसके लिये ही किसी ने बनाया हो वैसा आधाकर्मी नहीं ले सकता है ।

३-राजपिंड : इच्छानुसार यथा प्रस ग ले सकते हक्त ।

४-मासकल्प : आवश्यक लगे तो २९ दिन से अधिक भी इच्छानुसार ठहर सकते हक्त ।

५-चौमासकल्प : आवश्यक लगे तो भादवा सुद ५ के पूर्व तक विहार कर सकते हक्त । प चमी के दिन से कार्तिक सुदी १५ तक विहार नहीं करना, इतने नियम का पालन करते हक्त ।

६-प्रतिक्रमण : आवश्यक लगे तो सुबह शाम प्रतिक्रमण कर लेना और आवश्यक न लगे तो नहीं करना किन्तु पक्खी चौमासी स वत्सरी के दिन शाम का प्रतिक्रमण अवश्य करना ।

इस प्रकार की व्यवस्था वाले ये ६ वैकल्पिक कल्प हक्त । मध्यम तीर्थंकर के साधुओं का इस प्रकार वैकल्पिक- 'अस्थित कल्प' कहा गया है और प्रथम-अ तिम तीर्थंकर के श्रमणों के इन दस ही कल्पों का पालन आवश्यक होना 'स्थित कल्प' कहा गया है ।

अस्थित कल्प वालों के लिये चार आवश्यक करणीय कल्प ये हक्त- **१. शय्यातर पिंड**– मकान मालिक का आहारादि नहीं लेना । **२. व्रत**– महाव्रत, चातुर्याम एव अन्य व्रत नियम समिति गुप्ति आदि का आवश्यक रूप से पालन करना । **३. कृति कर्म**– दीक्षा पर्याय के क्रम से विनय, व दन-व्यवहार करना आवश्यक होता है । **४. पुढष ज्येष्ठ**– श्रमणियों के लिये सभी श्रमणों को ज्येष्ठ पूजनीय मान कर विनय, व दन-व्यवहार करना आवश्यक कल्प होता है । श्रमणों को भी पुढष ज्येष्ठ कल्प का ध्यान रखकर ही साध्विओं के साथ योग्य सन्मान समादर का व्यवहार करना होता है । व्यवहारिक व दन नहीं किया जाता है ।

ये दशों कल्प यहाँ भगवती सूत्र में स्थित कल्प में समाविष्ट किये गये हक्त ।

प्रश्न-२३ : पुढष ज्येष्ठ नामक चौथे कल्प की (बडी साध्वी छोटे साधु को व दन करे) एका तिकता उचित है क्या ?

उत्तर– यह आर्य स स्कृति का अनादि नियम है । भारतीय धर्म सिद्धान्तों में कहीं भी श्रमणियाँ श्रमणों के लिये व दनीय नहीं कही गई है । अत: यह भारतीय स स्कृति का लौकिक व्यवहार है । इसी कारण इस नियम को मध्यम तीर्थंकरों के शासन में भी वैकल्पिक नहीं बताकर आवश्यकीय नियमों में बताया है । अत: पुढष ज्येष्ठ का व्यवहार

करने का अनादि धर्म सिद्धा त ही लौकिक व्यवहार के अनुगत है । ऐसा ही सर्वज्ञों ने उपयुक्त देखा है । इसी सिद्धा त से लोक व्यवहार एव व्यवस्था सु दर ढ ग से चली आ रही है । इस आगमिक सिद्धा त का मतलब यह नहीं है कि साध्वी स घ का आदर नहीं होता है ।

श्रमण निर्गंथ गृहस्थों की किसी प्रकार की सेवा नहीं कर सकते किन्तु श्रमणी की आवश्यकीय स्थिति में वह हर सेवा के लिये तत्पर रहता है । वह सेवा- "गोचरी लाना, स रक्षण करना, उठाकर अन्यत्र पहुँचा देना, कहीं गिरते, पड़ते, घबराते वक्त सहारा देना या पानी में साध्वी बहती हो तो तैर कर निकाल देना" आदि सूत्रों में अनेक प्रकार की कही गई है । इन अनेक कार्यों की शास्त्र में आज्ञा है एव भाव व दन-नमस्कार में श्रमण भी सभी श्रमणियों को नमस्कार म त्र में व दन-नमस्कार करते हक्त । पुढष ज्येष्ठ कल्प मात्र लौकिक व्यवहार के लिये ही तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट है, उसकी अवहेलना- अवज्ञा करना श्रद्धालु बुद्धिमानों को योग्य नहीं होता है । व्यवहार की जगह व्यवहार है और निश्चय (भाव) की जगह निश्चय (भाव) है । यही पुढष ज्येष्ठ कल्प को समझने का सार है ।

आर्य स स्कृति में शादी होने पर पुढष के घर स्त्री आती है किन्तु स्त्री के घर पुढष नहीं जाता है, इसे ही उपयुक्त समझकर पालन किया जाता है, किंतु इसे स्त्री के साथ अन्याय नहीं कहा जाता । वैसे ही पुढष ज्येष्ठ कल्प को स्त्री के साथ अन्याय नहीं कहकर जिनाज्ञा समझकर श्रद्धान के साथ पालन किया जाता है वह उचित ही है ।

प्रश्न-२४ : छट्ठा प्रतिसेवना द्वार, बारहवाँ काल द्वार, तेरहवाँ गति द्वार, चौदहवाँ स यम द्वार, प द्रहवाँ स न्निकर्ष द्वार, चौवीसवाँ उवस पदा द्वार और बत्तीसवाँ क्षेत्र द्वार इत्यादि इन द्वारों का तात्पर्य और प्रास गिकता क्या है ?

उत्तर- छट्ठा प्रतिसेवना द्वार- स यम के मूलगुण- पाँच महाव्रत एव छट्ठा रात्रि भोजन त्याग व्रत है । उत्तरगुण में- स्वाध्याय, तप एव नियमोपनियम है । इन मूलगुण और उत्तरगुण के आचार में दोष लगाना, इनकी मर्यादाओ का भ ग करना प्रतिसेवना= विपरीत आचरण, कहलाता है । इस प्रकार प्रतिसेवना दो प्रकार की है - १. मूलगुण

प्रतिसेवना २. उत्तरगुण प्रतिसेवना । किसी भी मर्यादा का भ ग नहीं करना, दोष नहीं लगाना 'अप्रतिसेवना' कहा जाता है । ऐसा साधक या उसका निय ठा-चारित्र 'अप्रतिसेवी' कहलाता है ।

बारहवाँ काल द्वार- इसके तीन प्रकार है- १. उत्सर्पिणी २. अवसर्पिणी ३. नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी । इनके पुनः क्रमशः ६-६ और चार भेद हक्त अर्थात् उत्सर्पिणी के ६ आरे हक्त अवसर्पिणी के भी ६ आरे हक्त । नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी के ४ प्रकार - १. पहले आरे के प्रार भ के समान, २. दूसरे आरे के प्रार भ के समान, ३. तीसरे आरे के प्रार भ के समान, ४. चौथे आरे के प्रार भ के समान काल एव भाव जहाँ हो । वे चार प्रकार के क्षेत्र क्रमशः ये हक्त- १. देवकुरू- उत्तरकुरू २. हरिवास-रम्यग्वास ३. हेमवत-हेरण्यवत ४. महाविदेह क्षेत्र । इन क्षेत्रों में जन्म, सद्भाव (होना) और स हरण यों तीन अपेक्षा से निर्ग्रंथ या स यत का वर्णन किया जाता है ।

तेरहवाँ गति द्वार- इस द्वार में ३ विभाग हक्त- (१) कहाँ जावे-सभी निय ठे वैमानिक में ही जावे । २. कितनी स्थिति पावे- दो पल्योपम (या अनेक पल्योपम) से लेकर ३३ सागर तक यथायोग्य स्थिति प्राप्त होती है । (३) कितनी पदवी पावे- इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिंशक, लोकपाल और अहमेन्द्र ये पाँच पदवियाँ है । इसमें से आराधना वाले को ही यथा योग्य पदवी प्राप्त होती है, विराधना करने वाले को ये पदवियाँ प्राप्त नहीं होती है ।

निर्ग्रंथ की गति की पृच्छा होते हुए भी आराधना विराधना का विकल्प निकटतम भूत या भविष्य काल की अपेक्षा समझना चाहिये अर्थात् नियमतः प्रतिसेवी कहे गये निय ठे अ तिम समय में शुद्धि करले तो उस निय ठे में आराधना का विकल्प समझना और अप्रतिसेवी निर्ग्रंथ अ तिम समय किसी प्रतिसेवना अवस्था में आ जाय, तो वह उस अप्रतिसेवी निय ठे के विराधना का विकल्प गिना जायेगा । यह आराधना विराधना का विकल्प पदवी प्राप्ति के प्रश्न के उत्तर में है । मूल पृच्छा में निर्ग्रंथों की गति केवल वैमानिक की ही कही है । अतः आराधना विराधना के विकल्प वाले भी निर्ग्रंथ तो हक्त ही, उन्हें निर्ग्रंथ अवस्था से बाहर वाला नहीं समझा जा

सकता । क्योंकि तीन गति और तीन देवों का स्पष्ट निषेध सूत्र में पहले ही कर दिया गया है । फिर पदवी की पृच्छा है, अत: विराधना के विकल्प में पदवी रहित अवस्था भी वैमानिक देवों की ही समझना । भवनपति आदि इस निर्ग्रंथों की गति द्वार के अविषय भूत हक्त, अत: उन्हें यहाँ नहीं समझना चाहिये ।

चौदहवाँ स यमस्थान द्वार– स यम की शुद्धि एव अध्यवसायों की भिन्नताओं से स यम स्थानों की तारतम्यता होती है । उसके अनेक दर्जे बनते हक्त । वे स यम के विभिन्न दर्जे ही 'स यम स्थान' कहे गये हक्त । कुल स यम स्थान अस ख्य होते हक्त । कषाय रहित अवस्था हो जाने के बाद स यम स्थान स्थिर हो जाते हक्त अर्थात् अकषाय वालों के एक ही स यम स्थान होता है । अत: निर्ग्रंथ और स्नातक के स यम स्थान एक ही होता है ।

प द्रहवाँ स निकर्ष (पर्यव) द्वार– स यम के पर्यव को 'निकर्ष' कहा गया है । स यम परिणामों के विभागों-दर्जों को पूर्व द्वार में स यम स्थान कहा गया है और स यम धन का, स यम गुणों का, स यम भावों का जो स चय आत्मा में होता है, वे स यम के पर्यव कहे जाते हक्त अर्थात् स यम से उपलब्ध आत्म विकास को, आत्मगुणों की उपलब्धि और उनके स चय को ही पर्यव कहा जाता है । ऐसे स यम पर्यव अन त होते हक्त । उसमें भी प्रत्येक निय ठे के जघन्य और उत्कृष्ट पर्यव होतेहक्त । उस अन त में भी अन त गुण अ तर हीनाधिकता हो सकती है, जिसे 'छट्‌ठाणवडिया' कहा जाता है । छट्‌ठाणवडिया आदि का अर्थ प्रज्ञापना पद ५ सारा श में बताया गया है और यहाँ भी प्रश्न-१४ में **छट्ठाणवडिया** का स्पष्टीकरण दिया गया है ।

अल्पबहुत्व : कषाय कुशील के जघन्य पर्यव सब से अल्प होते हक्त (नई दीक्षा के समय)। पुलाक के जघन्य पर्यव भी उतने ही होते हक्त । उससे पुलाक के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे बकुश-प्रतिसेवना के जघन्य पर्यव अन तगुणे और परस्पर तुल्य होते हक्त । उससे बकुश के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे प्रतिसेवना कुशील निर्ग्रंथ के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे कषायकुशील निर्ग्रंथ के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे निर्ग्रंथ-स्नातक के अजघन्य अनुत्कृष्ट(एक समान) पर्यव अन त

गुणे हक्त । पूर्व के चार निय ठों के पर्यव स्वय की अपेक्षा और परस्पर की अपेक्षा भी छट्ठाणवडिया होते हक्त । अ तिम दो निय ठों के पर्यव आपस में तुल्य होते हक्त और पूर्व के चारों निय ठों से अन तगुणे होते हक्त ।

चौवीसवाँ उपस पदा द्वार– प्रत्येक निर्ग्रंथ अपनी निर्ग्रंथ अवस्था को छोड़े तो किस-किस अवस्था को प्राप्त करते हक्त ? वे प्राप्त करने के आठ स्थान कहे गये हक्त – १. अस यम २. स यमास यम ३-७ पाँच निय ठे ८. सिद्धि । छ: निय ठो में से स्वय का एक निय ठा नहीं गिना है क्यों कि उसे तो छोडने की पृच्छा का ही उत्तर है । इस प्रकार इस द्वार में निय ठों की आपस में गति बताई गई है । ये निय ठे वाले एक दूसरे में जाते-आते रहते हक्त । स्नातक केवल सिद्ध गति में ही जाते हक्त । शेष पाँचों निय ठे वाले काल करने पर तो अस यम में ही जाते हक्त । आपस में अन तर किसमें जाते हक्त वह इस प्रकार है- १. पुलाक- कषायकुशील में जावे । २. बकुश और प्रतिसेवना- कषाय कुशील, स यमास यम, अस यम में और बकुश-प्रतिसेवना दोनों परस्पर में जावे । ३. कषायकुशील- स्नातक और सिद्ध को छोड़ कर सभी में जावे । निर्ग्रंथ- कषायकुशील और स्नातक दो में जावे । स्नातक- सिद्ध में ही जावे ।

बत्तीसवाँ क्षेत्र द्वार– लोक का कौन सा भाग अवगाहन किया जाता है ? पाँच निर्ग्रंथों का शरीर लोक के अस ख्यातवें भाग में रहता है । केवलज्ञानी का शरीर केवली समुद्घात की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक में या लोक के अनेक अस ख्य भाग में अथवा अस ख्यातवें भाग में होता है ।

प्रश्न-२५ : स जया-स यत कितने हक्त और उनके भेद-प्रभेद किस प्रकार है ?

उत्तर– प्रस्तुत सातवें उद्देशक में 'स जया-स यत' यह शब्द प्रयोग भी श्रमण, मुनि, निर्ग्रंथ साधकों के लिये ही प्रयुक्त हुआ है । छट्‌ठे उद्देशक में श्रमण मुनियों के दोष सहित, दोष रहित आचार की अपेक्षा को मुख्य करके ६ प्रकार के निर्ग्रंथ, पुलाक आदि का निरूपण है और प्रस्तुत सातवें उद्देशक में उन्ही श्रमण मुनियों के कल्प-समाचारी, विधि-विधान की मुख्यता से पाँच स यतों का वर्णन किया गया है । उन्हें शास्त्र में पाँच चारित्र भी कहा गया है । वे पाँच स यत-चारित्र

इस प्रकार है– (१) सामायिक स यत(चारित्र) (२) छेदोपस्थानीय स यत (३) परिहारविशुद्ध स यत (४) सूक्ष्म स यराय स यत (५) यथाख्यात स यत ।

इन प्रत्येक स यत के दो–दो प्रकार कहे गये हक्त यथा– **(१)** इत्वरिक सामायिक स यत(चारित्र) और यावत्कथिक सामायिक स यत **(२)** सातिचार छेदोपस्थापनीय स यत और निरतिचार छेदोपस्था–पनीय स यत **(३)** निर्विश्यमान परिहार विशुद्ध स यत और निर्विष्ट–कायिक परिहारविशुद्ध स यत ।**(४)** विशुद्धचमान सूक्ष्मस पराय स यत और स क्लिश्यमान सूक्ष्मस पराय स यत ।**(५)** छद्मस्थ यथाख्यात स यत और केवली यथाख्यात स यत ।

प्रश्न–२६ : सामायिक स यत का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार कहा गया है ?

उत्तर– (१) प्रज्ञापना द्वार : यह चारित्र प्रथम और अ तिम तीर्थंकर के शासन में अल्प कालीन होता है । जो जघन्य सात दिन का, उत्कृष्ट छः महिने का होता है अर्थात् इतने समय में इस चारित्र को पुनः महा व्रतारोपण करके छेदोपस्थापनीय चारित्र में परिवर्तित कर दिया जाता है । इस कारण इन दो तीर्थंकरों के शासनवर्ती श्रमणों का सामायिक चारित्र इत्वरिक= इत्वरकालिक कहा जाता है । शेष मध्यम तीर्थंकरों के शासनवर्ती श्रमणों का एव सभी तीर्थंकरों का, अन्य स्वय बुद्ध आदि का ग्रहण किया गया सामायिक चारित्र आजीवन का होता है । इस प्रकार सामायिक चारित्र के **दो भेद** होते हक्त– इत्वरिक सामायिक चारित्र और यावत्कथित= आजीवन सामायिक चारित्र ।

(२) वेद द्वार : सामायिक स यत स्त्री वेदी, पुढष वेदी एव पुढष नपु सक वेदी यों तीनो तथा अवेदी भी होता है । स्त्री नपु सक कोई भी स यत नहीं होता है । **(३) राग–** सामायिक स यत सरागी ही होता है वीतरागी नहीं होता । **(४)** कल्प– सामायिक स यत में पाँचों कल्प होते है । **(५)** निय ठा– सामायिक स यत में प्रार भ के ४ निय ठे क्रमशः होते हक्त । निग्रंथ और स्नातक दो अ तिम निय ठे नहीं होते हक्त । **(६)** प्रतिसेवना– सामायिक स यत मूलगुण प्रतिसेवी, उत्तरगुण प्रतिसेवी और अप्रतिसेवी यों तीनों तरह के होते हक्त । **(७)** ज्ञान– सामायिक

स यत में २,३,४ ज्ञान होते हक्त । श्रुतज्ञान में जघन्य अष्ट प्रवचनमाता उत्कृष्ट द्वादशा गी स पूर्ण–१४ पूर्व का ज्ञान होता है । **(८)** तीर्थ– सामायिक स यत तीर्थं–अतीर्थ दोनों में होते हक्त । **(९)** लि ग– द्रव्य से तीनों लि ग में और भाव से स्वलि ग में ही होते हक्त । **(१०)** शरीर– सामायिक स यत में पाँचों शरीर हो सकते हक्त । **(११)** क्षेत्र– जन्म-सद्भाव से १५ कर्मभूमि में होते हक्त और स हरण की अपेक्षा कर्मभूमि अकर्मभूमि सर्वत्र होते हक्त । **(१२)** काल– अवसर्पिणी के ३–४–५ वें आरे में जन्म सद्भाव दोनों से सामायिक स यत होते हक्त; उत्सर्पिणी में जन्म २–३–४ आरे में और सद्भाव से तीसरे चौथे आरे में सामायिक स यत होता है । स हरण आसरी सभी ६ आरों में होते हक्त । नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी में जन्म सद्भाव ५ महाविदेह क्षेत्र की १६० विजयों में और स हरण आसरी चारों पलिभाग में अर्थात् चारों आरों जैसे भाव वाले क्षेत्रों में होते हक्त । (१३) गति– सामायिक स यत प्रथम देवलोक से पाँच अनुत्तर विमान तक किल्विषी को छोडकर सभी वैमानिक देवों में जाता है । आराधना की अपेक्षा अहमेंद्र सहित पाँच पदवी प्राप्त कर सकता है और कोई प्रकार की विराधना दशा में स यम भाव में काल करे तो पाँच पदवी सिवाय देव बनता है । स्थिति जघन्य अनेक (दो) पल्योपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम प्राप्त कर सकता है ।**(१४) स यम–स्थान–** इसमें अस ख्य स यम स्थान, स यम दर्जे होते हक्त । जो छेदोपस्थापनीय से तुल्य होते हक्त शेष तीन स यत से अस ख्य गुणे अधिक होते हक्त । (१५) **स यम–पर्यव–** इसमें स यम धन रूप पर्यव अन त होते हक्त । जो सामायिक, छेदोपस्थानीय और परिहार विशुद्ध से कभी तुल्य, कभी हीन, अधिक अर्थात् छ स्थान पतित=छ प्रकार से हीनाधिक होते हक्त । सूक्ष्मस पराय और यथाख्यात के चारित्रपर्यव से अन तगुण हीन एक ही प्रकार होता है । **(१६) योग–** तीन और १५ होते हक्त । **(१७) उपयोग–** दोनों । और विस्तार से ७ होते हक्त । **(१८) कषाय–** ४,३ या २ होते हक्त, नौवें गुणस्थान की अपेक्षा **(१९) लेश्या–** छहों होती है । **(२०) परिणाम–** तीनों होते हक्त । स्थिति पुलाक के समान होती है । **(२१–२२–२३)** ब ध–७ या ८ कर्मों का, उदय–८ कर्मों का, उदीरणा–६, ७ या ८ कर्मों

की बकुश के समान होती है । **(२४) उवस पदा**– चार की । छेदोपस्था–पनीय, सूक्ष्म स पराय, अस यम, स यमासय म की । काल करे तो मात्र अस यम में जावे । **(२५) स ज्ञा**– चारों तथा नोस ज्ञोपयुक्त भी । **(२६) आहारक**– एक मात्र आहारक ही होवे । **(२७-२८)** भव+ आकर्ष= जघन्य एक भव में, उत्कृष्ट आठ भव में सामायिक स यत हो सकता है । एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट अनेक सौ बार आ सकता है । अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट अनेक हजार बार आ सकता है । **(२९) काल-स्थिति**–सामायिक स यत की स्थिति एक जीव की अपेक्षा– जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व वर्ष की होती है । अनेक जीव की अपेक्षा– सामायिक स यत सदा (अनेक हजार करोड) शाश्वत मिलते हक्त ।**(३०) अ तर**– एक जीव की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन । अनेक जीवों की अपेक्षा सामायिक स यत शाश्वत होने से अ तर नहीं पडता है ।

(३१) समुद्घात– सामायिक स यत में ६ समुद्घात हो सकती है । एक केवली समुद्घात सामायिक स यत में नहीं होती । **(३२-३३) क्षेत्र-स्पर्शना**– सामायिक स यत का अवगाहन क्षेत्र लोक के अस ख्यातवें भाग का है और स्पर्शना किंचित् विशेषाधिक होती है । **(३४) भाव**– सामायिक चारित्र क्षयोपशम भाव से होता है । **(३५) परिमाण**– प्रतिपद्यमान=नये होने की अपेक्षा सामायिक स यत जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अनेक हजार हो सकते हक्त । पूर्व प्रतिपन्न= सामायिक स यत अवस्था में विद्यमान, जघन्य-उत्कृष्ट अनेक हजार करोड सदा शाश्वत होते हक्त । **(३६) अल्पाबहुत्व**– सामायिक स यत शेष चारों स यतों से स ख्यात गुणा होते हक्त ।

प्रश्न-२७ : छेदोपस्थापनीय स यत का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार कहा गया हक्त ?

उत्तर– (१) प्रज्ञापना द्वार– पूर्व प्रत्याख्यान कृत जो सामायिक चारित्र है, उसका छेदन करके पुनः महाव्रतारोपण=महाव्रत में स्थापित किया जाता है, वह उपस्थापन करना कहा जाता है । इस नये उपस्थापित किये गये चारित्र को ही छेदोपस्थानीय चारित्र कहते हक्त।

यह दो प्रकार का होता है– **१.** नवदीक्षित को ७ दिन बाद अथवा ६ महिने तक में सैद्धान्तिक वैधानिक रूप से दिया जाने वाला यह चारित्र 'निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहा जाता है । **२.** किसी प्रकार का गुढतर-भारी दोष लगाने पर जब पूर्व चारित्र के पूर्ण छेद करने का प्रायश्चित्त आता है तब उस साधक के सम्पूर्ण पूर्व दीक्षा पर्याय का छेदन करके पुनः महाव्रतारोपण किया जाता है । वह सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहा जाता है । पहला सैद्धान्तिक अर्थात् शासन के नियम से होता है और दूसरा दोष सेवन से होता है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में विशिष्ट व्यवहारिक मर्यादाओं का एव कल्पों का अ तर होता है । छेदोपस्थापनीय में १० कल्प आवश्यक होते हक्त अतः वे स्थितकल्प वाले कहे जाते हक्त । सामायिक में ६ कल्प वैकल्पिक होते हक्त अतः वे अस्थितकल्प वाले कहे जाते हक्त । इसके अतिरिक्त दोनों चारित्रों में स यम स्थान, पर्यव, गति आदि कई समानताएँ होती है । अतः आराधना, भावचारित्र और गति की अपेक्षा दोनों का दर्जा समान ही है । **(२ से ३६)** वेद से अल्पबहुत्व तक के द्वारों का वर्णन चार्ट में देखे ।

प्रश्न-२८ : परिहार विशुद्ध स यत का स्वरूप ३६ द्वार से किस प्रकार कहा गया है ?

उत्तर– (१) प्रज्ञापना द्वार– यह एक प्रकार की विशिष्ट तप साधना के कल्प वाला चारित्र है । मूल में यह छेदोपस्थापनीय चारित्र वाला ही होता है । ऐसी साधना के लिये प्रथम और अ तिम तीर्थंकर के शासन में श्रमणों के लिये विशिष्ट व्यवस्था होती है । सामूहिक स घ में विविध वक्र-जड़ साधु भी होते हक्त ।अतः इस साधना की अलग व्यवस्था होती है । अन्य तीर्थंकरों के शासन में ऐसे तप और इससे भी विशिष्ट तप साधनाएँ समूह में रहते हुए ही की जा सकती है । अतः यह विशिष्ट तप साधना का परिहार विशुद्ध चारित्र प्रथम और अ तिम तीर्थंकरों के शासन में ही होता है ।

विधि : इस साधना के लिये ९ नौ साधक एक साथ आज्ञा लेकर

अलग विचरण करते हक्त ।उनमें सर्व प्रथम चार साधक तप करते हक्त, चार उनकी आवश्यक सेवा–परिचर्या करते हक्त, और एक साधक गण की प्रमुखता स्वीकार करता है । उसके बाद सेवा करने वाले चारों साधक तप करते हक्त, तप करने वाले चारों सेवा करते हक्त । उसके बाद गण प्रमुख साधक तप करता है, सात व्यक्ति सेवा आदि करते हक्त, एक साधक प्रमुखता स्वीकार करता है । प्रमुख व्यक्ति जिम्मेदारी के एव व्यवहार के तथा धर्म प्रचार के कर्तव्यों का, आचरणों का पालन करता है । शेष अपनी मौन–ध्यान साधना, स्वाध्याय, सेवा, तप आदि में स लग्न रहते हक्त । तप करने वाले नियमित समय आगम निर्दिष्ट तप आवश्यक रूप से करते हक्त, उससे कम नहीं करते, किन्तु अधिक तप कर सकते हक्त ।

तपस्वी गर्मी में उपवास, बेला, तेला करते हक्त । सर्दी में बेला तेला चौला करते हक्त । वर्षाकाल में तेला, चौला, प चोला करते हक्त । पारणे में आय बिल करते हक्त । ये तप निर तर चलते हक्त अर्थात् एक आय बिल के बाद पुनः तपस्या चालू रहती है। प्रति छ महिने के बाद साधकों का नम्बर बदलता रहता है । १८ महीनों में सभी का न बर तप में आ जाता है । अठारह महीनों के बाद ये तपस्वी साधक अपनी उस साधना को विसर्जित कर गुढ सेवा में आ सकते हक्त और आगे बढाना चाहे तो उसी क्रम से ६–६ महीने बदलते हुए कर सकते हक्त ।

इस प्रकार यह चारित्र कम से कम १८ महीनों के लिये धारण किया जाता है उत्कृष्ट इसमें जीवन भर रहा जा सकता है । इनमें से कोई साधक बीच में आयु पूर्ण कर सकता है और विशिष्ट प्रस गवश कोई साधक बीच में आकर सम्मिलित भी हो सकता है । यह साधना पूर्वज्ञान के धारी श्रमण ही करते हक्त । दस पूर्व से कम ज्ञान वाले एव ९ वें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु से उपरी ज्ञान वाले धारण करते हक्त । उससे कम ज्ञान वालों को आज्ञा नहीं दी जाती है एव अधिक ज्ञान वालों को ऐसी गच्छ मुक्त किसी भी प्रकार की साधनाओं की आवश्यकता ही नहीं रहती है । इस तप को कम से कम २० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले ही धारण कर

सकते हक्त । अन्य अनेक विषय कोष्टक–चार्ट में स्पष्ट किये हक्त ।

(२) वेद– पुढष और पुढष नपु सक ये दो वेद । साध्वियाँ परिहार विशुद्ध चारित्र धारण नहीं करती है । **(३–३६) शेष सभी द्वारों का वर्णन चार्ट में देखें ।**

प्रश्न–२९ : सूक्ष्म स पराय स यत का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– (१) प्रज्ञापना द्वार– उपरोक्त चारित्रों का पालन करते हुए जब मोह कर्म की २७ प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम हो जाता है, केवल सूक्ष्म स ज्वलन लोभ का उदय मात्र अवशेष रहता है, साधक की उस अवस्था को 'सूक्ष्म स पराय चारित्र' कहा जाता है । इस चारित्र में दसवाँ गुणस्थान होता है । **(२ से ३६)** शेष सभी द्वारों का वर्णन चार्ट में देखें ।

प्रश्न–३० : यथाख्यात स यत का स्वरूप ३६ द्वारों से किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर– (१) प्रज्ञापना द्वार– सूक्ष्म स पराय चारित्र से आगे बढ़कर साधक इसी चारित्र में प्रवेश करता है अर्थात् अवशेष स ज्वलन लोभ मोह कर्म का पूर्णतया उपशम या क्षय करने पर यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है । इसके दो विभाग हक्त– उपशा त मोह यथाख्यात और क्षीणमोह यथाख्यात । उपशा त मोह यथाख्यात चारित्र अस्थाई होता है, वह अ तर्मुहूर्त बाद समाप्त हो जाता है । तब साधक पुनः सूक्ष्म स पराय चारित्र में पहुँच जाता है । क्षीण मोह यथाख्यात वाला आगे बढ कर अ तर्मुहूर्त में ही अवशेष तीन घाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करता है । उपशा त मोह यथाख्यात में एक ग्यारहवाँ गुणस्थान है और क्षीण मोह यथाख्यात चारित्र में १२,१३,१४ तीन गुणस्थान है । इस प्रकार कुल ४ गुणस्थान यथाख्यात में है । जिसमें दो छद्मस्थ गुणस्थान है, दो केवली गुणस्थान है । १३वें, १४ वें गुण स्थान में चार अघातीकर्म रहते हक्त– वेदनीय, आयु, नाम, गौत्र । ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अ तराय तीन घातीकर्म का १२वें गुणस्थान के अ त में क्षय होता है और अवशेष चार अघातीकर्म का

१४ वें गुणस्थान के अ तिम समय में पूर्ण रूप से क्षय होता है । तब यथाख्यात चारित्र वाला सिद्ध गति को प्राप्त करता है । जहाँ यथाख्यात चारित्र भी नहीं रहता है क्यों कि चारित्र इह भविक(मनुष्य भविक) ही है । **(२ से ३६)**शेष सभी द्वारों का वर्णन चार्ट में देखें ।

पाँच स यत का ३६ द्वारों से स क्षिप्त विवरण :-

द्वार	सामायिक	छेदोपस्थापनीय	परिहार विशुद्ध	सूक्ष्म स पराय	यथाख्यात
१ प्रज्ञापना	२ प्रकार	२ प्रकार	२ प्रकार	२ प्रकार	२-२-२ प्रकार
२ वेद	३/अवेदी	३/अवेदी	२(स्त्री नहीं)	अवेदी	अवेदी
३ राग	सरागी	=	=	=	वीतरागी
४ कल्प	५	३	३	३	३
५ निय ठा	४	४	१	१	२
६ प्रतिसेवना	३	३	१	१	१
७ ज्ञान	४	४	४	४	५
श्रुतभणे	१४ पूर्व	=	देशोन दश पूर्व	१४ पूर्व	१४ पूर्व
८ तीर्थ	दोनों में	तीर्थ में	तीर्थ में	दोनों में	दोनों में
९ लि ग	३/१	३/१	१/१	३/१	३/१
१० शरीर	५	५	३	३	३
११ क्षेत्र(जन्म)	१५ कर्मभूमि	१० कर्मभूमि	१० कर्मभूमि	१५ कर्मभूमि	१५ कर्मभूमि
स हरण	सर्वत्र	सर्वत्र	X	सर्वत्र	सर्वत्र
१२ काल	३	२	२	३	३
अवसर्पिणी जन्म/सद्भाव	३-४-५ आरा	३-४-५	३-४/ ३-४-५	=	=
उत्सर्पिणी जन्म/सद्भाव	२-३-४/ ३-४	=	=	=	=
स हरण	सर्वत्र	सर्वत्र	X	सर्वत्र	सर्वत्र
नो उत्सर्पिणी जन्म/स हरण	१/४	X/४	X	१/४	१/४

द्वार	सामायिक	छेदोपस्थापनीय	परिहार विशुद्ध	सूक्ष्म स पराय	यथाख्यात
१३ गति	वैमानिक सभी	=	८वें देवलोक तक	अणुत्तर विमान	अणुत्तर विमान
स्थिति	२ पल्य/ ३३ सागर	=	२ पल्य/ १८ सागर	३३ सागर	३३ सागर
पदवी	५	५	४	१	१
१४.स यमस्थान	अस ख्य	=	=	=	१
अल्पबहुत्व	४ अस ख्य गुणा	४=	३=	२=	१ अल्प
१५ पर्यव	अन त	=	=	=	=
१५ सामायिक	छट्ठाणवडिया	=	=	अन तवा भाग	=
छेदोपस्थापनीय	छट्ठाणवडिया	=	=	अन तवा भाग	=
परिहार-विशुद्ध	छट्ठाणवडिया	=	=	अन तवा भाग	=
सुक्ष्मस पराय	अन तगुणा	=	=	छट्ठाणवडिया	अन तवा भाग
यथाख्यात	अन तगुणा	=	=	=	तुल्य
अल्पबहुत्व	१/४	१/४	२/३	५/६	७ अन तगुणा
१६ योग	३	३	३	३	३/अयोगी
१७ उपयोग	२	२	२	१	२
१८ कषाय	४-३-२	४-३-२	४	१	अकषायी
१९ लेश्या	६	६	३	१	१/अलेशी
२० परिणाम	३	३	३	२	२
वर्धमान स्थिति	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	=	=	=	अ तर्मुहूर्त
हायमान स्थिति	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	=	=	=	X
अवस्थित स्थिति	१ समय/ ७ समय	=	=	X	उ.देशोन क्रोड पूर्व
२१ कर्म ब ध	७-८	७-८	७-८	६	१/अब ध

द्वार	सामायिक	छेदोपस्थापनीय	परिहार विशुद्ध	सूक्ष्म स पराय	यथाख्यात
२२ उदय	८	८	८	८	७/४
२३ उदीरणा	७-८-६	७-८-६	७-८-६	६/५	५/२/X
२४ उवस पदा	४	५	२	४	३
२५ स ज्ञा	५	५	५	नोस ज्ञोपयुक्त	नोस ज्ञोपयुक्त
२६ आहार	१(आहारक)	१	१	१	दोनों
२७ भव ज/उ.	१/८	१/८	१/३	१/३	१/३
२८ आकर्ष एक भव में	१/अनेक सौ	१/१२०	१/३	१/४	१/२
२८ अनेक भव में	२/अनेक हजार	२/९६०	२/७	२/९	२/५
२९ स्थिति एक की	१ समय/ देशोन- करोडपूर्व	=	=(२९ वर्ष कम)	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	१ समय/ देशोन करोडपूर्व
२९ स्थिति अनेकों की	शाश्वत	२५० वर्ष/ आधा क्रो. क्रो. सागर	१४२ वर्ष/ ५८ वर्ष कम २ क्रो.पूर्व	१ समय/ अ तर्मुहूर्त	शाश्वत
३० अ तर एक जीव/ अनेक जीव	ज.अ तर्मु. उ.अर्द्ध पुद्. /नहीं	ज.=/६३००० वर्ष साधिक उ.१८ क्रो. क्रो.सागर	ज.=/८४००० वर्ष साधिक उ.१८ क्रो. क्रो.सागर	=/जघन्य १ समय उत्कृष्ट ६ मास	=/X
३१ समुद्घात	६ क्रमशः	६	३	X	१
३२ क्षेत्र (अवगाहन	अस ख्यांश लोक	=	=	=	सर्व लोक आदि
३३ क्षेत्र स्पर्शना	अस ख्यांश साधिक	=	=	=	सर्व लोक आदि
३४ भाव	क्षयोपशम	=	=	=	उपशम-क्षायिक
३५ परिमाण नये	०/१/ अनेक हजार	०/१/ अनेक सौ	=	०/१/१६२	=
३५ नये पुराने	अनेक हजार करोड	०/१/अनेक सौ करोड	०/१/अनेक हजार	०/१/ अनेक सौ	अनेक करोड
३६ अल्पबहुत्व	५	४	२ स .गुणा	१ अल्प	३

टिप्पण-(१) तप वहन करने वाले और किये हुए यों दो भेद परिहार विशुद्ध के हक्त । स क्लिष्यमान और विशद्धयमान(गिरते हुए और चढते हुए) यों दो भेद सूक्ष्म स पराय के हक्त । यथाख्यात के तीन प्रकार से दो भेद हक्त- १. उपशा त मोह, क्षीण मोह, २. छद्मस्थ, केवली, ३. सयोगी, अयोगी । **(२)** छेदोपस्थानीय और परिहारविशुद्ध चारित्र में-अस्थितकल्प और कल्पातीत दो नहीं होने से तीन कल्प हक्त । सूक्ष्म स पराय और यथाख्यात में- स्थित अस्थित और कल्पातीत ये तीन कल्प होते हक्त । **(३)** सामायिक छेदोपस्थानीय में- मूलगुण और उत्तरगुण प्रतिसेवना ये दो और तीसरा अप्रतिसेवना ये तीनों भेद हक्त । शेष तीन चारित्र में अप्रतिसेवी एक विकल्प ही है । **(४)** सामायिक चारित्र एक भव में सैकडों बार आ जा सकता है किन्तु छेदोपस्थापनीय में ऐसा नहीं होता है । वह तो उत्कृष्ट १२० बार ही आ सकता है । जिसमें भी परिहार विशुद्ध से अनेक बार आना सामायिक से आना और अस यम में जाकर आना आदि सभी शामिल है । आठ भव की अपेक्षा उत्कृष्ट ९६० बार आता है । **(५)** उनतीस(२९) वर्ष की उम्र के पहले परिहार विशुद्ध चारित्र ग्रहण नहीं किया जाता है । तीर्थंकर के जघन्य शासन की अपेक्षा छेदोपस्थानीय का २५० वर्ष जघन्य काल है और उत्कृष्ट शासन चलने की अपेक्षा आधा क्रोडा क्रोड सागरोपम है । परिहार विशुद्ध चारित्र के दो पाट पर परा की अपेक्षा जघन्य १४२ वर्ष होता है उत्कृष्ट दो करोड पूर्व में ५८ वर्ष कम होता है । **(६)** एक जीव की अपेक्षा अ तर(जघन्य और उत्कृष्ट) पाँचों चारित्र का समान है । अनेक जीव की अपेक्षा दो चारित्र शाश्वत है । सूक्ष्म स पराय में उत्कृष्ट छ महीना तक कोई नहीं होते । छेदोपस्थानीय- २१०००के तीन आरे (छट्ठा-पहला-दूसरा) तक नहीं होंगे । परिहार विशुद्ध जघन्य २१००० वर्ष के चार आरों का ८४०००वर्ष (५, ६, १, २ आरा) तक नहीं होते हक्त । उत्कृष्ट युगलिया काल के ६ आरों तक नहीं होते जिससे (२+३+४+४+३+२=)१८ क्रोडाक्रोड सागर काल हो जाता है । **(७)** छेदोपस्थापनीय में पूर्व प्रतिपन्न(नये पुराने) कभी होते हक्त कभी नहीं होते हक्त । भरत एरावत में ही होते हक्त, महाविदेह में ये नहीं होते हक्त। भरत में भी कोई आरों में होते, कोई आरों में नहीं होते हक्त । जब होते हक्त तो जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अनेक सौ करोड हो सकते हक्त । यहाँ मूल पाठ में लिपि दोष से या किसी कारण से जघन्य का पाठ **'एगो वा दोण्णि वा तिण्णि वा'** इतना छूट गया होने से जघन्य-

उत्कृष्ट अनेक सौ करोड होने का पाठ उपलब्ध होता है जो कि अशुद्ध पाठ है । क्यों कि जब एक भी नहीं होता है उस समय नये एक साथ उत्कृष्ट अनेक सौ ही उत्पन्न हो सकते हक्त, तब पहले ही समय में अनेक सौ करोड कैसे हो सकते ? अर्थात् ऐसा होना स भव ही नहीं है अत: वह पाठ अशुद्ध है, यह सूत्र प्रमाण से ही स्पष्ट हो जाता है । इसलिये पूर्व प्रतिपन्न में **जघन्य १,२,३, उत्कृष्ट अनेक सौ क्रोड,** मानना ही उपयुक्त है **(८)** पुलाक, निर्ग्रंथ, स्नातक एव परिहार विशुद्ध, सूक्ष्मस पराय, यथाख्यात चारित्र ये अवसर्पिणी के पाँचवें आरे में जन्म लेने वाले को प्राप्त होने का स्पष्ट निषेध किया गया है । किन्तु उत्सर्पिणी के दूसरे आरे में जन्म लेने वालों के ये पुलाक आदि सभी तीसरे आरे में हो सकते हक्त । यही दोनों 'दुखमी' आरों का खास फर्क है । **(९)** शेष सूचनाएँ नियं ठों के चार्ट अनुसार समझ लेना । **॥चार्टगत टिप्पण समाप्त॥**

प्रश्न-३१ : इस स जया-णिय ठा प्रकरण में अल्पाबहुत्व कौन-कौन सी और किस प्रकार की गई है ?

उत्तर- ६ नियं ठों के स यम स्थानों की, पर्यव स्थानों की तथा इन नियं ठों की उपलब्ध होने वाली उत्कृष्ट स ख्या की सम्मिलित अल्पा बहुत्व दर्शाई गई है । इसी प्रकार ५ स यत-स जया की भी स यम स्थान, पर्यवस्थान तथा उपलब्ध उत्कृष्ट स ख्या की अल्पाबहुत्व बताई गई है । वह इस प्रकार है- **(१) स यम-स्थान-** नियं ठों में सर्व से अल्प निर्ग्रंथ एव स्नातक के स यम-स्थान(क्यों कि उनके कषाय नहीं होने से एक ही प्रकार का स यम-स्थान होता है । उससे पुलाक के स यम-स्थान अस ख्यगुणे । उससे बकुश के, उससे प्रतिसेवना कुशील के और उससे कषायकुशील के स यम स्थान-दर्जे अस ख्यगुणे होते हक्त ।

स यतों में- सर्व से अल्प स यम स्थान यथाख्यात में है क्यों कि उनके स यम-स्थान कषाय नहीं होने से एक ही दर्जे का होता है । उससे सूक्ष्म स पराय स यत के स यम स्थान अस ख्यगुणे, वे अ तर्मुहूर्त के समय तुल्य होते हक्त । उससे परिहार विशुद्ध स यत के स यमस्थान अस ख्यगुणे । उससे सामायिक-छेदोपस्थापनीय के स यम स्थान परस्पर तुल्य और अस ख्यगुणे होते हक्त ।

(२) पर्यवों के जघन्य उत्कृष्ट की अल्पाबहुत्व- नियं ठों में सर्व से

अल्प पुलाक का तथा कषायकुशील का जघन्य चारित्रपर्यव, ये दोनों परस्पर तुल्य होते हक्त । उससे पुलाक के उत्कृष्ट चारित्रपर्यव अन तगुणा । उससे बकुश-प्रतिसेवनाकुशील के जघन्य चारित्रपर्यव अन तगुणा एव परस्पर तुल्य। उससे बकुश के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे। उससे प्रतिसेवना कुशील के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे। उससे कषायकुशील के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे निर्ग्रंथ और स्नातक के अजघन्य अनुत्कृष्ट चारित्र पर्यव अन तगुणा एव परस्पर दोनों के तुल्य पर्यव होते हक्त ।

स यतों में- सर्व से अल्प सामायिक-छेदोपस्थानीय के जघन्य चारित्र पर्यव(परस्पर दोनों तुल्य) । उससे परिहार विशुद्ध स यत के जघन्य चारित्र अन तगुणे । उससे परिहार के उत्कृष्ट पर्यव अन तगुणे । उससे सामायिक-छेदोपस्थापनीय के उत्कृट चारित्रपर्यव अन त गुणे और परस्पर तुल्य होते हक्त । उससे सूक्ष्म स पराय स यत के जघन्य चारित्र पर्यव अन तगुणे । उससे सूक्ष्मस पराय स यत के उत्कृष्ट चारित्र पर्यव अन त गुणे । उससे यथाख्यात के पर्यव अन तगुणे होते हक्त । यथाख्यात स यत में पर्यव जघन्य उत्कृष्ट नहीं होते एक ही प्रकार के अन त होते हक्त ।

(३) उपलब्ध होने वाली स ख्या की अल्पाबहुत्व- निर्ग्रंथों में- सर्व से अल्प निर्ग्रंथ नियं ठे वाले, उससे पुलाक स ख्यातगुणे, उससे स्नातक स ख्यात गुणे । उससे बकुश स ख्यातगुणे । उससे प्रतिसेवना स यत स ख्यातगुणे । उससे कषायकुशील नियं ठे वाले स ख्यातगुणे । **स यतों में-** सर्व से अल्प सूक्ष्मस पराय स यत। उससे परिहारविशुद्ध स यत स ख्यातगुणे। उससे यथाख्यात स यत स ख्यातगुणे। उससे छेदोपस्थाप-नीय स यत स ख्यातगुणे। उससे सामायिक स यत स ख्यातगुणे होते हक्त । यह अल्पाबहुत्व उत्कृष्ट स ख्या की अपेक्षा ही कही गई है ।**॥ स जया-नियं ठा प्रकरण स पूर्ण ॥**

प्रश्न-३२ : यहाँ छट्ठे-सातवें उद्देशक में नियं ठा-स जया प्रकरण के सिवाय क्या वर्णन है ?

उत्तर- प्रस्तुत सातवें उद्देशक में स यत प्रकरण के बाद दोष प्रतिसेवना, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाचारी एव तप स ब धी विस्तार से कथन है । जिसमें से अनेक विषय स्थाना ग सूत्र में एव अन्य शास्त्रों में वर्णित है । उन विषयों की प्रश्नोत्तर चर्चा यथास्थान दी जायेगी ।

प्रश्न–३३ : तप स ब धी भेद–प्रभेद एव उनका विश्लेषण आगमों में किस प्रकार किया गया है?

उत्तर– नव तत्त्वों में सातवें निर्जरा तत्त्व में बारह प्रकार के तप का स्वीकार किया गया है । वह बारह प्रकार का तप कर्मनिर्जरा का अर्थात् कर्म क्षय करने का मुख्य साधन कहा गया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र में तपमार्ग नामक ३०वाँ अध्ययन है । जिसमें १२ प्रकार के तप का काव्य रूप में विश्लेषण दिया गया है । औपपातिक सूत्र में अणगारों के गुण वर्णन प्रस ग से १२ भेदे तपस्या वाले वे अणगार थे, इस प्रकार निरूपण करते हुए द्वादशविध तप का सविस्तार वर्णन गद्यमय शैली में किया गया है । स्थाना ग सूत्र में स ख्या प्रस ग से यथास्थान तप के अनेक भेद–प्रभेद दिये गये हक्त ।

प्रस्तुत शतक–२५ के सातवें उद्देशक के स जया णिय ठा प्रकरण के बाद के विषयों में यथास्थान विस्तार सहित १२ प्रकार के तप के भेद–प्रभेद दर्शाये गये हक्त । जिसमें अनशन से लेकर ध्यान और व्युत्सर्ग तक के सभी तपों का विश्लेषण हुआ है ।

तप के १२ प्रकार– आगमों में तप के मौलिक दो भेद किये गये हक्त (१) बाह्यतप और (२) आभ्य तर तप । पुनः दोनों के ६–६ भेद कहे गये हक्त। **बाह्यतप–** (१) अनशन (२) ऊणोदरी (३) भिक्षाचरी (४) रस परित्याग (५) कायक्लेश (६) प्रतिस लीनता । **आभ्य तर तप–** (७) प्रायश्चित्त (८) विनय (९) वैयावृत्य (१०) स्वाध्याय (११) ध्यान (१२) व्युत्सर्ग ।

दोनों प्रकार के तपों मे शरीर और आध्यात्मभाव दोनों का पूर्ण सहयोग रहा हुआ है । फिर भी अपेक्षा विशेष से बाह्यतप में बाह्य व्यवहार की प्रमुखता स्वीकार की गई है और आभ्य तर तप में आध्यात्मभावों की प्रमुखता स्वीकारी गई है ।

तात्पर्य यह है कि ये सापेक्ष आभ्य तर और बाह्यतप है, एका तिक नहीं है अर्थात् काया के सहयोग बिना वैयावृत्य आदि आभ्य तर तप नहीं हो सकते और भावों की उच्चता बिना बाह्यतप में किया गया पराक्रम भी आगे नहीं बढ सकता । अतः तपों की

आभ्य तर–बाह्यता सापेक्ष है । एका तिकता का आग्रह नहीं किया जाना चाहिये तथा दोनों प्रकार के तपों का महत्त्व मोक्ष साधना में सुमेल युक्त स्वीकार करना चाहिये ।

(१) अनशन–नवकारसी से लेकर उपवास आदि ६ मासी तप तक की विविध तप साधनाएँ, इत्वरिक(अल्पकालिक) तपस्याएँ है और आजीवन स थारा ग्रहण करना, जीवन पर्यंत का तप है । आजीवन अनशन के भक्त प्रत्याख्यान और पादपोपगमन ये दो भेद किये हक्त ।

भक्त प्रत्याख्यान में तीन आहार या चार आहार का त्याग किया जाता है । इसमें शरीर का परिकर्म सेवा आदि स्वय किया जा सकता है, कराया जा सकता है । **निहारिम–** मृत्यु के बाद शरीर का दाह स स्कार होता भी है और नहीं भी होता है । यह सागारी भी होता है, उपद्रव आने पर या रात्रि में सोते समय 'सागारी' किया जाता है ।

आचारा ग आदि सूत्र में आजीवन अनशन का तीसरा प्रकार **इ गिनी मरण** कहा गया है यह मध्यम प्रकार का है अर्थात् पादपोपगमन अनशन की अपेक्षा इसमें कुछ सीमित छूटे हक्त । यथा– मर्यादित क्षेत्र में हाथ पाँव का स कोच–विस्तार करना, कुछ समय खडे रहना या बैठना, च क्रमण करना आदि ।

पादपोपगमन में निश्चेष्ट होकर ध्यान में लीन बने रहना होता है । हलन–चलन भी नहीं किया जाता है । किन्तु लघुनीत, बडीनीत का प्रस ग आवे तो उठकर यथास्थान जाना–आना किया जा सकता है क्यों कि स थारे के स्थान पर रहे हुए ही मल मूत्र नहीं किया जाता है । यह निहारिम–अनिहारिम दोनों तरह का होता है । उपसर्ग आने पर भी पादपोपगमन स थारा किया जा सकता है ।

स लेखना का काल क्रम– अ तिम समय अति निकट न हो तो यह क्रमिक स लेखना की जाती है । मुनि अनेक वर्षों तक या यथासमय पर्यंत स यम का पालन कर इस क्रमिक तप से अपनी आत्मा की स लेखना करे । यह स लेखना, स थारे के पूर्व की जाती है । स लेखना उत्कृष्ट बारह वर्ष, मध्यम एक वर्ष तथा जघन्य छ मास की होती है ।

बारह वर्ष की स लेखना करने वाला मुनि पहले चार वर्ष में विगयों का परित्याग करे । दूसरे चार वर्षों में फुटकर विचित्र तप का आचरण करे ।

फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप करे व पारणे के दिन आय बिल करे । ग्यारहवें वर्ष के पहले छः महीनों में कठिन तप न करे । ११वें वर्ष के पिछले छः महीनों में कठिन तप करे । इस पूरे वर्ष में पारणे के दिन **आय बिल** करे । बारहवें वर्ष में मुनि कोटि सहित आय बिल करे फिर पक्ष या मास का अनशन तप करे ।(उत्तरा.अ.३६)

जब उम्र का अ तिम समय या अल्प समय अचानक उपस्थित हो जाय तब स क्षेप में स लेखना की जा सकती है या बिना स लेखना क्रम के तत्काल स थारा भी किया जा सकता है ।

(२) ऊणोदरी– इच्छा व भूख से कम खाना, कम उपकरण रखना, कम वस्तुओं का उपयोग करना **ऊणोदरी** तप है ।

आहार ऊणोदरी में किंचित् ऊणोदरी, अर्ध, पाव, पौन ऊणोदरी भी की जा सकती है । एव खाद्यपदार्थ सीमित किये जा सकते हक्त । एक पात्र, एक वस्त्र(एक चादर) रखना उपकरण ऊणोदरी है अथवा गृहस्थ के उपयोग किये उपकरण ग्रहण करना भी उपकरण ऊणोदरी है । **भाव ऊणोदरी** के कथन में–कलह,कषाय, बोलाबोली (वाग्युद्ध) आदि के प्रस ग में गम खाना, शा त रहना, मौन रखना भाव ऊणोदरी कहा गया है । गुस्सा, घम ड, कपट, लोभ, लालच से आत्मा को अलग–सुरक्षित रख लेना भी, भाव ऊणोदरी तप कहा गया है ।

(३) भिक्षाचरी– गोचरी में विविध अभिग्रह करना, ७ पिंडेषणा, ७ पाणेषणा के स कल्प से गोचरी जाना । आठ प्रकार की– पेटी, अर्द्धपेटी इत्यादि आकार वाली भ्रमण विधि में से किसी विधि का स कल्प करना । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव स ब धी अभिग्रह करना । **द्रव्य से**– खाद्यपदार्थों की स ख्या, दत्ति स ख्या आदि निर्धारित करना । **क्षेत्र से**– भिक्षा के घरों की स ख्या, क्षेत्र, दिशा आदि की सीमा करना । **काल से**– समय की मर्यादा करना, उतने समय में ही भिक्षा लाना–खाना । **भाव से**– दाता स ब धी, देय वस्तु से स ब धी, र ग व्यवहार

आदि से अभिग्रह करना ।शुद्ध ऐषणा समिति से प्राप्त करने का दृढ स कल्प करके गौचरी करना भी भिक्षाचरी तप कहा गया है । इस स कल्प में नया अभिग्रह तो नहीं होता है किन्तु ऐषणा नियमों में अपवाद का सेवन नहीं किया जा सकता । मौनपूर्वक गोचरी करना भी भिक्षाचरी तप कहा गया है । भिक्षाचरी तप को अभिग्रह तप या वृत्तिस क्षेप तप भी कहा जा सकता है ।

भिक्षाचर्या(अभिग्रहों)के ३० प्रकार–(१) द्रव्य–द्रव्यों से स ब धी नियम या अभिग्रह करके आहार लेना । **(२)** क्षेत्र– ग्रामादि क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र स ब धी वास, परा, गली, घर आदि का अभिग्रह करके आहार लेना । **(३)** काल–दिन के अमुक भाग में आहार लेने का अभिग्रह करना । **(४)** भाव–अमुक वय, वस्त्र या वर्ण वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(५)** उक्खित्त चरए– किसी बरतन में से भोजन निकालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(६)** निक्खित्त चरए– किसी बरतन में भोजन डालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(७)** उ.नि. चरए– किसी एक बरतन में भोजन लेकर दूसरे बरतन में डालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(८)** नि.उ.चरए– किसी एक बरतन में निकाले हुए भोजन को, दूसरे बरतन में डालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(९)** वट्टिज्जमाण चरए– किसी के लिये थाली में परोसा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना । **(१०)** साहरिज्जमाण चरए– अन्यत्र कहीं भी ले जाने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(११)** उवणीय चरए– आहार की प्रश सा करके देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(१२)** अवणीय चरए– आहार की निन्दा करके देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(१३)** उव.अव. चरए– जो आहार की पहले प्रश सा करके बाद में निन्दा करे उससे आहार लेने का अभिग्रह करना। **(१४)** अव.उव.चरए– जो आहार की पहले निन्दा करके बाद में प्रश सा करे उससे आहार लेने का अभिग्रह करना । **(१५)** स सट्ठ चरए– लिप्त हाथ, पात्र या चम्मच से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(१६)** अस सट्ठ चरए– अलिप्त हाथ, पात्र या चम्मच से आहार लेने का अभिग्रह करना । इसमें दाता और वस्तु का

विवेक रखा जाता है जिससे कि पश्चात्कर्म दोष न लगे । **(१७)** तज्जाय स सट्ठ चरए- देय पदार्थ से लिप्त हाथ, पात्र या चम्मच द्वारा दिये जाने वाले आहार को लेने का अभिग्रह करना । **(१८)** अण्णाय चरए- अज्ञातस्थान(जहाँ भिक्षु की प्रतीक्षा न करते हो वहाँ) से आहार लेने का अभिग्रह करना, अपनी जाति कुल बताये बिना आहार लेना । अज्ञात, अपरिचित व्यक्तियों के घरों से आहार लेना । **(१९)** मौन चरए- मौन रखकर आहार लेने का अभिग्रह करना । **(२०)** दिट्ठ चरए- दिखता हुआ अर्थात् सामने रखा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना । **(२१)** अदिट्ठठ चरए- नहीं दिखता हुआ, अन्यत्र रखा हुआ, अलमारी आदि में रखा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(२२)** पुट्ठ चरए- **तुम्हें क्या चाहिए ?** इस प्रकार पूछकर देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(२३)** अपुट्ठ चरए- बिना पूछे देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना । **(२४)** भिक्खलाभिए- **मुझे भिक्षा दो,** ऐसा कहने पर, याचना करने पर देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(२५)** अभिक्ख- लाभिए- **भिक्षा दो** आदि कुछ भी कहे बिना ही स्वत: देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना ।**(२६)** अण्णगिलायए- आज का बना हुआ या मनोज्ञ आहारादि नहीं लेने का अभिग्रह करना । **(२७)** ओवणीयए- दाता के समीप में पडा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना । **(२८)** परिमिय पिंडवाइए- परिमित द्रव्यों के लेने का अभिग्रह करना । **(२९)** सुद्धेषणीए- एषणा में कोई भी अपवाद सेवन न करने का अभिग्रह करना । **(३०)** स खा दत्तिए- दत्ति का परिमाण निश्चित्त करके आहार लेने का अभिग्रह करना ।

भिन्नपिण्डपातिक- ख ड-ख ड किये हुए पदार्थों की भिक्षा लेने वाला, अख ड पदार्थ मूँग, चना आदि नहीं लेने वाला ।***-ठाणा ग-५,***

(४) रसपरित्याग- विगयों का, महाविगयों का त्याग करना, स्वादिष्ट मनोज्ञ पदार्थों का त्याग करना । विविध खाद्यपदार्थों का त्याग करना, खादिम-स्वादिम का त्याग करना, अन्य भी मनोज्ञ इच्छित वस्तुओं के खाने का त्याग करना **रस परित्याग तप** है । यों भी स यम साधक रसास्वाद के लिये कोई भी आहार नहीं करता है किन्तु स यम मर्यादा

एव जीवन निर्वाह के हेतु ही मर्यादित आहार करता है । फिर भी विशिष्ट त्याग की अपेक्षा यह तप होता है ।

रस परित्याग तप के नौ विशिष्ट प्रकार- (१) निर्विकृतिक -विगय रहित आहार करना । (२) प्रणीत रसपरित्याग- अतिस्निग्ध और सरस आहार का त्याग करना-सादा भोजन करना । (३) आय बिल- नमक आदि षट्रस तथा विगय रहित एक द्रव्य को अचित्त पानी में भिगोकर दिन में एक ही बार खाना । (४) आयाम सिक्थभोजी- अत्यल्प(कण मात्र) पदार्थ लेकर आय बिल करना । (५) अरसाहार- बिना मिर्च मसाले का आहार करना । (६) विरसाहार- बहुत पुराने अन्न से बना हुआ आहार करना । (७) अन्ताहार- भोजन के बाद बचा हुआ आहार करना । (८) प्रान्ताहार- मलिचा आदि तुच्छ धान्यों से बना हुआ आहार करना । (९) रूक्षाहार- रूखा-सूखा आहार करना ।

(५) कायक्लेश- आसन करना, लम्बे समय तक स्थिर आसन से रहना, खडे रहना, शयनासन का त्याग करना, वीरासन आदि कष्टप्रद आसन करना, आतापना लेना, सर्दी में शीत सहन करना, निर्वस्त्र रहना, अचेलधर्म स्वीकार करना, ये कायक्लेश तप है । स यमविधि के आवश्यक नियम पाद(पैदल)विहार, लोच करना, स्नान नहीं करना, औषध उपचार नहीं करना, भूमि शयन करना आदि भी काय क्लेश तप रूप ही है । इसके चार भेद हक्त- १. आसन २. आतापना ३. विभूषा त्याग ४. परिकर्म-शरीर सुश्रुषा त्याग ।

कायक्लेश तप के नौ विशेष प्रकार- (१) स्थानस्थितिक- एक आसन से स्थिर खडे रहना, बैठना नहीं । (२) उत्कुटुकासनिक- पुट्ठों को भूमि पर न टिकाते हुए केवल पाँवों के बल बैठकर मस्तक पर अ जली करना । (३) प्रतिमास्थायी- एक रात्रि आदि का समय निश्चित कर कायोत्सर्ग करना । (४) वीरासनिक- कुर्सी पर बैठे व्यक्ति के नीचे से कुर्सी निकालने पर जो स्थिति होती है, उस आसन से स्थिर रहना । (५) नैषधिक- पुट्ठे टिकाकर पालथी लगाकर बैठना एव समय की मर्यादा करना । (६) आतापक- धूप आदि की आतापना लेना । (७) अप्रावृतक- देह को कपडे आदि से नहीं ढकना, खुले

शरीर रहना (चोलपटक रखकर बाकी शरीर से उघाडा रहना) । (८) अकण्डूयक– खुजली चलने पर भी देह को नहीं खुजलाना । (९) अनिष्ठीवक– थूक कफ आदि आने पर भी नहीं थूकना ।

सर्व–गात्र परिकर्म एव विभूषा विप्रमुक्त– देह के सभी स स्कार तथा विभूषा–श्रृ गार आदि करने से मुक्त रहना । (१) द डायतिक– द डे के समान सीधे ल बे पैर करके सोना । (२) लगण्डशायी– करवट से सोकर हथेली पर शिर रखकर एव एक खडे पाँव के घुटने पर दूसरे पाँव की एडी रखना । इस आसन में शिर रखे हाथ की कोहनी जमीन पर रहती है और एक पाँव का प जा भूमि पर रहता है, एक करवट भूमि पर रहता है । (३) समपादपुता– दोनों पैरों को और नितम्बों को भूमि पर टिकाकर बैठना । (४) गोदोहिका– गाय दुहने की तरह से बैठना । (५) अप्रतिशायी– शयन नहीं करना, खडे रहना या किसी भी आसन से बैठे रहना ।

(६) प्रतिस लीनता तप– १. इन्द्रियों को अपने विषयों में नहीं जाने देना एव सहज इन्द्रिय प्राप्त विषयों में राग द्वेष नहीं करना, यह **इन्द्रिय प्रतिस लीनता** तप है ।**२.** गुस्सा, घम ड, कपट, लोभ, लालच को उत्पन्न ही नहीं होने देना, सावधान रहना एव उदय की प्रबलता से उत्पन्न हो जाय तो उसे तत्काल विफल कर देना अर्थात् ज्ञान से, वैराग्य से अपने कर्तव्य का चिंतन कर, आत्म सुरक्षा के लक्ष्य को प्रमुख कर, परदोष दर्शन दृष्टि को नष्ट कर, स्वदोष दर्शन को प्रमुख कर, ऐहिक स्वार्थों को गौण कर, आध्यात्म विकास को प्रमुख रखकर, उन कषायों को टिकने ही नहीं देना **कषाय प्रतिस लीनता** है । **३.** खोटे स कल्प–विकल्प उत्पन्न ही नहीं होने देना, अच्छे उन्नत स कल्पों को बढाते रहना एव मन को एकाग्र करने में अभ्यस्त होना अर्थात् धीरे धीरे स कल्प–विकल्पों से परे होना, ये सभी **मन योग प्रतिस लीनता** है । इसी प्रकार खराब वचन का त्याग या अप्रयोग, अच्छे वचनों का प्रयोग, उच्चारण और मौन का अधिकतम अभ्यास, यह **वचन योग प्रतिस लीनता** है । हाथ पाँव आदि शरीर के अ ग उपा गों को पूर्ण स यमित, स कुचित रखना, स्थिरकाय रहना, चलना, उठना, बैठना, अ ग स चालन आदि प्रवृत्तियों पर, विवेक और यतना

की विधि को अभ्यस्त रखते हुए अयतना पर पूर्ण अ कुश रखना **काय प्रतिस लीनता** है । हाथ, पाँव, मस्तक को अस्तव्यस्त एव च चलता युक्त चलाते रहना, अनावश्यक प्रवर्तन करना **काय अप्रतिस लीनता** है । **४.** एका त स्थानों में रहना, बैठना, सोना आदि चौथा **विविक्त शयनासन** प्रतिस लीनता तप है ।

(७) प्रायश्चित्त तप– प्रमाद से, परिस्थिति से या उदयाधीन होने से लगे दोषों की आलोचना आदि करना; सरलता, नम्रता, लघुता से युक्त होकर पूर्ण शुद्धि करना; यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करना, मिथ्या; दृष्कृत देना आदि **प्रायश्चित्त तप** है ।

(८) विनय तप– विनय का **सामान्य अर्थ–** नम्रता, व दना, नमस्कार, आज्ञा पालन, आदर देना, सन्मान करना, भक्तिभाव युक्त व्यवहार करना, यह सब प्रवर्तन सामान्य **विनय तप** है ।

विशेष अर्थ– आत्मा के कर्मों को दूर करने हेतु ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आराधन कर श्रुतभक्ति एव अनाशतना का व्यवहार करना; मन वचन काया को प्रशस्त रख कर कर्मब ध से आत्मा को विशेष रूप से दूर करना; अप्रशस्त मन, वचन, व्यवहार नहीं करना, ये भी विनय है । विनय के क्षेत्र, काल स ब धी नियम अनुष्ठानों का, व्यवहार का पालन करना भी **विनय तप** है । कायिक प्रवृत्तियाँ यतनापूर्वक करना, प्रत्येक व्यक्ति या प्राणी के साथ सद्व्यवहार करना इत्यादि विशेष विनय के सात प्रकार है, यथा– १. ज्ञान विनय २. दर्शन विनय ३. चारित्र विनय ४.मन विनय ५. वचन विनय ६. काय विनय ७. लोकोपचार विनय है ।

काया से उपयोगपूर्वक गमनागमन उल्ल घन–प्रल घन, बैठना उठना भी विनय में कहा गया है । अविवेकी प्रवृत्तियाँ नहीं करना भी विनय है । अर्थात् सभी प्रकार की विवेकयुक्त अनाश्रवी वृत्ति से व्यवहार करने वाला गुण स पन्न व्यक्ति विनीत कहा जाता है । इस प्रकार सभी उन्नत गुणों को विनय कहा जा सकता है । जिनका उक्त सात भेदों में समावेश हो जाता है ।

इसी अपेक्षा से उत्तराध्ययन सूत्र के पहले और ग्यारहवें

अध्ययन में अनेक गुणों वाले को विनीत कहा गया है ।

स क्षेप में– मोक्ष साधक के लिये आत्मशुद्धि, विनय के बिना स भव नहीं है । विनय व्यक्ति को अह कार से मुक्त करता है और यह स्पष्ट है कि आत्मगत दोषों में अह कार ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण दोष है । जैनागमों में विनय शब्द का तात्पर्य आचार के नियमों से भी है । उसके अनुसार आचार के नियमों का सम्यक् रूप में पालन करना विनय है । दूसरे अर्थ में विनय विनम्रता का सूचक है। इस दूसरे अर्थ का तात्पर्य है वरिष्ट एव गुढजनों का सन्मान करते हुए उनकी आज्ञाओं का पालन करना व उन्हें आदर प्रदान करना ।

(९) वैयावृत्य तप– आचार्य आदि १० स यमवान महापुढषों की यथायोग्य सेवा करना वैयावृत्य है । (१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) स्थविर (४) तपस्वी (५) रोगी (६) नवदीक्षित (७) कुल (८) गण (९) स घ (१०) साधर्मिक श्रमण । इन्हें आहार, पानी, औषध, वस्त्र-पात्र, प्रदान कर शारीरिक शाता पहुँचाना, वचन-व्यवहार से मानसिक समाधि पहुँचाना, वैयावृत्य तप है ।

(१०) स्वाध्याय तप– इसके ५ प्रकार है- (१) वाचना (२) पृच्छा (३) परिवर्तना-क ठस्थ ज्ञान का पुनरावर्तन (४) अनुप्रेक्षा (५) धर्मकथा । ढचिपूर्वक आगमों का, जिनवाणी का, भगवद् सिद्धा तों का, क ठस्थ अध्ययन करना; वा चन करना; मनन, चिंतन, अनुप्रेक्षण करना; प्रश्न-प्रतिप्रश्नों से अर्थ-परमार्थ को समझना एव इस उक्त स्वाध्याय आदि से प्राप्त अनुभव को भव्य जीवों के पथ प्रदर्शन के लिये प्रसारित-प्रचारित करना अर्थात् प्रवचन देना; स्वत: उपस्थित पर्षदा के योग्य हितावह उद्‌बोधन देना; उन्हें धर्म मार्ग में उत्साहित करना; यह सब स्वाध्याय तप है ।

(११) ध्यान तप– स्वाध्याय आदि से प्राप्त अनुभव ज्ञान के द्वारा आत्मानुलक्षी, वैराग्य वर्धक, अनित्य भावना, अशरण भावना, स सार भावना, एकत्व भावना, अशुचि भावना आदि के द्वारा आत्मध्यान में लीन बन जाना और ज्ञान, वैराग्य एव आत्मभाव में एक मेक बन जाना; चित्त-चिंतन सारे एक ही आध्यात्म विषय में

एकाग्र, स्थिर, स्थिरतम हो जाना, आत्म विकास के आत्मगुणों में पूर्ण रूपेण क्षीर नीरवत् मिल जाना; इस प्रकार समभावयुक्त आत्म विषय में एकाग्र चित्त हो जाना, बाह्य स कल्पों से पूर्ण रूपेण हट कर आध्यात्म विषयों में आत्मसात् हो जाना, तल्लीन बन जाना **ध्यान तप** है ।

स्वाध्याय के चौथे भेद रूप अनुप्रेक्षा और ध्यान की अनुप्रेक्षा दोनों ही अनुप्रेक्षा है किन्तु है दोनों अलग-अलग । एक तत्त्वानुप्रेक्षा है तो दूसरी आत्मानुप्रेक्षा । प्रस्तुत में ध्यान के चार भेद कहे हक्त, यथा- १. आर्तध्यान २. रौद्रध्यान ३. धर्मध्यान ४. शुक्लध्यान ।

नोट– ध्यान स्वरूप एव उसके भेद-प्रभेद तथा तत्स ब धी विस्तृत विचारणा आगे पृष्ट-२५६, परिशिष्ट में देखें ।

(१२) व्युत्सर्ग तप– स्वाध्याय और ध्यान में वचन मन का प्रयोग होता है किन्तु व्युत्सर्जन तप तो त्याग प्रधान है । यह अ तिम और पराकाष्ट दर्जे का तप है । इसमें त्याग ही त्याग करना होता है । यहाँ तक कि स्वाध्याय और ध्यान का भी त्याग किया जाता है । क्यों कि स्वाध्याय, ध्यान में योग प्रवर्तन है, अनुप्रेक्षा करना भी योग प्रवृत्ति है । इस व्युत्सर्ग तप में तो मन, वचन, काया के योगों के देश-सर्व त्याग(शक्य त्याग) का ही मुख्य लक्ष्य होता है ।

द्रव्य– द्रव्य व्युत्सर्ग के ४ प्रकार किये गये हक्त, यथा- (१) सामुहिकता का अर्थात् गच्छ का त्याग कर एकलविहार धारण करना **गण व्युत्सर्ग तप** है । (२) शरीर का त्याग कर कायोत्सर्ग करना अर्थात् तीनों योगों का शक्य व्युत्सर्जन करना, **कायोत्सर्ग तप** है । (३) उपधि का क्रमिक या पूर्णतया त्याग करने रूप, देश अचेलत्व या पूर्ण अचेलत्व स्वीकार करना **उपधि व्युत्सर्ग तप** है ।(४) आहार-पानी का पूर्ण रूपेण क्रमिक त्याग करना **भक्त-पान व्युत्सर्जन तप** है ।

भाव– कषाय त्याग, कर्म ब ध निवारण और स सार भ्रमण का निरोध, ये **भाव व्युत्सर्ग** के तीन प्रकार है ।

विशेष विचारणा– कायोत्सर्ग में जो लोगस्स आदि के जाप आदि की प्रवृत्ति चल रही है वह पूर्ण व्युत्सर्जन नहीं है। सही रूप में

व्युत्सर्जन वह है जिसमें वचन और काय योग के त्याग के साथ निर्विकल्पता की साधना होती है अर्थात् इसमें मनोयोग के व्यापार का भी निरोध करने का पूर्ण लक्ष्य होता है, अनुप्रेक्षा का भी त्याग होता है, यही पूर्ण कायोत्सर्ग रूप व्युत्सर्ग तप की साधना है । यह ध्यान के बाद का तप है । ध्यान से भी इसकी श्रेणी विशिष्ट दर्जे की साधना वाली है ।

आजकल इस साधना को भी ध्यान के नाम से प्रचारित किया जाता है । यथा- निर्विकल्प-ध्यान, गोय का-ध्यान, प्रेक्षा-ध्यान आदि । यह व्यवहार सत्य ध्यान हो गया है किन्तु वास्तविक सत्य नहीं है ।

कई लोगों का ऐसा सोचना है कि निर्विकल्पता छद्मस्थ के नहीं हो सकती है किन्तु उनका ऐसा एका तिक विचार अयोग्य है । मनोयोग का अ तर भी शास्त्र में बताया गया है ।प्रगाढ निद्रा में भी मनोयोग अवरूद्ध होता ही है । एव व्युत्सर्ग तप में योगों का व्युत्सर्जन करना भी आगम में तप रूप कहा गया है । इसमें मन के स कल्पों का भी व्युत्सर्जन करना समाविष्ट ही है । अत: उसका एका त निषेध करना अनुपयुक्त एव अविचारकता है । ध्यान की साधना से यह व्युत्सर्जन की साधना कुछ विशेष कठिन अवश्य है, किन्तु इसे असाध्य नहीं मानना चाहिये ।

ये सभी प्रकार के तप, ज्ञान-दर्शन-चारित्र की भूमिका के साथ ही महत्त्व शील होते हक्त अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र या चारित्रा-चारित्र नहीं है तो बिना भूमिका का तप आत्म उत्थान में, मोक्ष आराधना में महत्वशील नहीं हो सकता। अत: किसी भी छोटे या बडे तप में ज्ञान,श्रद्धान एव विरतिभाव की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये, चाहे भले ही वह उच्च ध्यान हो या परम तप व्युत्सर्ग हो । **[*तत्स ब धी कुछ स्पष्टीकरण आगे "ध्यान परिशिष्ट" में किया गया है* ।]**

चतुर्विध मोक्ष मार्ग की सापेक्ष साधना ही मोक्ष फलदायी हो सकती है । उस साधना के चार अ ग हक्त- १. सम्यग्ज्ञान २. सम्यग्श्रद्धान ३. सम्यग्चारित्र ४. सम्यग्तप । यथा-

णाण च द सण चेव, चरित्त च तवो तहा ।
एय मग्ग अणुपत्ता, जीवा गच्छ ति सोग्गइ ॥-उत्तरा.अ.२८, गा-३॥

भावार्थ- ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव तप रूप इस चतुर्विध मोक्ष मार्ग को प्राप्त करके, उसकी आराधना करने वाले जीव, मोक्ष रूपी सद्गति को प्राप्त करते हक्त । ॥ उद्देशक-७ स पूर्ण ॥

प्रश्न-३४ : जीव के आयुब ध एव परभव गमन के स ब ध में यहाँ क्या सिद्धा त बताया गया है ?

उत्तर- प्रस्तुत उद्देशक-८ में इस विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का निरूपण किया गया है, यथा- **(१)** जीव अपने ही अध्यवसाय और योग- मन, वचन, काया की प्रवृत्ति के सम्मिश्रण से तदनुरूप परभव का आयुष्य ब ध करता है । **(२) आयु-**भवस्थिति के क्षय होने पर जीव परभव के लिये प्रस्थान करता है । आयु= आयुष्य कर्मदलिक । **भव**=भव निब धक अवगाहना आदि ६ बोल । **स्थिति**=आयुष्य, उम्र । इन तीनों के क्षय के लिये मूलपाठ में- **आउक्खएण , भवक्खएण , ठिईक्खएण** तीन शब्दों का प्रयोग अनेक जगह आता है ।**(३)** आयुष्य क्षय होने पर जीव की जो गति स्थूल शरीर के बिना होती है, वह शीघ्रगामी गति होती है अर्थात् १-२-३ समय में तो १४ राजुलोक जितने दूर क्षेत्र में पहुँच जाता है ।

(४) एकेन्द्रिय से एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने वालों के उत्कृष्ट ४ समय की गति होती है । त्रस में उत्पन्न होने वाले के उत्कृष्ट ३तीन समय की गति होती है । एकेन्द्रिय में कवचित् पाँच समय की गति का कथन भी ग्रंथों में मिलता है, आगम में उसका कथन नहीं है । **(५)** जीव की इस 'परभविक गति' को **प्लवक गति** कहा गया है अर्थात् कूदने के समान जीव एक स्थान से चलता है बीच में ढके बिना सीधा एक-दो समय में ग तव्य स्थान में पहुँच जाता है । **(६)** जीव स्वय अपनी ऋद्धि, कर्म एव प्रयोग से परभव में जाता है । इसमें अन्य किसी का (ईश्वर आदि का) प्रयोग या कर्म नहीं काम आता है । **(७)** समुच्चय जीव के समान ही २४ द डक के जीवों के लिये एव भवी, अभवी, समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि के लिये भी उपरोक्त सिद्धा त समझ लेने चाहिये । ॥ उद्देशक ८ से १२ स पूर्ण ॥

शतक-२६ : उद्देशक-१ से ११

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इसमें ११ उद्देशकों के माध्यम से तीनों काल स ब धी जीव के आठ कर्मों के ब ध या अब ध स ब धी विचारणा ११ द्वार के ४७ बोलों के अवल बन से समुच्चय जीव और २४ द डक में की गई है । स क्षेप में कर्म स ब धी तत्त्व ज्ञान का इसमें चौभ गी द्वारा निरूपण है । तत्त्वज्ञान क्षेत्र में यह प्रकरण **'४७ बोल की ब धी'** इस नाम से महत्त्वपूर्ण थोकडे के रूप में क ठस्थ किया जाता है । इस शतक का नाम भी **ब धी शतक** प्रसिद्ध है ।

इस शतक के प्रार भ में विषय वर्णन के ११ द्वार की गाथा है किंतु ११ उद्देशकों के सूचन करने वाली गाथा नहीं है तदपि उन उद्देशकों के स्वत त्र विषय इस प्रकार है-

प्रथम उद्देशक- समुच्चय जीव और २४ द डक के सामान्य जीवों पर ४७ बोलों के माध्यम से कर्मों के त्रिकाल ब ध स ब धी चौभ गी के कितने भ ग किसमें होते है, तत्स ब धी निरूपण है ।

उद्देशक-२,४,६ और ८- इन चार उद्देशकों में क्रमश: अन तरोत्पन्नक, अन तरावगाढ, अन तराहारक और अन तरपर्याप्तक जीवों पर उपरोक्त त्रिकालिक कर्म स ब धी चौभ गी द्वारा निरूपण है ।

उद्देशक-३,५, ७ और ९- इन चार उद्देशकों में क्रमश: पर परोत्पन्नक, पर परावगाढ, पर पराहारक और पर परपर्याप्तक जीवों पर उपरोक्त त्रिकालिक कर्मब ध की चौभ गी द्वारा निरूपण है ।

उद्देशक-१०, ११- चरम जीव= अपने स्थान में वापिस कभी नहीं आने वाले अर्थात् एक, दो या कुछ भव करके मोक्ष चले जाने वाले जीवों का दसवें उद्देशक में और **अचरम जीव**= वापिस अपने स्थान में भविष्य में जन्म धारण करने वाले जीवों का ग्यारहवें उद्देशक में उपरोक्त कर्मब ध स ब धी निरूपण है ।

प्रश्न-२ : इस 'ब धी शतक' में वर्णन के माध्यमभूत ११ द्वार और ४७ बोल कौन से हक्त और २४ द डकों में कितने-कितने बोल होते हक्त ?

उत्तर- शतक के प्रार भ में प्राप्त गाथा के अनुसार एव समस्त वर्णन के अनुसार ११ द्वार और उसके ४७ भेद रूप बोल इस प्रकार है-

क्रम	द्वार	भेद खुलासा	भेद स ख्या
१	जीवद्वार	समुच्चय जीव	१
२	लेश्याद्वार	सलेशी, ६ लेश्या, अलेशी	८
३	पक्ष	कृष्णपक्षी, शुक्लपक्षी	२
४	दृष्टि	तीनों दृष्टि	३
५	अज्ञान	समुच्चय अज्ञान, ३ अज्ञान	४
६	ज्ञान	समुच्चय ज्ञान, ५ ज्ञान	६
७	स ज्ञा	चार स ज्ञा, नोस ज्ञोपयुक्त	५
८	वेद	सवेदी, ३ वेद, अवेदी	५
९	कषाय	सकषायी, ४ कषायी, अकषायी	६
१०	योग	सयोगी, ३ योग, अयोगी	५
११	उपयोग	साकार, अनाकार	२
		कुल बोल	**४७**

२४ द डक में पाये जाने वाले बोल :-

जीव	बोल	विवरण
नारकी में	३५	चार लेश्या, २ ज्ञान, नो स ज्ञा, ३ वेद, अकषाय, अयोग ये १२ कम हुए ।
भवनपति व्य तर में	३७	एक लेश्या और एक वेद बढा(३५ में)
ज्योतिषी और २ देवलोक	३४	३७ में ३ लेश्या कम
३ देवलोक से ग्रैवेयक तक	३३	३४ में एक वेद कम
पाँच अणुत्तर विमान	२६	३३ में कृष्णपक्षी, २ दृष्टि, ४ अज्ञान कम
पृथ्वी, पाणी, वनस्पति	२७	जीव,५ लेश्या,२ पक्ष,१ दृष्टि,३ अज्ञान, ४ स ज्ञा, २ वेद, ५ कषाय, २ योग, २ उपयोग =२७
तेउ वायु	२६	२७ में तेजोलेश्या कम
३ विकलेन्द्रिय	३१	२६ में समदृष्टि, ३ ज्ञान, १ वचनयोग, ५बढे
तिर्यंच प चेन्द्रिय	४०	अलेशी, अवेदी, अकषायी, अयोगी, नो स ज्ञा, २ ज्ञान, ये ७ कम (४७ में)
मनुष्य	४७	सभी

प्रश्न-३ : तीनों काल स ब धी ब ध-अब ध के ४ भ ग कौन से हत्त और वे प्रत्येक कर्म में कैसे पाये जाते हत्त?

उत्तर- तीनों काल में ब ध-अब ध की चौभ गी-

(१) पूर्व में कर्म बा धा था, वर्तमान में बा धता है, भविष्य में बा धेगा।

(२) बा ध्या था, बा धता है, नहीं बा धेगा ।

(३) बा ध्या था, नहीं बा धता है, बा धेगा ।

(४) बा ध्या था, नहीं बा धता है, नहीं बा धेगा ॥

कर्मों में ब धी के ४ भ गों का अस्तित्व-

कर्म	पहलाभ ग	दूसराभ ग	तीसराभ ग	चोथा भ ग
पाप कर्म,मोह कर्म में	अभवी आदि की अपेक्षा	क्षपक श्रेणी के ९वें गुण॰तक	उपशम श्रेणी	१२-१३-१४ गुणस्थान में
ज्ञानवरणीय आदि ५ में	दसवें गुण. के द्विचरम समय तक	चरम समय में	ग्यारहवाँ गुणस्थान में	१२-१३-१४ गुणस्थान में
वेदनीय कर्म	तेरहवें गुण. के द्विचरम समय तक	तेरहवें गुण. के चरम समय में	X	१४वें गुण-स्थान में
आयुष्य कर्म	अभवी आदि की अपेक्षा	अगले भव में मोक्ष गामी	अचरम शरीरी २/३ आयुष्य तक	चरम शरीरी या मनुष्यायु बा धे हुए जीव में

विशेष- *यहाँ पर पापकर्म से समुच्चय आठों कर्मों का एक साथ कथन है, उसमें मोहकर्म की मुख्यता होती है । अत: समुच्चय पापकर्म का कथन और मोहकर्म का कथन समान होने से कोष्टक में दोनों का कथन साथ में दिया गया है । सूत्रपाठ में पहले पापकर्म की पृच्छा है और बाद में ज्ञानावरणीय आदि ८ कर्मों की क्रमश: पृच्छा है । कोष्टको में सरीखें वर्णन को साथ में कहने के लिये कर्मों का क्रम नहीं रखा जाता है । इसी कारण पाँच कर्मों का कथन साथ में किया है, शेष तीन कर्मों का कथन अलग पहले-पीछे किया है ।*

प्रश्न-४ : चौवीस द डक में पाये जाने वाले त्रैकालिक कर्मब ध का स्वरूप किस प्रकार बताया गया है ?

उत्तर- २४ द डक के बोलों में प्रत्येक कर्म के त्रैकालिक भ ग:-

कर्म	जीव	बोल	भग
मोहकर्म (पापकर्म)	जीव, मनुष्य	२० (जीव, सलेशी, शुक्ललेशी, शुक्लपक्षी, सम्यग्दृष्टि, ५ ज्ञान, नोस ज्ञोपयुक्त, अवेदी, सकषायी, लोभ, ४ योग, २ उपयोग=२०)	४
		३ (अलेशी, केवली, अयोगी) में	१ (चौथा)
		१ (अकषायी) में	२ (३,४)
		२३ (शेष बोल सभी) में	२ (१,२)
	२३ द डक	यथायोग्य(जिसमें जितने बोल हो उनमें)	२ (१,२)
पाँचकर्म	जीव,मनुष्य	१८(२० में सकषायी और लोभ कम)	४
		३ (अलेशी, केवली अयोगी) में	१(चौथा)
		१ (अकषायी) में	२ (३,४)
		२५ (शेष सभी)	२ (१,२)
	२३ द डक	यथा योग्य बोलो में	२ (१,२)
वेदनीयकर्म	जीव,मनुष्य	१२ (जीव, सलेशी, शुक्ललेशी, शुक्लपक्षी, समदृष्टि, सणाणी, केवलज्ञानी, नोस ज्ञोपयुक्त अवेदी, अकषायी, दो उपयोग, ये १२) में	३(१,२,४)
		२ (अलेशी, अयोगी) में	१(चौथा)
		३३ बोल(शेष सभी) में	२ (१,२)
	२३ द डक	यथा योग्य बोलो में	२ (१,२)
आयुष्यकर्म	जीव	१ कृष्णपक्षी में	२ (१,३)
		३ मिश्रदृष्टि, अवेदी, अकषायी में	२ (३,४)
		३ अलेशी, केवली, अयोगी में	१(चौथा)
		२ मन:पर्यव, नोस ज्ञोपयुक्त में	३(१,३,४)
		३८ (शेष सभी) में	४ भग
आयुष्यकर्म	नरक देव में	२ (कृष्णलेशी, कृष्णपक्षी) में	२ (१,३)
		१ (मिश्रदृष्टि) में	२ (३,४)

आयुकर्म	नरक देव में	शेष बोलो में	४ भग
	सर्वार्थ सिद्ध	यथायोग्य सभी में	३ (२,३,४)
	पृथ्वी,पाणी, वनस्पति	१ तेजो लेश्या में	१ (३)
		१ कृष्णपक्षी में	२ (१,३)
		२५ (शेष सभी) में	४ भग
	तेउ,वायु	यथायोग्य (सभी) में	२ (१,३)
	विकलेन्द्रिय	४ (समदृष्टि ३ ज्ञान) में	१ (३)
		२७ (शेष सभी) में	२ (१,३)
	तिर्यंच प चेन्द्रिय	१ कृष्णपक्षी	२ (१,३)
		१ मिश्रदृष्टि	२ (३,४)
		५ (समदृष्टि ४ ज्ञान)	३ (१,३,४)
		३३ (शेष सभी) में	४ भग
	मनुष्य	३ (अलेशी, केवली, अयोगी) में	१ (४)
		३ (मिश्रदृष्टि, अवेदी, अकषायी) में	२ (३,४)
		७ (समदृष्टि, ५ ज्ञान, नोस ज्ञा०) में	३ (१,३,४)
		१ (कृष्णपक्षी) में	२ (१,३)
		३३ (शेष बोल) में	४ भग

॥उद्देशक- १ स पूर्ण॥

प्रश्न-५ : अन तरोत्पन्नक आदि जीवों में कर्मब ध के त्रैकालिक भ ग किस प्रकार होते हक्त ?

उत्तर- (१) अन तरोत्पन्नक (२) अन तरावगाढ (३) अन तराहारक और (४) अन तरपर्याप्तक (आहार पर्याप्तक) ये चारों प्रकार के जीव जन्म के प्रार भिक(प्रथमादि) समय में अस्तित्व वाले हक्त । अत: इनमें (१) आयुष्यकर्म का ब ध नहीं होता है (२) सात कर्म नियमत: ब धते हक्त (३) अपर्याप्त में नहीं पाये जाने वाले अर्थात् मात्र पर्याप्त में ही पाये जाने वाले बोल इनमें नहीं होते हक्त, यथा- मिश्रदृष्टि, मनयोग, वचनयोग, तिर्यंच में विभ गज्ञान, अवधिज्ञान और मनुष्य में उपर के गुणस्थान वाले कई बोल नहीं होते । अत: २४ द डक में

पाये जाने वाले बोलों में कुछ-कुछ कम होते हक्त, वे इस प्रकार हक्त-

अन तरोत्पन्नक आदि चारों में ४७ बोल :-

जीव	बोल	विवरण
नारकी में	३२	(३५ में मिश्रदृष्टि, २ योग, यों ३ कम)
भवनपति व्य तर	३४	३७ में तीन कम
ज्योतिषी २ देव	३१	३४ में तीन कम
३ से ग्रैवयक	३०	३३ में तीन कम
५ अणुत्तर देव	२४	२६ में दो योग कम
पाँच स्थावर	२७/२६	पूर्ववत्
तीन विकलेन्द्रिय	३०	३१ में वचन योग कम
तिर्यंच प चेन्द्रिय	३५	४० में मिश्रदृष्टि, विभ ग, अवधिज्ञान २ योग, ये पाँच कम ।
मनुष्य	३६	३ (अलेशी, केवली, अयोगी) ३ (मिश्रदृष्टि, अवेदी, अकषायी) २ (मन:पर्यव, नो स ज्ञा) २ योग, १ विभ ग, ये ११ कम हुए ४७ में ।

सात कर्म-इन अन तरोत्पन्क आदि चारों में **सात कर्म** अवश्य बा धते हक्त। अत: २४ द डक में पाये जाने वाले सभी बोलों में चार भ ग से वर्तमान में बा धने के २ भ ग(पहला दूसरा) ही होते हक्त और वर्तमान में नहीं बा धने वाले दो भ ग(तीसरा-चौथा) नहीं होते हक्त ।

होने वाले दो भ ग-(१) सातोंकर्म बा धे थे, बा धते हक्त और बा धेंगे । (२) सातों कर्म बा धे थे, बा धते हक्त और नहीं बा धेंगे । इन में से प्रथम भ ग अभवी की अपेक्षा और दूसरा भ ग भवी की अपेक्षा होता है ।

नहीं होने वाले दो भ ग-(१) सातों कर्म बा धे थे, नहीं बा धते और बा धेंगे । (२) सातों कर्म बा धे थे, नहीं बा धते हक्त और नहीं बा धेंगे । इन दोनों में वर्तमान में नहीं बा धने का कथन है जब कि अन तरोत्पन्नक आदि जीव तो नियमा सातों कर्म वर्तमान में बा धते ही हक्त अत: दोनों भ ग नहीं हो सकते ।

आयुष्य कर्म–अन तरोत्पन्नक आदि चारों **आयुष्य कर्म** बा धते ही नहीं है क्यों कि उत्पत्ति के बाद अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त बीतने पर ही जीव आयुष्य बा ध सकते हक्त । अतः आयुष्य कर्म के स ब ध में वर्तमान में बा धने के दो भ ग(पहला, दूसरा) नहीं होते हक्त । तीसरा भ ग– आयुष्य बा धा था, नहीं बा धते हक्त और बा धेंगे । यह एक भ ग ही २३ द डक के जीवों में होता है और मनुष्यों में मोक्षगामी जीवों की अपेक्षा चौथा भ ग(बा धा था, नहीं बा धते हक्तै, नहीं बा धेंगे) भी हो सकता है अतः अन तरोत्पन्नक मनुष्यों में तीसरा-चौथा दो भ ग आयुष्य कर्म में हो सकते हक्त । मनुष्य में पाये जाने वाले सभी बोल वाले चरमशरीरी मोक्षगामी हो सकते हक्त । केवल एक कृष्णपक्षी बोलवाला जीव मोक्षगामी नहीं होता, अतः उसमें एक तीसरा भ ग ही होता है, चौथा नहीं होता है ।

अन तरोत्पन्नक २४ द डक में आठ कर्म स ब धी भ ग :-

७ कर्म	२४ द डक	यथायोग्य सभी बोलो में	२ (१,२)
आयु कर्म	२३ द डक	यथायोग्य सभी बोलो में	१ (३)
	मनुष्य	१ कृष्णपक्षी में	१ (३)
		३५ शेष सभी में	२ (३,४)

॥ उद्देशक-२,४,६,८ स पूर्ण ॥

प्रश्न-६ : पर परोत्पन्नक आदि जीवों में कर्मब ध के त्रैकालिक भ ग किस प्रकार होते हक्त ?

उत्तर– (१) पर परोत्पन्नक (२) पर परावगाढ (३) पर पराहारक (४) पर पर पर्याप्तक । ये चारों जीव उत्पत्ति के प्रार भिक समय को छोड कर स पूर्ण उम्रभर होते हक्त । पूरे भव में होने से इन चारों बोलों का स पूर्ण कर्मब ध स ब धी वर्णन प्रथम उद्देशक के समान ही है सर्वत्र पर परोत्पन्नक आदि विशेषण लगा देना है । यथा- पर परोत्पन्नक नारकी आदि, पर परावगाढ नारकी आदि । यों चारों का कथन करने से ४ उद्देशक पूर्ण हो जाते हक्त । समुच्चय जीव अन तर-पर पर कुछ भी

नहीं होता है अतः उसका कथन मात्र प्रथम उद्देशक में ही होता है, शेष १० उद्देशकों में नहीं होता है । ॥ उद्देशक ३,५,७,९ स पूर्ण ॥

प्रश्न-७ : चरम और अचरम का कर्म स ब धी यह वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- चरम– २३ द डक के जीवों में जो अपने द डक में वापिस आकर नहीं जन्मेंगे, वहाँ से निकलने के बाद कभी भी मोक्ष चले जायेंगे, वे २३ द डक के चरम जीव कहलाते हक्त । मनुष्य में चरमजीव मनुष्य के लगातार भव(आठ भव) करे, अन्य द डक में नहीं जावे तो वे मनुष्य के चरम कहे गयेहक्त । अर्थात् वे १,२ यावत् ८ भवों से मोक्षगामी ।

अतः चरम के इस उद्देशक में २४ द डक में पाये जाने वाले सभी बोलों का कर्मब ध स ब धी वर्णन और भ ग प्रथम उद्देशक के समान है । फिर भी कृष्णपक्षी का एक बोल चरम नहीं हो सकता है अतः सभी द डक में पाये जाने वाले बोलों में एक बोल कम करके शेष बोलों में कर्म ब ध का वर्णन प्रथम उद्देशक के समान किया जाता है । ॥ उद्देशक-१० स पूर्ण ॥

अचरम– अन्य द डक में जाकर वापिस अपने द डक में आने वाले जीवों को यहाँ अचरम कहा गया है । अतः अचरम के इस वर्णन में कुछ भिन्नता है; यथा-

(१) नियमतः मोक्षगामी बोल-अलेशी, केवली, अयोगी का कथन इसमें नहीं होता । अतः ४७-३=४४ बोल का कथन है । (२) सर्वार्थसिद्ध में जीव वापिस नहीं जाता अतः उसका यहाँ अचरम में कथन नहीं होता । (३) ब धी के चार भ ग में चौथा भ ग (कर्म बा धा था, नहीं बा धते हक्त, नहीं बा धेंगे ।) अचरम में नहीं पाया जाता है क्यों कि अचरम तो भविष्य में आठों कर्म बा धेंगे ही, मोक्ष नहीं जाने वाले होने से । अतः तीन भ गों की अपेक्षा ही कथन करना ।

इन विशेषताओं के सिवाय अचरम का भी स पूर्ण वर्णन प्रथम उद्देशक के समान है ।

२४ द डक के अचरम जीवों में बोल और भ ग :-

कर्म	जीव	बोल विवरण	भग
पापकर्म ओर मोहकर्म	मनुष्य	२० बोल=जीव,सलेशी, शुक्ललेशी, शुक्लपक्षी, सम्यग्दृष्टि, सज्ञानी, ४ ज्ञान, नोस ज्ञोपयुक्त, अवेदी, सकषायी, लोभकषायी, सयोगी, तीनयोगी, दोनों उपयोग ।	१,२,३
		१-अकषायी	१ तीसरा
		३-अलेशी,केवली, अयोगी, ये (तीनबोल)नहीं होते हक्त ।	x
		२३ शेष =५ लेश्या, कृष्णपक्षी, मिथ्यादृष्टि, ४ अज्ञान, ४ स ज्ञा, ४ वेद, ३ कषाय, मिश्रदृष्टि	१,२
	२३द डक में	यथायोग्य बोलों में	१,२
५ कर्म- ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, अ तराय	मनुष्य	१८= उपरोक्त २० में से सकषायी और लोभकषाय कम हुए	१, २, ३
		१-अकषायी	तीसरा
		३-अलेशी,केवली, अयोगी (तीनबोल)नहीं होते हक्त ।	X
		२५ शेष बोल में	१,२
	२३ द डक	यथा योग्य बोलों में	१,२
वेदनीयकर्म	२४ द डक	यथायोग्य बोलों में	१,२
आयुष्यकर्म	नैरयिक	३४ बोलों में	१,३
		१-मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा
	भवनपति, व्य तर	३६ बोलों में	१,३
		१-मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा
	ज्योतिषी, २ देवलोक	३३ बोलों में	१,३
		१ मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा
	नवग्रैवेयक तक	३२ बोलों में	१,३
		१ मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा
	४अनुत्तरवि.	२६ बोलों में	१,३

	पृथ्वी पानी वनस्पति	२६ बोलों में	१,३
		१ तेजोलेश्या में	१ तीसरा
	तेउ-वायु में	२६ बोलों में	१,३
	तीन विकलेन्द्रिय	२७ बोलों में	१,३
		४ बोल में = सम्यग्दृष्टि, ३ ज्ञान	१ तीसरा
	तिर्यंच प चेन्द्रिय	३९ बोलों में	१,३
		१ मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा
	मनुष्य	४१ बोलों में	१,३
		३ अवेदी, अकषायी, मिश्रदृष्टि में	१ तीसरा

प्रश्न-८ : जन्म नपु सक मनुष्य क्या उसी भव में मोक्षगामी हो सकता है ?

उत्तर- अन तरोत्पन्नक के उद्देशक में मनुष्य में कृष्णपक्षी के सिवाय पाये जाने वाले सभी बोलों में आयुष्य कर्म बा धने में चौथा भ ग लिया गया है अर्थात् कृष्णपक्षी के सिवाय प्रथम समय वाले सभी बोलों में मनुष्य चतुर्थ भ ग अनुसार ''आयुष्य कर्म उस समय भी नहीं बा धते हक्त और भविष्य में भी नहीं बा धेंगे;'' तो पूरे भव में आयुष्य नहीं बा धने से सभी बोलों वाले मनुष्य का मोक्ष जाना भी सिद्ध होता है । अन तरोत्पन्नक जीव में कृष्णपक्षी के सिवाय के बोलों में तीनों वेद भी सामिल हक्त । अत: जन्म समय के तीनों वेद वालों में आयुष्य कर्म ब ध का चौथा भ ग होने से वे ''मनुष्य आयुष्य कर्म नहीं बा धते हक्त और नहीं बा धेंगे'' ऐसा भ ग होने से वे मोक्षगामी हो सकते हक्त ।

इस प्रकार इस शतक के दूसरे उद्देशक के आयुष्य ब ध के वर्णन से जन्म नपु सक का भी चरम शरीरी होना, मोक्षगामी होना स्पष्ट होता है ।

शतक-२७ : उद्देशक-१ से ११

प्रश्न-१ : इस शतक में कर्म स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- छब्बीसवें शतक में कर्मब ध स ब धी निरूपण जिसप्रकार किया गया है उसी तरह इस शतक में कर्मों को पुष्ट करने स ब धी वर्णन ११ द्वारों के ४७ बोलों में समुच्चय जीव और २४ द डक पर पापकर्म और आठ कर्मों के ४ भ गों का निरूपण प्रथम उद्देशक में किया गया है । दूसरे से ग्यारहवें उद्देशक तक अन तरोत्पन्नक से लेकर अचरम जीवों का कथन भी २६वें शतक के समान है । इन सभी ग्यारह उद्देशों में कर्मब ध के स्थान पर कर्म पुष्ट करने का शब्दप्रयोग किया जाता है । पुष्ट करने के अर्थ की प्रधानता से इस शतक का नाम **'करिंसु शतक'** है । छब्बीसवें शतक का नाम **'ब धीशतक'** है ।

शतक-२८ : उद्देशक-१ से ११

प्रश्न-१ : इस शतक में कर्म स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इस शतक में बहुवचन से विवक्षित अनेक जीवों के लिये "भूतकाल में ४ गति में से कहाँ कर्मों का समार्जन(उपार्जन) और उनका आचरण(भुगतान) किया," इस स ब ध में चारों गतियों को लेकर आठ भ ग किये हक्त- (१) विवक्षित अनेक जीवों ने (सभी ने) मात्र तिर्यंच गति में भूतकाल में कर्म समार्जन और समाचरण किया अर्थात् वे जीव अभी तक अनादि से तिर्यंच गति में ही रहे हक्त, अन्य गति में भव या कर्म उपार्जन नहीं किया है उनकी अपेक्षा यह प्रथम भ ग बनता है । ***(इस भ ग वाले जीवों की अपेक्षा ही अव्यवहार राशी की सिद्धि होती है)*** अथवा (२) विवक्षित अनेक जीवों ने तिर्यंच और नरक में कर्म समार्जन एव समाचरण किया है अथवा (३) विवक्षित अनेक जीवों ने तिर्यंच तथा मनुष्य में कर्म समार्जन एव समाचारण किया है । इस प्रकार (४) तिर्यंच और देवगति में (५)

तिर्यंच, नरक,मनुष्य में (६) तिर्यंच, नरक, देव में (७) तिर्यंच, मनुष्य, देव में (८) अथवा तिर्यंच, नरक, मनुष्य और देव चारों गति में विवक्षित अनेक जीवों ने कर्मों का समार्जन एव समाचरण किया है ।

इसी तरह ४७ बोलों में, फिर २४ द डक और उसमें पाने वाले बोलो में पापकर्म और आठों कर्म के भूतकाल में उपार्जन और फल भुगतान के आठ विकल्प सर्वत्र होते हक्त । २६ वें शतक में कर्म ब ध के त्रैकालिक ४ भ गों में से कम-ज्यादा भ ग होते हक्त और इस शतक के प्रकरण में सर्वत्र बिना किसी विकल्प के आठ ही भ ग होते हक्त ।

अन तरोत्पन्नक आदि अचरम तक के सभी उद्देशक में जहाँ जो बोल २६ वें शतक में कहे गये हक्त, जिस प्रकार कम ज्यादा कहे गये हक्त वैसे ही सभी पृच्छा का यहाँ कम ज्यादा करके कथन किया जाता है । भ गों का फर्क जो २६वें शतक में होता है, वैसा यहाँ नहीं होकर सर्वत्र भ ग तो ८ ही होते हक्त । बोलों का फर्क आदि २६वें शतक के समान यहाँ भी है ही । मात्र भ ग की स ख्या सर्वत्र ११ उद्देशक तक के बोलों में **आठ ही** स्थिरता पूर्वक कही जाती है । इसका कारण यह है कि २६वें शतक में वर्तमान और भविष्यकाल भी साथ में अपेक्षित है किन्तु इस अट्ठावीसवें शतक में केवल भूतकाल की ही पृच्छा है, वर्तमान एव भविष्य की पृच्छा नहीं है ।

शतक-२९ : उद्देशक-१ से ११

प्रश्न-१ : इस शतक में कर्म स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इसमें विवक्षित अनेक जीवों का (बहुवचन से) विवक्षित एक भव में कर्मों के वेदन प्रार भ और उस गति में कर्मवेदन की समाप्ति का कथन है कि- क्या यह कर्मवेदन प्रार भ और वेदन समाप्ति उन विवक्षित जीवों के उस विवक्षित गति में साथ में प्रार भ होकर साथ में ही समाप्त होते हक्त या अलग-अलग प्रार भ होकर अलग-अलग भी समाप्त होते हक्त ? उत्तर में चारों भ ग स्वीकार किये

गये हक्त, यथा- (१) कई जीव साथ में कर्मवेदन प्रार भ करके और साथ में समाप्त करते हक्त (२) कई जीव साथ में प्रार भ करके अलग-अलग समय में स पन्न करते हक्त । (३) कई जीव प्रार भ अलग-अलग समय करके साथ में समाप्त करते हक्त । (४) कई जीव अलग-अलग प्रार भ करके समाप्त भी अलग-अलग करते हक्त । ये चारों भ ग बनने का कारण भी स्पष्ट किया गया है । यथा- **(१) समाउया-समोववण्णगा-** साथ में उत्पन्न होने वाले(आयुष्य प्रार भ करने वाले)और आयुष्य समान होने से साथ में ही मरने वाले(आगामी भव में साथ में जन्मने वाले) जीवों में पहला भ ग होता है । **(२) समाउया-विसमोववण्णगा-** साथ में उत्पन्न होवे और अलग-अलग समय मरे; उनमें दूसरा भ ग (उस भव स ब धी समस्त कर्मवेदन प्रार भ साथ में और समाप्ति अलग) होता है ।**(३) विसमाउया-समोववण्णगा-** अलग समय में इस भव में उत्पन्न हुए और आगामी भव में एक ही समय में उत्पन्न होवे अर्थात् एक साथ में मरे उनमें तीसरा भ ग (उस भव स ब धी समस्त कर्मवेदन प्रार भ अलग और समाप्ति साथ में) होता है । **(४) विसमाउया-विसमोववण्णगा-** अलग समय में (इस भव में) उत्पन्न होने वाले और अलग-अलग समय में मरकर आगामी भव में उत्पन्न होवे उनमें चौथा भ ग (कर्मवेदन प्रार भ भी अलग और कर्मवेदन समाप्ति भी अलग) होता है ।

इस प्रकार ११ द्वार ४७ बोल ८ कर्म २४ द डक स ब धी उक्त वर्णन में ये चारों भ ग कहना । फिर अन तरोत्पन्नक आदि ४ उद्देशों में दो भ ग ही कहना । पर परोत्पन्नक आदि शेष सभी (६) उद्देशों में चार भ ग कहना । अन तरोत्पन्नक आदि में सभी जीव साथ में ही जन्मते हक्त भिन्न समय में जन्मने का विकल्प वहाँ नहीं होता है, अतः चार भ ग नहीं बनकर दो भ ग ही बनते हक्त ।

शतक-३० : उद्देशक-१ से ११

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस शतक का नाम **'समवसरण'** है । **समवसरण** शब्द यहाँ वादी और सिद्धा त अर्थ में प्रयुक्त है । समवसरण ४ कहे हक्त अर्थात् यहाँ ४ सिद्धा त वादी का कथन २६वें शतक वाले ११ द्वार ४७ बोल में किया गया है । इन ४७ बोलों के समवसरण में आयुष्य ब ध और भवी-अभवी का निरूपण है । ११ उद्देशकों का विभाजन २६वें शतक के समान अन तरोत्पन्नक आदि रूप में किया गया है ।

प्रश्न-२ : चार समवसरण और उनका विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर- (१) क्रियावादी (२) अक्रियावादी (३) अज्ञानवादी (४) विनयवादी ये चारों ही यहाँ समवसरण स ज्ञा से वर्णित हक्त ।

कहीं पर ये चारों ही वादियों के भेद एका तवादी रूप में कह कर सभी को मिथ्यादृष्टि गिना गया है । वहाँ इन चारों के ३६३ भेद (१८०+८४+६७+३२) माने गये हक्त । किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में क्रियावादी से सम्यग्दृष्टि एव ज्ञान क्रिया के सुमेल वाले, स्याद्वादमय सम्यग् सिद्धा त का ग्रहण किया गया है । शेष **तीनों** एका तवादी मिथ्यादृष्टि रूप में स्वीकार किये गये हक्त । उनमें-(१) अक्रियावादी-तो ज्ञान ही ज्ञान से कल्याण होना मानता है, क्रिया का निषेध करता है । (२) अज्ञानवादी- ज्ञान का ख डन करता है, अज्ञान और शून्यता से मुक्ति मानता है । (३) विनयवादी- केवल विनय से ही मुक्ति मानता है, ज्ञान-क्रिया दोनों का निषेध करता है । इस सिद्धा त वाला ऐसा मानता है कि जो भी दिखे, जो भी मिले, उसे प्रणाम करते जाओ, केवल नम्रता-विनय से ही कल्याण हो जायेगा, ज्ञान और क्रिया का श्रम करना व्यर्थ है ।

प्रश्न-३ : चार समवसरण, आयुब ध, भवी-अभवी आदि का वर्णन समुच्चय जीव और २४ द डक में किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- समुच्चय जीव के ४७ बोलों में समवसरण कितने, २४ द डक में पाने वाले बोलों में समवसरण कितने और समवसरणों में किस

गति का आयुब ध होता है इत्यादि वर्णन कोष्टक में दिया जा रहा है ।

समुच्चय जीव में समवसरण और आयु ब ध :-

४७ बोल	समवसरण	आयुब ध
कृष्णपक्षी, मिथ्यादृष्टि,४अज्ञान	३	४ गति का
मिश्रदृष्टि	अज्ञानवादी विनयवादी	दोनों वादी में अब ध
सम्यग्दृष्टि, चार ज्ञान	१ क्रियावादी	२ देव, मनुष्य का
तीन अशुभ लेश्या	४	क्रियावादी-मनुष्य/अब ध ३ समवसरण-४ गति का
तीन शुभ लेश्या	४	क्रियावादी-देव, मनुष्य का ३-समवसरण-३ गति का
मन:पर्यव ज्ञान नो स ज्ञोपयुक्त	१	वैमानिक देव का
अवेदी, अकषायी, अयोगी अलेशी, केवली	१	अब ध
शेष २२ बोल	४	क्रियावादी- २ गति का ३ समवसरण-४ गति का

विशेष- तीन अशुभ लेश्या में क्रियावादी नारकी, मनुष्यायु ब ध करते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच आयुब ध नहीं करते हक्त । तीन शुभ लेश्या में क्रियावादी देवता, मनुष्यायु का ब ध करते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच, देवायु का ब ध करते हक्त ।

२४ द डक में समवसरण आदि:-

द डक	४७ बोल	समवसरण	आयुब ध
नरक	कृष्णपक्षी आदि ६ बोल	३	२ (मनुष्य, तिर्यंच का)
	मिश्रदृष्टि,	२	अब ध
	सम्यग्दृष्टि ४ ज्ञान	१	मनुष्य का
	शेष २३ बोल	४	क्रियावादी-मनुष्य का ३ समवसरण-दोनों का
देव ग्रैवेयक तक	कृष्णपक्षी आदि ६ बोल	३	मनुष्य, तिर्यंच का
	मिश्रदृष्टि	२	अब ध
	सम्यग्दृष्टि, ४ ज्ञान	१	मनुष्य का

	शेष २३ बोल	४	क्रियावादी-मनुष्य का ३ समवसरण-दोनों का, ९वें देवलोक से आगे- १ मनुष्यायु का
अणुत्तर देव	२६ बोल	१	मनुष्यायु
तीन स्थावर	तेजोलेश्या	अक्रियावादी अज्ञानवादी	अब ध
तीन स्थावर	शेष २६ बोल	अक्रियावादी अज्ञानवादी	मनुष्य, तिर्यंचायु
तेउ, वायु	२६ बोल	अक्रियावादी अज्ञानवादी	१ तिर्यंचायु
विकलेन्द्रिय	सम्यग्दृष्टि, ३ ज्ञान	१	अब ध
विकलेन्द्रिय	२७ बोल (शेष)	२ उपरवत्	दोनों का
तिर्यंच प चेन्द्रिय	कृष्णपक्षी आदि ६	३	४ (चारों का)
तिर्यंच प चेन्द्रिय	मिश्रदृष्टि	अज्ञानवादी विनयवादी	अब ध
तिर्यंच प चेन्द्रिय	सम्यग्दृष्टि, ४ ज्ञान	१	वैमानिक देवों का
तिर्यंच प चेन्द्रिय	तीन लेश्या कृष्णादि	४	क्रियावादी-अब ध ३ समवसरण-४ गति का
तिर्यंच प चेन्द्रिय	तीन शुभ लेश्या	४	क्रियावादी-वैमानिक का ३ समवसरण-३ गति का
तिर्यंच प चेन्द्रिय	(शेष बोल) २२	४	क्रियावादी-वैमानिक का ३ समवसरण-४ गति का
मनुष्य	१८ बोल	तिर्यंच प चेन्द्रिय के समान... (उपरोक्त ५ कोलम में)	
मनुष्य	मन:पर्यव, नोस ज्ञा॰	१	वैमानिक का
मनुष्य	अवेदी आदि ५	१	अब ध
मनुष्य	शेष २२ बोल	४	क्रियावादी वैमानिक का ३ समवसरण-४ गति का

नोट– चार्ट में तीन समवसरण जहाँ कहे हक्त वहाँ क्रियावादी नहीं है ।

प्रश्न–४ : भवी अभवी का कथन किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) क्रियावादी समवसरण जितने भी बोलों में होवे वे सभी एका त भवी होते हक्त । (२) मिश्रदृष्टि (विनयवादी अज्ञानवादी) है तो वह भी एका त भवी होते हक्त । (३) शुक्लपक्षी में चारों समवसरण है तो वे भी सभी एका त भवी होते हक्त । (४) इनके सिवाय शेष सभी बोलों में भवी–अभवी दोनों ही होते हक्त । कुल मिलाकर एका त भवी के १४ बोल हक्त– (१) अलेशी (२) शुक्लपक्षी (३) सम्यग्दृष्टि (४) मिश्रदृष्टि (५–१०) सज्ञानी, ५ ज्ञान (११) नोस ज्ञोपयुक्त (१२) अकषायी (१३) अवेदी (१४) अयोगी । शेष ४७–१४=३३ बोल में क्रियावादी एका तभवी, शेष तीन समवसरण भवी–अभवी दोनों ।

प्रश्न–५ : यहाँ अन तरोत्पन्नक आदि उद्देशकों में वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– अन तरोत्पन्नक आदि ४ उद्देशक में २६वें शतक के समान ४७ बोल में से पाये जाने वाले बोल कहना । उन सभी बोलों में समवसरण उपरोक्त चार्ट के अनुसार जानना । विशेष चार्ट में कहे बोलों में मन, वचन योग और मिश्रदृष्टि ये तीन जहाँ भी है निकाल देना और आयु का सभी बोलों में **अबन्ध** कहना । क्यों कि ये अन तरोत्पन्नक आदि चारों ही आयु नहीं बा धते हक्त । पर परोत्पन्नक आदि शेष ६ उद्देशक प्रथम उद्देशक के समान है अर्थात् चार्ट के समान २४ द डक में कहना है ।

४७ बोलों में से बोल छोडना आदि २६ वें शतक के समान ध्यान रखना अर्थात् पिछले दसों उद्देशक में समुच्चय जीव नहीं कह कर २४ द डक ही कहना, अचरम उद्देशक में अलेशी केवली अयोगी यों तीन बोल नहीं कहना और सर्वार्थसिद्ध की पृच्छा नहीं करना इत्यादि ।

शतक–३१,३२: उद्देशक–२८–२८

प्रश्न–१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर– इस शतक में मात्र नरक में उत्पन्न होने वाले जीवों की स ख्या का कथन "कृतयुग्म" आदि के माध्यम से है । जो समुच्चय नारकी, फिर तीन लेश्या वाले नारकी यों ४ उद्देशों में हक्त। २ पक्ष २ भवी २ दृष्टि इन ६ में पुन:४–४ उद्देशक होने से कुल ४+२४=२८ उद्देशकों से उत्पत्ति का वर्णन होने से इस ३१वें शतक का नाम **'उपपात शतक'** है । ३२वें शतक में भी इन्हीं २८ उद्देशकों में जीवों के उद्वर्तन–मरण का वर्णन 'कृतयुग्म' आदि स ख्या से लेश्या, भवी, दृष्टि एव पक्ष के माध्यम से पूर्ववत् किया गया है । इसलिये इस ३२वें शतक का नाम **उद्वर्तना शतक** है ।

प्रश्न–२ : प्रस्तुत में लघुयुग्म का स्वरूप क्या दर्शाया है तथा उनके उत्पन्न होने स ब धी क्या–क्या निरूपण है ?

उत्तर– (१) 'युग्म' का स्वरूप श.१८ उद्दे.४ में एव श.२५ उद्देशक ३ में बताया गया है । वहाँ औघिक युग्म का ही कथन है । यहाँ उन्हें ही क्षुल्लक–लघुयुग्म कहा गया है क्यों कि आगे शतक ३५ से ४० तक में महायुग्म कहे गये हक्त । श.१८ उद्देशक ४ के वर्णन के समान ४,८,१२,१६ स ख्यात अस ख्यात अन त की स ख्या 'लघु कृतयुग्म' है, ३,७,११,१५ यावत् अन त की स ख्या 'लघु(तेओग)त्रयोजयुग्म' है । २,६,१०,१४ यावत् अन त की स ख्या 'लघु द्वापर(दावर) युग्म' है । १,५,९,१३ यावत् अन त की स ख्या 'लघु कल्योज युग्म' है ।

(२) पूर्व शतक के अनुसार इस शतक में ११ द्वार और ४७ बोलों का कथन नहीं हक्त । सर्वप्रथम समुच्चय नरक में आने वाले जीवों का कथन है ।

नारकी में इन चारों लघु युग्म से जीव उत्पन्न होवे तो जघन्य उक्त स ख्या अनुसार और उत्कृष्ट अस ख्य उत्पन्न होते हक्त । कहाँ से आकर उत्पन्न होने के उत्तर में प्रज्ञापना पद ६ के अनुसार आगति स्थान कहना चाहिये । उत्पन्न होने वाले जीव शतक २५ उद्देशक ८

के अनुसार प्लवक के समान आकर उत्पन्न होते हक्त एव अध्यवसाय -योग निमित्त, स्वकर्म, स्वऋद्धि आदि से उत्पन्न होने का भी २५वें शतक अनुसार समझ लेना चाहिये ।

(३) इस प्रकार यह समुच्चय नारकी का उद्देशक होता है । फिर नारकी में पाई जाने वाली तीन लेश्या में उत्पत्ति की चारों युग्म स ख्या, आगति स्थान के आधार से कहना । जिस नरक में जो लेश्या होती है वही कहना । तीन लेश्या सहित ये चार उद्देशक समुच्चय जीव के हुए । इसी तरह २ पक्ष २ भवी २ दृष्टि इन ६ से चार-चार उद्देशक होते हक्त, कुल २८ उद्देशक हुए ।

(४) इकतीसवें शतक में उत्पन्न होने की अपेक्षा जो वर्णन है वही स पूर्ण वर्णन ३२ वें शतक में उवट्टन-मरने की अपेक्षा है । प्रज्ञापना सूत्र के छट्ठे पद में कही गई गति(गत) के अनुसार उवट्टन के स्थानों को समझ लेना ।

विशेष- सातवीं नारकी की आगति और गति में दृष्टि एक ही (मिथ्यादृष्टि)कहना ।क्यों कि वहाँ सम्यग्दृष्टि उपजते, मरते नहीं है ।

(५) इन दोनों शतकों में नरक की अपेक्षा ही कथन किया गया है । शेष द डक के लिये कभी भलावण पाठ रहा होगा जो लिपि प्रमाद से छूट गया स भव लगता है । अत: नरक के समान शेष २३ द डक का कथन भी समझ लेना ।

(६) जिसकी उद्देशक स ख्या दोनों शतकों में इस प्रकार होगी- भवनपति व्य तर में-११x५x७=३८५x२=७७० । ज्योतिषी में २x७ = १४x२=२८, वैमानिक में ४x७=२८x२=५६, तीन स्थावर ३x५x७ =१०५+(३x४x७=)८४=१८९, तेउ, वायु २x४x७=५६x२=११२, तीन विकलेन्द्रिय में-३x४x७=८४x२=१६८, तिर्यंच में ७x७=४९x२=९८, मनुष्य में- ९८ । कुल- ५६+७७०+२८+५६+१८९+११२+१६८+९८ + ९८=१५७५ होते है ।किंतु पाँच स्थावर में दृष्टि एक होने से उसके ४३ (१५+१२+८+८) कम होंगे, दोनों शतक में । तीन विकलेन्द्रिय में गत में दृष्टि एक है जिससे १२ बत्तीसवें शतक में कम हुए ये कुल

४३+१२=५५ कम होने से १५७५-५५=१५२० उद्देशक दोनों शतक में मिलकर २४ द डक के होते हक्त ।

शतक-३३ : एकेन्द्रिय शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस शतक में १२ अवा तर शतक है और प्रत्येक शतक में २६वें शतक के समान ११-११ उद्देशक हक्त । जिसमें एकेन्द्रिय के भेद-प्रभेद करके उनमें आठ कर्म का अस्तित्व, आठ का ब ध एव वेदन में- आठ कर्म+४ इन्द्रिय का अ तराय+२ वेद का अ तराय यों १४(बोल) स ख्या रूप वर्णन है । एकेन्द्रिय स ब धी उक्त वर्णन के सिवाय किसी भी जीवों का वर्णन नहीं होने से इसका नाम **एकेन्द्रिय शतक** है ।

प्रश्न-२ : इस शतक में अवा तर शतक और उद्देशक तथा एकेन्द्रिय के भेद-प्रभेद युक्त वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- (१) इस शतक के १२ अवा तर शतक इस प्रकार है- समुच्चय एकेन्द्रिय और तीन लेश्या(यहाँ तेजोलेश्या नगण्य करके नहीं गिनी है), ये चार शतक हुए । फिर ४ भवी के, ४ अभवी के, यों कुल-१२ शतक हुए ।(२) छब्बीसवें शतक के अनुसार इसमें भी ११-११ उद्देशक होते हक्त किन्तु अभवी के ४ शतकों में चरम अचरम दो उद्देशक नहीं होने से (४x२) आठ उद्देशक कम होते हक्त अर्थात् १२x११= १३२-८=१२४ उद्देशक इस शतक में होते हक्त ।

(३) एकेन्द्रिय के कुल भेद २० हक्त । पाँच स्थावर के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ४-४ भेद करने से ५x४=२० हुए । इन बीस भेदों में आठों कर्म की सत्ता है, ७ या ८ कर्म का ब ध होता है । (४) आठ कर्म ४ इन्द्रिय का आवरण और २ वेद का आवरण, यों १४ बोल (कर्म) का वेदन बताया गया है।(५) इस प्रकार एकेन्द्रिय के २० भेद में ८ कर्म की सत्ता, ७-८ कर्म का ब ध, १४ बोल(कर्म) के वेदन का वर्णन हुआ । यह प्रथम औघिक उद्देशक हुआ, शेष पर परोत्पन्नक आदि के ६ उद्देशक कहना । अन तरोत्पन्नक आदि के

चार उद्देशों में एकेन्द्रिय के भेद १० (अपर्याप्त के) और कर्मब ध ७ का कहना । शेष वर्णन औघिक उद्देशक के समान है।(६) १२ शतकों के अन तरोत्पन्नक आदि चार-चार उद्देशों में (१२x४=४८ में) १०-१० जीव के भेद हक्त और शेष ७६ उद्देशों में २०-२० जीव के भेद हक्त । अत: जीव भेद की अपेक्षा १२४ उद्देशों में २००० आलापक होते हक्त, यथा- ४८x१०+७६x२०=४८०+१५२०=२००० ।

शतक-३४ : श्रेणी शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- इस शतक में एकेन्द्रिय जीवों का(२० भेदों का)रत्नप्रभा आदि नरक पृथ्वी के एक दिशा के चरमा त से दूसरी दिशा के चरमा त में उत्पन्न होने का, उसमें लगने वाले समय का तथा सात श्रेणियों का, उनसे जीव-पुद्‌गल की गति का, लोक के चरमा त से चरमा त में उत्पन्न होने का, उम्र एव उत्पन्न होने की चौभ गी का और उन भ गों में सम-विषम कर्मब ध का इत्यादि सभी वर्णन एकेन्द्रिय स ब धी है । फिर अन तरोत्पन्नक आदि के ११ उद्देशक हक्त । यों एक शतक पूरा होता है । फिर तीन लेश्या के ३ शतक होने से ४ शतक समुच्चय जीव के होते हक्त । फिर ४ भवी के लेश्या सहित और ४ अभवी के लेश्या सहित के यों कुल १२ शतक और ११-११ उद्देशकों से एकेन्द्रिय का वर्णन है ।

प्रश्न-२ : जीवों के विकल्प, दिशाओं के विकल्प किस प्रकार किये हक्त ?

उत्तर- इस शतक में भी उक्त क्रम से १२ अवा तर शतक और १२४ उद्देशक हक्त । पृथ्वी आदि पाँच स्थावर के २० भेद के जीव रत्नप्रभा पृथ्वी के एक पूर्वी चरमा त से दूसरे पश्चिमी चरमा त में उन्हीं २० भेदों में उत्पन्न होते हक्त, जिसके २०x२०=४०० विकल्प होते हक्त ।

पूर्वी चरमा त से पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षित यों ४ विकल्प एक दिशा के होते हक्त अत: चार दिशाओं से १६ विकल्प होते हक्त ।

रत्नप्रभा पृथ्वी के समान फिर सातों पृथ्वी के चरमा तों से २० जीवों के २० जीवों में जाने के विकल्प होते हक्त

बीस भेदों में बादर तेउकाय के पर्याप्त-अपर्याप्त ये दो भेद ढाई द्वीप में ही होते हक्त । अत: इन दोनों जीवों स ब धी जाने या आने के सभी आलापक ढाईद्वीप से कहना अर्थात् पूर्व पश्चिम रत्नप्रभा आदि के चरमा त से १८ भेद ही कहना ।

प्रश्न-३ : सात श्रेणियाँ कौन सी है उनमें जीव को कौन सी श्रेणी की गति में कहाँ कितने समय लगते हक्त ?

उत्तर- जीवों और पुद्‌गलों का गमनागमन श्रेणियों (आकाश मार्ग) से होता है । वे श्रेणियाँ सात प्रकार की है- १. ऋजु आयता- बिना मोड की सीधी श्रेणी २. एक मोड वाली ३.दो मोड वाली ४. एक तरफ स्थावर नाल वाली ५. दोनों तरफ स्थावर नाल वाली ६.चक्रवाल ७. अर्धचक्रवाल । अ तिम दोनों गति केवल पुद्‌गल की ही होती है चक्रवाल गति जीव की नहीं होती है ।(१) प्रथम ऋजु श्रेणी से जीव और पुद्‌गल एक समय में गति करते हक्त ।(२) एक मोड वाली में विग्रह गति से जाने वाले जीव को दो समय लगते हक्त । (३) दो मोड वाली में तीन समय लगते हक्त । (४) एक तरफ स्थावर नाल में जाने पर १-२-३ समय लगते हक्त । (५) दोनों तरफ स्थावर नाल में जाने वाले को ३ या ४ समय लगते हक्त अर्थात् स्थावर नाल में सम दिशा में ३ समय और विषम दिशा में ४ समय लगते हक्त ।

पूर्व से पश्चिम में १-२-३ समय । पूर्व में १-२-३ समय और पूर्व से उत्तर या दक्षिण में २-३ समय विग्रह गति में लगते हक्त । मनुष्य लोक से रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमा त में जीव को जाने आने में १-२-३ समय लगते हक्त ।

पहली नरक पृथ्वी पिंड के समान दूसरी पृथ्वी का वर्णन कहना किन्तु वहाँ मनुष्य क्षेत्र से स ब धित विग्रह गति में २-३-४ समय लगते हक्त । उपर, नीचे, तिरछे विदिश विषम श्रेणी में २-३-४ समय लगते हक्त और दिशा सम श्रेणी में १-२-३ समय लगते हक्त ।

त्रस नाल से त्रस नाल में १-२-३ समय लगते हक्त । स्थावर

नाल से त्रस नाल में १-२-३ समय लगते हक्त । स्थावर नालसे स्थावर नाल में १-२-३ समय लगते हक्त किन्तु विषम श्रेणी में या विदिशा में या विदिशा विषम उपर नीचे तिरछे में २-३ समय या २-३-४ समय अथवा ३-४ समय लगते हक्त ।

नीचे स्थावर नाल से त्रस नाल में होकर दूसरी तरफ उपर स्थावर नाल में जाने में समश्रेणी से समश्रेणी हो तो तीन समय और एक तरफ विषम विदिशा हो तो कम से कम चार समय लगते हक्त । स्थावर नाल में एक तरफ ही विदिशा का मोड लिया जाता है । दोनों तरफ मोड लेने की आवश्यकता नहीं होती है इसलिये लोक में स्थावर या त्रस नाल में कहीं से भी जीव को, कहीं भी जाना हो तो ४ समय में अपने जन्मस्थान पर जीव पहुँच सकता है । पाँच श्रेणियों की गति में लोक में जीव और पुद्गल को उत्कृष्ट ४ समय ही पहुँचने में लगते हक्त इससे ज्यादा मोड जीव, अजीव के गति में नहीं बनते हक्त । तभी सारे लोक में व्याप्त होने वाले भाषा आदि के पुद्गल, अचित्त महास्क ध और केवली समुद्घात में आत्म प्रदेशों को ४ समय ही लगते हक्त ।

पाँच समय की विग्रह गति की कल्पना भी यदि कोई जीव के लिये करे तो वह सिद्धा त सापेक्ष नहीं है । मन कल्पित एव भ्रम पूर्ण है क्यों कि तीन समय में तो स पूर्ण आत्मप्रदेश भी सारे लोक में व्याप्त हो जाते हक्त । केवल नगण्य स्थान-कोने=लोका त निष्कुट अवशेष रहते हक्त जो चौथे समय में पूरित किये जाते हक्त । अत: ५ समय की कल्पना तो असत्कल्पना ही है ।

चक्रवाल या अर्ध चक्रवाल गति से भी पुद्गल ग तव्य स्थान में जा सकते हक्त ।

सात नरक पृथ्वी के समान लोक के चरमा त से चरमा त भी कहना, इसमें १-२-३-४ या २-३-४ या ३-४ समय की विग्रह गति होती है ।

प्रश्न-४ : उम्र एव उत्पन्न होने की चौभ गी से स्थिति और कर्म के स ब ध में क्या समझाया गया है ?

उत्तर- उम्र एव उत्पन्न होने की चौभ गी इस प्रकार है-१.समान उम्रवाले और साथ में उत्पन्न २. समान उम्र वाले और विषम उत्पन्न ३. विषम उम्र वाले और साथ में उत्पन्न ४. विषम उम्र और विषम उत्पन्न । यह चौभ गी है ।

प्रथम भ ग वाले तुल्य स्थिति वाले होते हक्त और तुल्य एव विशेषाधिक कर्मब ध करते हक्त । दूसरे भ ग वाले तुल्य स्थिति वाले होते हक्त किन्तु कर्मब ध विमात्रा में विशेषाधिक करते हक्त । तीसरे भ ग वाले असमान उम्र वाले होते हक्त किन्तु साथ में उत्पन्न हुए होने से तुल्य एव विशेषाधिक कर्म ब ध करते हक्त । चौथे भ ग वाले असमान उम्र वाले होते हक्त और विमात्रा से विशेषाधिक कर्मब ध करते हक्त ।

प्रश्न-५ : इस शतक में अन तरोत्पन्नक आदि १० उद्देशक और फिर अवा तर शतक १२ किस प्रकार होते हक्त ?

उत्तर- अन तरोत्पन्नक आदि चार उद्देशक का वर्णन भी उक्त विधि से जानना किन्तु उसमें एकेन्द्रिय जीव के भेद १० ही कहना, २० नहीं । ७ कर्म का ब ध ही कहना, आठ नहीं कहना । समुद्घात तीन ही होती है चार नहीं । चौभ गी के भी दो भ ग ही होते हक्त-पहला और दूसरा । क्यों कि अन तरोत्पन्न कहे जाने वाले सभी साथ में ही उत्पन्न होते हक्त । एक दिशा से दूसरी दिशा में उत्पन्न होने के विकल्पों स ब धी वर्णन यहाँ नहीं कहना, क्यों कि ये मरते नहीं है । पर परोत्पन्नक बनने के बाद ही मरते हक्त ।

पर परोत्पन्नक आदि शेष ६ उद्देशकों का स पूर्ण वर्णन औघिक प्रथम उद्देशक के समान जानना ।

लेश्या, भवी, अभवी के विकल्प से कुल १२ अवा तर शतक और उनके ११-११ एव ९-९ उद्देशे ३३वें शतक के समान होते हक्त । विषय वर्णन प्रस्तुत प्रकरण के उद्देशकों के अनुसार जानना ।

शतक-३५ : एकेन्द्रिय महायुग्म शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- शतक-३१ में चार लघुयुग्मों का वर्णन है और यहाँ महायुग्मों का वर्णन है । ये महायुग्म १६ होते हक्त । एक-एक महायुग्म से उत्पन्न होने वाले जीवों का ३३ द्वारों से वर्णन है । फिर २ से ११ उद्देशक- पढम-अपढम, चरम-अचरम के द्वारा नये ढंग से बने हक्त । उनमें भी ३३ द्वार कुछ विशेषता लिये हुए होते हक्त । इस प्रकार इस शतक में भी १२ अवा तर शतक द्वारा एकेन्द्रिय मात्र का वर्णन होने से इसका नाम **एकेन्द्रिय महायुग्म शतक** है ।

प्रश्न-२ : सोलह महायुग्मों की स ख्या किस-किस प्रकार होती है ?

उत्तर- (१) कृतयुग्म कृतयुग्म=१६-३२-४८-६४ आदि । (२) कृतयुग्म त्र्योज=१९-३५ आदि (३) कृतयुग्म द्वापर=१८-३४ आदि (४) कृतयुग्म कल्योज=१७-३३ आदि (५) त्र्योज कृतयुग्म= १२-२८-४४-६० आदि (६) त्रयोज त्र्योज=१५-३१-४७-६३ आदि (७) त्र्योज द्वापर- १४, ३०-४६-६२ आदि (८) त्र्योज कल्योज= १३-२९-४५-६१ आदि ।

(९) द्वापर कृतयुग्म= ८-२४-४०-५६ आदि । (१०) द्वापर त्र्योज= ११-२७-४३-५९ आदि । (११) द्वापर द्वापर = १०-२६-४२-५८ आदि । (१२) द्वापर कल्योज=९-२५-४१-५७ आदि ।

(१३) कल्योज कृतयुग्म=४-२०-३६-४२ आदि (१४) कल्योज त्र्योज=७-२३-३९-५५ आदि (१५) कल्योज-द्वापर=६-२२-३८-५४ आदि । (१६) कल्योज कल्योज=५-२१-३७-५३ आदि।

प्रश्न-३ : इन सोलह महायुग्मों से(स ख्या से) उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- प्रस्तुत में प्रत्येक महायुग्म स ख्या से उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय स ब धी ३३ द्वारों का क्रमश: विवरण दिया गया है अर्थात् एक महायुग्म स ख्या का विस्तृत वर्णन तेतीस द्वारों से पूरा करके फिर

दूसरे आदि महायुग्म स ख्या का वर्णन स क्षिप्त कहा है । तेतीस द्वारों का विवरण भी अधिकतम उत्पल उद्देशक के समान जानने का निर्देश है । यहाँ कहे ३३ द्वार इस प्रकार हक्त- १.उपपात(आगति) २. परिमाण ३. अपहार स ख्या ४. अवगाहना ५. आठ कर्मब ध ६. वेदना ७. उदय ८. उदीरणा ९. लेश्या १०. दृष्टि ११. ज्ञान १२. योग १३. उपयोग १४. वर्ण १५. उश्वास १६. आहारक १७. विरति १८. क्रिया १९. ब धक २०. स ज्ञा २१. कषाय २२. वेद २३. वेदब ध २४.सन्नी २५. इन्द्रिय २६.अनुब ध= युग्मों की स्थिति, जघन्य १ समय उत्कृष्ट अन तकाल । २७. कायस वेध २८.आहार=२८८ प्रकार का २९. स्थिति (आयुष्य) ३०. समुद्घात ३१.मरण(दो प्रकार) ३२. च्यवन= गति ३३. उपपात= सर्व जीव उत्पन्न ।

उदीरणा- ८-७-६ कर्म की, जिसमें आयु और वेदनीय की भजना। तीनों वेद का ब ध करते हक्त ।वर्णादि- शरीर की अपेक्षा २० एव १६, अविरत है, सक्रिया है, शेष सभी द्वारों का वर्णन उत्पल, उद्देशक आदि से जाने । समुच्चय एकेन्द्रिय का वर्णन होने से कायस वेध नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार १६ महायुग्मों पर ये ३३-३३ द्वार समझ लेना ।

यह औघिक उद्देशक पूर्ण हुआ । शेष १० उद्देशक नये तरीके के इस प्रकार है- २. पढम=प्रथम समयोत्पन्न ३. अपढम= शेष समय वाले ४. चरम समय वाले ५. अचरम समय वाले ६. पढम-पढम ७. पढम-अपढम ८. पढम-चरम ९. पढम-अचरम १०. चरम-चरम ११. चरम-अचरम । इन द्वि स योगी नाम वाले उद्देशों में पहला शब्द विवक्षित युग्म बनने के समय का सूचक है, दूसरा शब्द उत्पत्ति के समय का सूचक है ।

'पढम' नाम के दूसरे उद्देशक में १० बोल(द्वार) में विशेषता होती है। (१) अवगाहना जघन्य (२) आयु अब ध (३) आयु अनुदीरक, ६ या ७ के उदीरक है । (४) नोउश्वास निश्वास वाले हक्त (५) सप्तविध ब धक ही है (६) आयुष्य जघन्य (७) अनुब ध आयु के समान (८) समुद्घात दो होती है- वेदनीय, कषाय । (९) मरण नहीं, (१०) च्यवन गति नहीं ।

तीसरा और पाँचवाँ उद्देशक पहले उद्देशक के समान है, शेष सभी उद्देशक दूसरे उद्देशक के समान है, चौथे, आठवें, दसवें उद्देशक में देव उत्पन्न नहीं होते हक्त और लेश्या तीन होती है ।

इनका कारण यह है कि पहला तीसरा और पाँचवा उद्देशक लगभग पूरे भव स्वरूप है । शेष एक-एक समय की स्थिति वाले हक्त । इनके दो विभाग हक्त- प्रथम समय वाले और चरम समय वाले । चरम समय वाले तीन हक्त- चौथा, आठवाँ, दसवाँ, ये १ समय की अपेक्षा वाले एव चरम है अतः देवों के आने का निषेध है अर्थात् यहाँ तेजोलेश्या नहीं रहने से देवत्व भाव को भी गौण किया गया है एव तेजोलेश्या और देवत्व दोनों का निषेध किया गया है । शेष पाँच उद्देशक प्रथम समयवर्ती एक समय वाले हक्त । ये देव से तत्काल आये हुए हो सकते हक्त अतः इनमें देव और तेजोलेश्या को गौण नहीं किया गया है । यह एक महायुग्म की अपेक्षा वर्णन हुआ । इसी प्रकार १६ महायुग्मों की अपेक्षा भी १० उद्देशक समझ लेना । यह पहले अ तरशतक के ११ उद्देशक हुए । लेश्या, भवी, अभवी से १२ अ तर शतक एव १३२ उद्देशक पूर्ववत् जानना ।

शतक-३६-३९ : विकलेन्द्रिय महायुग्म शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- शतक-३५ में कहे एकेन्द्रिय सरीखा समस्त महायुग्म सहित ३३ द्वारों का कथन इन चारों शतक में क्रमशः बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय एव असन्नि प चेन्द्रिय के लिये किया गया है । चारों में १२ अ तर शतक एव १२x११=१३२ उद्देशक हक्त ।

विशेषता- अवगाहना लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, अपहार स ख्या, स्थिति, आहार, समुद्घात बेइन्द्रिय आदि में जितनी-जितनी होती है उतनी-उतनी समझना ।

दूसरे उद्देशक में वचन योग विशेष कम होगा । शेष वर्णन एकेन्द्रिय के अनुसार ही है एव १० णाणत्ते(फर्क) पूर्ववत् है । चौथे

आठवें और दसवें उद्देशक में सम्यग्दृष्टि और ज्ञान नहीं कहना ।

भवी अभवी के अ तर शतकों में सर्व जीव उत्पन्न हो चुके हक्त इस बोल का कथन नहीं करना ऐसा ३५ से ३९ तक के सभी शतकों में यह ध्यान रखना चाहिये । विकलेन्द्रियों में स चिट्ठणा-स ख्यात काल है और असन्नी प चेन्द्रिय में अनेक करोड पूर्व है ।

शतक-४० : सन्नी महायुग्म शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- पहले के महायुग्म शतकों के समान ही इस सन्नी महायुग्म शतक में सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय और सन्नी मनुष्य दोनों का समावेश करते हुए वर्णन है । इसमें अ तर शतक-२१ हक्त क्यों कि लेश्या-६ होने से एक औघिक +६ लेश्या के = ७ तथा ७-७ भवी-अभवी के यों ७x३=२१ अ तर शतक होते हक्त । इनके उद्देशक=२१x११=२३१ होते हक्त ।

प्रश्न-२ : इस शतक में सन्नी प चेन्द्रिय के लिये भी ३३ द्वारों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- सामान्यतया वर्णन पूर्व शतकों के समान है । विशेषताएँ इस प्रकार है- इस सन्नी शतक में १२वें गुणस्थान तक के सभी प चेन्द्रिय तिर्यंच-मनुष्य आदि का समावेश है । अतः कुछ द्वारों के वर्णन में विशेषता है ।

आगति- सभी जीव स्थानों से । **कर्मब ध-** ७ की भजना, वेदनीय की नियमा(१२ गुणस्थान ही है इसलिये) । **कर्म उदय-** ७ की नियमा, मोहनीय की भजना । **उदीरणा-** छ कर्म की भजना, नामगोत्र की नियमा । **ज्ञान-** चार ज्ञान, तीन अज्ञान । **विरति-** तीनों है । **क्रिया-** सक्रिय ही है । **ब धक-** सप्तविध, अष्टविध, षडविध और एकविध ब धक भी है, अब धक नहीं है । **स ज्ञा-** ५ । **कषाय-** ५ (अकषायी सहित) । **वेद-** अवेदी सहित चार । **वेद के ब धक, अब धक** दोनों है । **इन्द्रिय-** सइन्द्रिय है अनिन्द्रिय नहीं । **योग-** तीनों है, अयोगी

नहीं है। **अनुब ध–** अनेक सौ सागर साधिक है। **कायस वेध–** समुच्चय प चेन्द्रिय होने से कायस वेध नहीं होता है, एक द डक हो तो काय-स वेध होता है । **समुद्घात–** ६ । **गति–** सर्वत्र ।

प्रश्न-३ : 'पढम' आदि दूसरे से ११वें उद्देशक का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– दूसरे उद्देशक में १७ बोलों में फर्क(णाणत्ता) होता है । यथा- (१) अवगाहना- जघन्य होती है। (२) आयु का अब ध, ७ का ब ध। (३) वेदना-दोनों । (४) उदय-आठ ही कर्म का । (५) उदीरणा- आयु की नहीं । वेदनीय की भजना, शेष ६ नियमा । (६) दृष्टि-२, (७) योग-१, (८) नोउश्वास-निश्वास है । (९) अविरत ही होते हक्त । (१०) सप्तविध ब धक ही है। (११) स ज्ञा-४ (१२) कषाय-४ (१३) वेद-३ (१४) अनुब ध-१ समय ही । (१५) स्थिति- १ समय । (१६) समुद्घात-२, (१७) तीन वेद के ब धक है, अब धक नहीं । (१८) मरण नहीं है । (१९) गति भी नहीं है ।

पहला तीसरा पाँचवा उद्देशक एक समान है, शेष ८ उद्देशक एक समान है अर्थात् चौथा आठवा दसवा में भी कोई अ तर नहीं है।

एक महायुग्म के समान १६ ही महायुग्म कहना किन्तु परिमाण द्वार में अपनी-अपनी राशि का भिन्न परिमाण कहना । यह प्रथम अ तर शतक पूर्ण हुआ ।

प्रश्न-४ : लेश्या आदि के अ तर शतकों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– कृष्णलेशी अ तर शतक के प्रथम उद्देशक में १२ द्वार में फर्क होता है, यथा- १.ब ध २.वेदक ३.उदय ४.उदीरणा ५.लेश्या ६.ब धक ७.स ज्ञा ८.कषाय ९.वेद ब धक, ये ९ द्वार बेइन्द्रिय के समान हक्त । १०.अवेदी नहीं तीन वेद ११-१२.अनुब ध स्थिति १ समय और ३३ सागर । शेष द्वार सन्नी के प्रथम अ तर शतक के समान है । यह दूसरे अ तर शतक का प्रथम उद्देशक हुआ ।

दूसरे उद्देशक में- १३ द्वार में फर्क(णाणत्ता) होता है- वह प्रथम अ तर शतक के दूसरे उद्देशक के समान जानना । उन द्वारों के

नाम- १.अवगाहना २.ब ध ३.उदीरणा ४.दृष्टि ५.योग ६. श्वास ७.विरति ८.ब धक ९.स्थिति १०.अनुब ध ११.समुद्घात १२.मरण १३.गति । शेष वर्णन प्रथम अ तर शतक के समान है ।

कृष्णलेश्या के समान नीललेश्या का शतक है किन्तु इसकी स्थिति अनुब ध जघन्य १ समय उत्कृट १० सागर साधिक है । यहाँ साधिक स्थिति में पल्योपम का अस ख्याता भाग अधिक है और अनुब ध में अ तर्मुहूर्त अधिक है जो उसी में समाविष्ट है ।

कापोतलेश्या के शतक में स्थिति, अनुब ध जघन्य १ समय, उत्कृष्ट ३ सागर साधिक है । साधिक का अर्थ उपरवत् समझना ।

तेजोलेश्या के शतक में स्थिति अनुब ध जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट २ सागर साधिक है । शेष वर्णन कृष्णलेश्या के समान है किंतु इनमें नोस ज्ञोपयुक्त भी होते हक्त । साधिक का अर्थ उपरवत् है ।

पद्मलेश्या के शतक में अनुब ध उत्कृष्ट १० सागर, अ तर्मुहूर्त अधिक है । स्थिति उत्कृष्ट १० सागर की होती है ।

शुक्ललेश्या का शतक प्रथम अ तर शतक के समान ही कहना । किन्तु शुक्ललेश्या का कथन करना, स्थिति उत्कृष्ट ३३ सागर की । अनुब ध ३३ सागर अ तर्मुहूर्त साधिक कहना ।

इसी तरह सात भवी के शतक हक्त किन्तु उनमें सर्व जीव उत्पन्न होने का द्वार नहीं कहना ।

अभवी में ९ द्वार में फर्क होता है- १.आगति-अणुत्तर विमान नहीं । २. दृष्टि-१ । ३. ज्ञान-नहीं, अज्ञान ३ है । ४. अविरत है । ५. स्थिति १ समय और ३३ सागर । ६. समुद्घात-५ । ७. अनुब ध १ समय और अनेक सौ सागर साधिक । ८. लेश्या-६, ९.गति-अनुत्तर विमान में नहीं । सर्व जीव उत्पन्न होने का द्वार नहीं कहना ।

भवी-अभवी के लेश्या शतकों में स्थिति औघिक के(६ लेश्याओं के) दूसरे से सातवें अ तर शतक के समान कहना । ये २१ अ तर शतक के २१x११=२३१ उद्देशक पूर्ण हुए ।

शतक-४१ : राशि शतक

प्रश्न-१ : इस शतक का क्या परिचय है ?

उत्तर- यह भगवती सूत्र का अ तिम शतक है, इसमें अ तर शतक नहीं है केवल उद्देशक ही है । जिनकी स ख्या १९६ है, वे इस प्रकार हक्त- १.समुच्चय २.भवी ३.अभवी ४.सम्यग्दृष्टि ५.मिथ्यादृष्टि ६.कृष्णपक्षी ७.शुक्लपक्षी । इनमें ६ लेश्या होने से ७-७ उद्देशक हक्त । अत: ७x७ =४९ उद्देशक हुए । इनको **चार राशियुग्म** से गुणा करने पर ४९x४=१९६ उद्देशक होते हक्त ।

राशियुग्म ४ इस प्रकार है- १.कृतयुग्म २.त्र्योज ३.द्वापर ४. कल्योज । सामान्य युग्म के समान ही ये राशियुग्म है और इनकी स ख्या भी सामान्य युग्म के समान ही है ।

प्रश्न-२ : चौवीस द डक युक्त विषय वर्णन यहाँ किस प्रकार है ?

उत्तर- राशियुग्म नैरयिक की आगति- पूर्ववत्(प्रज्ञापनावत्) है । एक समय में ४-८-१२ उत्पन्न होते हक्त । सा तर निर तर दोनों उत्पन्न होते हक्त । सा तर में जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस ख्य समय का अ तर होता है । निर तर जघन्य २ समय उत्कृष्ट अस ख्य समय तक उत्पन्न होते हक्त । एक समय में कोई भी एक युग्म ही होता है । दूसरा युग्म साथ में नहीं होता हक्त । प्लवक की गति से एव आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते हक्त, ये आत्म अस यम से उत्पन्न होते हक्त और अस यम से ही जीते हक्त । सलेशी एव सक्रिय ही होते हक्त । अत: सिद्ध नहीं होते हक्त।

इसी तरह तेवीस द डक भी जानना । एव वनस्पति में ४-८ यावत् अन त उत्पन्न होते हक्त । शेष सभी में अस ख्य उत्पन्न होते हक्त ।

मनुष्य में उत्कृष्ट स ख्याता या अस ख्याता उत्पन्न होते हक्त । आत्म अस यम से उत्पन्न होते हक्त किन्तु आत्म अस यम और आत्म स यम दोनों से जीते हक्त । इसी तरह सलेशी अलेशी और सक्रिय अक्रिय दोनों होते हक्त । अक्रिय नियमा सिद्ध बनते हक्त शेष भजना से सिद्ध होते हक्त ।

वैमानिक देव आत्म स यम से भी उत्पन्न होते हक्त, अस यम से भी उत्पन्न होते हक्त । यह पहला उद्देशा पूर्ण हुआ । दूसरा, तीसरा, चौथा उद्देशा त्र्योज, द्वापर, कल्योज युग्मके राशि युग्म का है । उत्पात स ख्या में अ तर है ।शेष वर्णन २४ द डक का प्रथम उद्देशक के समान है ।

लेश्या, दृष्टि आदि जहाँ जितनी हो उस द डक में उतनी पृच्छा करना । जिससे द डक और जीव के बोल कम ज्यादा होंगे किन्तु प्रत्येक लेश्या के उद्देशक ४-४ होते हक्त और चार समुच्चय उद्देशक हक्त, यों कुल ६x४+४=२८ उद्देशक हुए । भवी के भी २८ उद्देशक इसी प्रकार है । अभवी में मनुष्य और नरक का कथन समान है, केवल उत्कृष्ट स ख्याता अस ख्याता का फर्क है ।

सम्यग्दृष्टि का कथन पहले उद्देशक के समान है । २८ उद्देशे भवी के समान है । मिथ्यादृष्टि का वर्णन अभवी के समान २८ उद्देशों में है । कृष्णपक्षी के २८ उद्देशे अभवी के समान हक्त । शुक्ल-पक्षी के भवी के समान २८ उद्देशे हक्त । ये कुल २८x७= १९६ उद्देशक पूर्ण हुए । यह ४१वाँ शतक पूर्ण हुआ ।

प्रश्न-३ : इन अ तिम शतकों(३१ से ४१) की क्या विशेषता है?

उत्तर- शतक ३१ से ४१ तक युग्म, श्रेणी, महायुग्म और राशि युग्म के कथन के साथ अनेक द्वारों से विषयों का वर्णन किया गया है । तत्त्व विषय इसमें अधिकतम उक्तपूर्व है । नया तत्त्व भी है जरूर किन्तु पूर्व शतकों की अपेक्षा इन ११ शतकों में वह बहुत कम है । विशेष पद्धति से युग्म आदि के अवल बन से प्राय: उक्तपूर्व विषयों का बोध कराया गया है । अत: इनमें वह विशेष पद्धति, शतक उद्देशकों का हिसाब, युग्म- महायुग्म आदि की गणित ध्यान रखकर समझने योग्य है । उसी को समझते हुए कुछ नूतन तत्त्व सहज प्राप्त हो सकते है । यह इन शतकों की विशेषता है ।

३२ शतक के बाद ३३ से ३९ तक ७ शतक में अ तर शतक १२-१२ हक्त । ४० वें शतक में २१ अ तर शतक हक्त । ४१ वें शतक

में अ तर शतक नहीं है । इस प्रकार ये ३२+(१२x७)८४+२१+१=१३८ कुल शतक है, जिसमें ४१ मूल शतक है ।

उद्देशकों की स ख्या १०, १२, ३४, ११ आदि है, सब मिलाकर १९२५ कही गई है किन्तु उपलब्ध १९२३ ही होती है । २ स ख्या का लिपि प्रमाद या कालदोष से अथवा समजभ्रम से अ तर पड गया है ।

गौशालक वर्णन का शतक-१५वाँ एक दिन में अध्ययन करना चाहिये, शेष रह जाय तो दूसरे दिन आय बिल करके पढना चाहिये और भी शेष रह जाय तो तीसरे दिन भी आय बिल करके पढना चाहिये ।

इन पिछले १० शतकों में एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय का स्वत त्र कथन है किन्तु ४१ वें शतक में समुच्चय जीव और सभी द डकों के युग्मों का सम्मिलित वर्णन युग्मस ख्या से है अत: इस शतक को **'राशियुग्म'** कहा गया है ।

नोट-विशेष जानकारी के लिये अन्य विवेचन युक्त भगवती सूत्र के प्रकाशनों का अध्ययन करना चाहिये तथा बीकानेर से प्रकाशित भगवती सूत्रों के थोकडों के ९ भागों का अध्ययन भी करना चाहिये ।

॥ शतक- ४१ स पूर्ण ॥

॥ भगवती सूत्र उत्तरार्ध स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-४ स पूर्ण ॥

परिशिष्ट : ध्यान स्वरूप

ध्यान के भेद-प्रभेद :-

ध्यान चार- (१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्म ध्यान और (४) शुक्लध्यान ।

आर्त्तध्यान के चार भेद अथवा पाये- १. पाँच इन्द्रियों तथा तीन योगों को इष्ट, साताकारी, सुखकर ऐसे पौद्‌गलिक स योग जो अप्राप्त हक्त वे प्राप्त हो तथा जो प्राप्त है वे टिके रहे, ऐसी चिंतन की स्थिरता, एकाग्रता । २. पाँच इन्द्रियों तथा तीन योगों को अनिष्ट, असाताकारी दु:खकर ऐसे पौद्‌गलिक स योगों का वियोग हो तथा वियोग बना रहे, ऐसी चिंतन की एकाग्रता । ३. कामभोगों को भोगने में, आरोग्य बना रहे, जवानी बनी रहे, योग इन्द्रियों का सामर्थ्य बना रहे, स्वाधीनता, सत्ता बनी रहे, उन्माद बना रहे, ऐसी चिंतन की एकाग्रता । ४. इस भव में तथा आगामी भव में और भव भव में इन्द्र चक्रवर्ती आदि के पद, सुख मिले, ऐसी आका क्षामय चिंतन की एकाग्रता ।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- १. इष्ट वियोग अनिष्ट स योग होने पर मन से शोक करना, अरति-ग्लानि-उदासीनता करना, उद्विग्न होना, स तप्त-परितप्त होना, २. वचन से ढदन करना, विलाप करना, आक्रन्द करना, दीन वचन कहना आदि, ३. काया से छाती-माथा हाथ आदि से कूटना, हाथ पैर पछाडना, मस्तक को झुकाकर उस पर हाथ देकर बैठना, मु ह को ढ कना, ४. आँखों से अश्रुपात करना, आँखें भीगी-भीगी होना, नाक से नि:श्वास ढालना, मु ह से जिव्हा बाहर निकालना आदि ।

(१) अनिष्ट वियोग, इष्ट स योग आदि होने पर मन से प्रसन्न

होना, रति भाव का होना, मन में गुदगुदी होना, खुशी में फूलना, तृप्त-परितृप्त होना, (२) वचन से गीत गाना; हास्य यावत् अट्टहास करना; बा सुरी, सीटी, बिगुल बजाना; खिलखिलाहट हँसना आदि, (३) काया से मूछों पर ताव देना, हाथों से ताली बजाना, पैरों से नाचना, हाथ पैर उछालना, कूदना, भुजा आदि फटकारना, अभिनय करना, आँखों का विकसित होना, हर्ष के आँसू आना, नाक से श्वास की गति मन्थर धीमी होना, जिव्हा का ओष्ठ पर घूमना आदि ।

रौद्रस्थान के चार भेद-पाये- १. अपने इष्ट स योग आदि के लिये निर्दोष निर्बल को दबाना, पीडित करना, द ड देना, हत्या करना, युद्ध करना, २. झूठ बोलना, विश्वासघात करना, मिथ्या कल क दोषारोपण करना, झूठी साक्षी देना, ३. बडी चोरी करना, डाका डालना, लूँटना, उसके लिये प्रेरणा-सहायता देना, चोरी का माल सस्ते में लेना, न्यायोचित्त कर(टेक्ष) की चोरी करना, चोरी करके प्रसन्न होना, ४. निर्दोष को कारावास में डालना, कन्या, परस्त्री या विधवा का अपहरण करना, बलात्कार करना, सराफ श्रेष्ठि बनकर धरोहर दबा कर मुकर जाना, स्वामी उपकारी का द्रोह करना आदि ।

रौद्रध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- (१) स्वजन या परजन के अनजान में प्रथम बार में किये गये छोटे अपराध पर बडा कोप करना, बडा क्रूर द ड देना, (२) बार बार विविध प्रकार से द ड देना, (३) आरोप प्राप्त के द्वारा निर्दोषता प्रमाणित किये जाने पर भी उसे जानने समझने को उद्यत न होना, समझ में आने पर भी स्वीकार करने को तैयार न होना, (४) आरोपी के द्वारा क्षमा मा ग लिये जाने के बाद भी एव जीवन में सुधार लाये जाने के बाद भी, मरण तक उनके प्रति वैर शत्रुता बनाये रखना ।

धर्मध्यान के भेद-पाये- १. तीर्थंकर देवों की आज्ञा का, स वर निर्जरा धर्म आदरने का ध्यान-विचार करे, अनाज्ञा का, आश्रव का विरमण करने का, ध्यान-विचार करे, २. आज्ञा पालन से इह भव के सुख-शा ति आदर आदि के लाभ तथा कर्म निर्जरा के लाभ का चिंतन करे, आज्ञा पालन न करने से इस लोक के दु:ख, अशा ति, अनादर आदि का तथा कर्मब ध एव कर्म गुढता का ध्यान करे, ३. आज्ञापालन से परभव के पुण्यफल तथा निर्जरा का चिंतन करे तथा आज्ञा विराधना से परभव के पाप फल तथा कर्मब ध का चिंतन करे, ४. आज्ञापालन से लोकाग्र, लोक मस्तक, सिद्ध शिला पर सिद्धत्व प्राप्ति एव अनुत्तर अव्याबाध सुख का चिंतन करे तथा आज्ञा विराधना से चौदह राजु परिमाण उर्ध्व-अधो-तिर्यक लोक में, ४ गति, २४ द डक, ८४ लाख जीवयोनि में परिभ्रमण, दाढण दु:ख, दु:खपर परा अनुब ध का विचार करे ।

धर्मध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- (१) देवगुढशास्त्र की आज्ञा आदेश अनुशासन में तथा तदनुसार क्रिया में ढचि, (२) विधि, उपदेश, बोध, समझाइश में तथा तदनुसार क्रिया में ढचि, (३) सूत्र- मूलआगम पाठ, सिद्धा त-श्रवण, वाचन, अध्ययन, क ठस्थ करना आदि में ढचि, (४) निसर्ग-ऊपर के तीनों कारणों के बिना क्षयोपशम स्वभाव से ही दृश्य पदार्थ की अनुप्रेक्षा से, जातिस्मरणज्ञान या अवधिज्ञान से क्रिया में ढचि ।

धर्मध्यान के चार आल बन- (१) गुढ-शिष्य या साधर्मिक से वचना लेना-देना, सुनना, सुनाना, सीखना, सीखाना, (२) जिज्ञासा स्पष्टता परीक्षादि हेतु प्रश्न पूछना-उत्तर देना, वादविवाद करना एव प्रश्नोत्तर चर्चा-वार्ता सुनना, (३)

स्वाध्याय करना कराना, सुनना, पुनरावर्तन करना, पक्का करना, (४) धर्मकथा कहना, सुनना, शिक्षाबोध उपदेश आज्ञा देना–लेना ।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा– (१) एकत्व की अनुप्रेक्षा– स सारी जीव, कुटु ब, जाति, समाज आदि में अनेक रूप से लगा होते हुए भी जीव अकेला है, अकेला ही पूर्व भव से आया है, अकेला ही आगामी भव में जाने वाला है, कर्म को बा धने में, स चित करने में, उदीरणा में, भोगने में, निर्जरने में अकेला आत्मा ही मुख्य कारक है, अन्य सभी उपकारक या सहकारक है । (२) अनित्य भावना– जीव से जीव का पुद्गल से पुद्गल का, जीव से पुद्गल का स योग स ब ध अनित्य है, क्यों कि वियोग अवश्य भावी है । यथा–जीव और शरीर का जन्म–स योग है तो मृत्यु–वियोग निश्चित्त है । लग्न के बाद वैधव्य, विधुरत्व अनिवार्य है। स घात से स्कन्ध बनने के बाद भेद से परमाणु दशा अवश्य आती है । (३) अशरण भावना–जब तक पुण्य है, तब तक शरीर, परिवार, धन आदि शरणभूत दिखते हक्त किन्तु निकाचित पापोदय होने पर दाढण कर्म विपाक को भोगना ही पडता है । कोई भी उससे बचाने का सामर्थ्य नहीं रखता, उसे कम भी नहीं कर सकता, 'कम हो जायेगा' ऐसा वास्तविक पक्का आश्वासन भी नहीं दे सकता । (४) स सार भावना– जो आज माता है, वह पुत्री, पत्नी, भगिनी, पुत्रवधु बन जाती है, जो आज पिता है वह पुत्र, भाई, पति, जमाई बन जाता है, इस तरह अनुकूल स ब ध भी परिवर्तनशील है तथा शत्रु, शोषक, हत्यारा, विश्वास घाती, ये प्रतिकूल स ब ध भी परिवर्तनशील है । अनुकूल प्रति–कूल में तथा प्रतिकूल अनुकूल में यों भी परिवर्तन चालू रहता है । कोई आगामी भव में तो कोई इसी भव में परिवर्तित हो जाते हक्त ।

शुक्लध्यान के चार भेद–पाये– १. धर्मध्यान की सूक्ष्मता बढाते हुए श्रुतज्ञान के शब्द से अर्थ में या अर्थ से शब्द में स क्रान्त होना, श्रुत निर्दिष्ट द्रव्य से गुण में गुण से पर्याय में, पर्याय से द्रव्य में किसी भी विकल्प से स क्रान्त होना पर तु अन्य विषयों में न जाना, उसी विषय में एकाग्र होना, २. श्रुतज्ञान के शब्द या अर्थ में, द्रव्य, गुण या पर्याय में स क्रान्त हुए बिना किसी एक में ही एकाग्र होना । इसी प्रकार मन वचन काया से भी स क्रान्त हुए बिना एकाग्र होना, ३. तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में आरूढ होने के लिये मन वचन काय योग का निरोध करना, ४. सूक्ष्म मन वचन काययोग का भी निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में मेढ पर्वत के समान सर्वथा अचल होना, आत्मप्रदेशों का भी उत्कलन न रहना ।

शुक्लध्यान के चार लक्षण– (१)प्रखर, परम असाताकारक; प्रखर वेदनीय तथा मरण के प्राप्त होने पर भी 'व्यथित न होना' । (२) प्रबल, चरम मोहकारक अप्सरादि के विलास, कटाक्ष, आम त्रण, आलिंगन आदि में भी 'मोह प्राप्त न करना' । (३) जीव और शरीर में पृथक्करण का अनुभव करना, विवेक भाव प्राप्त करना, जागृत रहना। (४) पृथक्करण अनुभव के अनुसार शरीर ममत्व आदि का त्याग करना, पौद्गलिक सुख–दु:ख के स योग में अख ड निर्वेद भाव में रहना । शरीर और उपकरणों में आसक्ति भाव का 'व्युत्सर्जन' होना ।

शुक्लध्यान के चार आल बन– (१) क्रोध की उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी अपूर्व **क्षमा** धारण करना, सोमिल ब्राह्मण के प्रस ग में **गजसुकुमाल** के समान । (२) लोभ उदीरणा का बलवान प्रस ग उपस्थित होने पर भी

अपूर्व **लोभमुक्त** होना, यथा- भवनपति देवों द्वारा निदान करने की प्रार्थना किये जाने पर भी लोभ मुक्त **तामली** तापसवत् । (३) माया उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी **सरलता** निष्कपटता एकरूपता तीनों योगों की बनाये रखना । यथा- महाबल के द्वारा माया किये जाने पर भी सरलमना छहमित्र राजर्षि के समान । (४) मान उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी **नम्र विनीत कोमल लघु** बने रहना, क्षत्रिय राजर्षि के द्वारा स्तुति किये जाने पर नम्र स यति राजर्षि के समान ।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षा- (१) व्यवहार राशि का प्रत्येक स सारी जीव सभी योनियों में अन तबार परिभ्रमण कर चुका है, फिर भी मोह के कारण विराम की भावना नहीं आई । (२) विश्व के सभी पुद्गल पदार्थ स्वभाव से या प्रयोग से शुभ से अशुभ में तथा अशुभ से शुभ में परिणत होते रहते हक्त, तो फिर उनमें एका त राग या एका त द्वेष क्यों करना ? वीतरागता के भाव में ही रहना । (३) इस स सार के समस्त प्रवर्तनों में दु:ख ही दु:ख का अनुभव करना, यथा- **अहो दुक्खो हु स सारो** अर्थात् **यह सारा स सार दु:खमय है** ऐसा चिंतन करके विरक्त रहना । (४) दु:ख के मूल कारण का चिंतन करना, यथा- स सार परिभ्रमण अर्थात् जन्म मरणादि दु:ख के मूल है, जन्म मरण का मूल कर्मब ध है एव इसका मूल विषयेच्छा-भोगेच्छा है तथा इसका मूल राग-द्वेष, अर्थात् मोह है ।

अत: मोह, राग-द्वेष, भोगेच्छा, कर्मब ध, जन्म मरणादि दु:खों से विरक्त होकर आत्मा का मोक्ष मार्ग तथा मोक्ष के प्रति सन्मुख होना । इस प्रकार २+२+४+४=१२x४=४८ भेद-प्रभेदों से चार ध्यान का वर्णन किया गया है ।

आध्यात्मिक ध्यान

चित्त की अवस्थाओं का किसी विषय पर केन्द्रित होना ध्यान है । जैन पर परा में ध्यान के चार प्रकार है- (१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान इसमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान चित्त की दूषित प्रवृत्तियाँ है । अत: साधना एव तप की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है, ये दोनों ध्यान त्याज्य है । आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दोनों ही महत्वपूर्ण है । इनकी विचारणा इस प्रकार है-

धर्मध्यान- इसका अर्थ है चित्त विशुद्धि का प्रार भिक अभ्यास । धर्मध्यान के लिये चार बातें आवश्यक-१.आगमज्ञान २. अनासक्ति ३.आत्मस यम और ४.मुमुक्षुभाव । धर्मध्यान के चार प्रकार है- (१) आज्ञा विचय-आगम के अनुसार तत्त्व स्वरूप एव कर्तव्यों का चिंतन करना ।(२) अपाय-विचय- हेय क्या है, इसका विचार करना । (३) विपाक-विचय- हेय के परिणामों का विचार करना । (४) स स्थान - विचय- लोक या पदार्थों की आकृतियों, स्वरूपों का चिन्तन करना ।

चौथा स स्थान-विचय धर्मध्यान चार उपविभागों में विभाजित है- १. पि डस्थ ध्यान- यह किसी तत्त्व विशेष के स्वरूप के चिंतन पर आधारित है । इसकी पार्थिवी, आग्नेयी, माढती, वाढणी और तत्त्वभू ये पाँच धारणाएँ मानी गई है । २. पदस्थ ध्यान- यह ध्यान पवित्र म त्राक्षर आदि पदों का अवल बन करके किया जाता है । ३. रूपस्थ ध्यान- रागद्वेष मोह आदि विकारों से रहित अर्हन्त प्रभु का ध्यान करना ।

४. रूपातीत ध्यान- निराकार, चैतन्य-स्वरूप सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना ।

शुक्लध्यान- यह धर्म-ध्यान के बाद की स्थिति है । शुक्लध्यान के द्वारा मन को शा त और निष्प्रकम्प किया जाता है । इसकी अ तिम परिणति मन की समस्त प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध है । शुक्लध्यान चार प्रकार का है- **(१)** पृथक्त्व-वितर्क-सविचार-इस ध्यान में ध्याता कभी अर्थ का चिंतन करते-करते शब्द का और शब्द का चिंतन करते-करते अर्थ का चिंतन करने लगता है । इस ध्यान में अर्थ, व्य जन और योग का स क्रमण होते रहने पर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है । **(२)** एकत्व-वितर्क अविचारी-अर्थ, व्य जन और योग स क्रमण से रहित एक पर्याय-विषयक ध्यान **एकत्व-श्रुत विचार** ध्यान कहलाता है । **(३)** सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति- मन, वचन और शरीर व्यापार का निरोध हो जाने एव केवल श्वासोश्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया के शेष रहने पर ध्यान की यह अवस्था प्राप्त होती है । **(४)** समुच्छिन्न-क्रिया-निवृत्ति- जब मन वचन और शरीर की समस्त प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है और कोई भी सूक्ष्म क्रिया शेष नहीं रहती, उस अवस्था को समुच्छिन्न क्रिया शुक्लध्यान कहते हक्त । इस प्रकार शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था से क्रमशः आगे बढते हुए अ तिम अवस्था में साधक कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध कर अ त में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेता है ।

ध्यानस्वरूप विचारणा

किसी भी प्रवृत्ति करने के पूर्व उसका स्वरूप समझना आवश्यक होता है । कहा भी है-

प्रथम ज्ञान पीछे क्रिया, यह जिन मत का सार ।
ज्ञान सहित क्रिया करे, तो उतरे भव पार ॥

दशवैकालिकसूत्र अध्ययन ४, गाथा १० में भी यही भाव कहा गया है और यह भी कहा है कि अज्ञानी अपने हित या अहित को कैसे समझ सकता है ?

ग्रामा तर जाना है तो उस ग्राम का मार्ग कौन सा है ? अन्य ग्राम के मार्ग भी बीच में कौन से जाते हक्त ? इसकी सही जानकारी करनी आवश्यक होती है ।

गमन करने के लिये सही मार्ग भी होते हक्त और लक्ष्य से विपरीत मार्ग भी होते हक्त; किसी भी कार्य को करने की सही विधि भी होती है, गलत विधि भी होती है; खाने के पदार्थ अच्छे भी होते हक्त एव खराब भी होते हक्त । ठीक इसी प्रकार ध्यान भी दो तरह का है- १. शुभ २. अशुभ ।

अशुभ ध्यान के दो प्रकार है- १. आर्तध्यान २. रौद्र ध्यान । शुभ ध्यान के दो प्रकार है- १. धर्मध्यान २. शुक्ल ध्यान । आत्मा के परिणाम- अध्यवसाय भी दो तरह के होते हक्त- १. शुभ २. अशुभ ।

आगम में कहा है कि ' सद् ध्यान में रत रहने वाले की शुद्धि होती है' । अन्यत्र यह भी कहा है कि- 'धर्मध्यान में जो रत रहता है वह भिक्षु है ' ***-दसवै.अ.८ ।***

ध्यान परिभाषा- जब धर्मध्यान या शुभध्यान होता है तो प्रतिपक्षी अशुभध्यान या अधर्मध्यान का अस्तित्व भी होता ही है, यह स्पष्ट है । अतः ध्यान की परिभाषा वही शुद्ध हो सकती है जिसमें अशुभध्यान और शुभध्यान दोनों का समावेश हो सकता है अन्यथा वह ध्यान की परिभाषा पूर्ण नहीं कहला सकती ।

जैन आगमों व ग्र थों में जहाँ भी ध्यान के भेद किये हक्त या ध्यान की परिभाषा दी है उसमें यह अपूर्णता नहीं है क्यों कि उस परिभाषा में, भेदों में शुभ–अशुभ दोनों ध्यानों का पूर्ण समावेश होता है । कोई भी वस्तु की परिभाषा उस पदार्थ के स पूर्ण अवयवों को ग्रहण न करे तो उसे सही परिभाषा नहीं कह सकते ।

जैन आगमानुसार ध्यान के चार प्रकार है उसमें दो आत्मा के लिये अहितकर है, त्याज्य है । दो हितकर है, ग्राह्य है । प्रत्येक ध्यान के आल बन और लक्षण आदि भी आगमों में बताये गये हक्त ।

सभी प्रकार के ध्यानों को समाविष्ट करने वाली तथा ध्यान और अध्यान के स्वरूप को बताने वाली ध्यान की परिभाषा इस प्रकार है–

गाढाल बण लग्ग , चित्त वुत्त निरेयण झाण ।
सेस न होइ झाण , मउय–मवत्त भम त वा ॥आव.नि.गा.१४८३ ॥

अर्थ– किसी भी गाढ आल बन में लगा हुआ और अक पमान(स्थिर) चित्त **ध्यान** कहा जाता है । शेष जो चित्त की अवस्थाएँ होती है वे ध्यान स्वरूप नहीं है, यथा– १. आल बन रहित शा त चित्त, २. अव्यक्त चित्त, ३. भटकता हुआ चित्त ।

ज थिर अज्झवसाण त झाण , ज चल तय चित्तं।
त होज्ज भावणा वा अणुप्पेहा वा अहव चिंता ॥ ध्यान शतक–२॥

अर्थ– जो स्थिर अध्यवसाय है वह ध्यान है और जो चल अध्यवसाय है वह चित्त है । जो कि भावना स्वरूप, अनुप्रेक्षा स्वरूप व अन्य कोई चिंता स्वरूप भी हो सकते हक्त ।

इन दोनों परिभाषाओं में शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के

ध्यानों का समावेश हो जाता है तथा ध्यान और अध्यान अवस्था का भी स्पष्टीकरण हो जाता है ।

सार– शुभ या अशुभ जो स्थिर अध्यवसाय अवस्था है वह ध्यान है और अस्थिर च चल अध्यवसाय है वह अध्यान अवस्था है । गाढ आल बन युक्त अवस्था अर्थात् किसी भी एक विषय में तल्लीन अवस्था है तो ध्यान हो सकता है और जो आल बन रहित या म द (सुस्त–शा त) परिणाम है, अव्यक्त परिणाम(निद्रा आदि के समय) तथा भटकते विचार आदि है, वे कोई भी ध्यान नहीं है । वह आत्मा की अध्यान अवस्था कहलाती है ।

अशुभ विषयों में तल्लीन आत्मा में दो अशुभ ध्यान हो सकते हक्त । शुभ विषयों में तल्लीन–एकाग्र चित्त सावधान आत्मा में दो शुभ ध्यान हो सकते हक्त । अन्य अनेक अवस्थाएँ जो भी है वे अध्यान रूप है । जैसा कि आवश्यक निर्युक्ति गाथा १४८१–१४८२ में बताया है ।

अध्यान– प्रचला–झपकी आने की अवस्था, गाढ निद्रावस्था, जागृत अवस्था में भी अव्यापारित(अप्रवृत्त शा त–सुस्त) चित्त, अपर्याप्तावस्था, अव्यक्त चित्त(असन्नी के), मूर्च्छित अवस्था, नशे में बेभान अवस्था, ये सब अध्यान अवस्थाएँ हक्त । इन अवस्थाओं में आत्मा का शुभ–अशुभ कोई भी ध्यान नहीं होता है ।

किसी भी विषय में तल्लीन होना और स्थिर होना यही ध्यान है ।

चार ध्यान– (१) सुख–दुःख के स योग–वियोग आदि विषयों में तल्लीन और स्थिर चित्त आर्तध्यान है । (२) अन्य का अहित करने आदि में तल्लीन और स्थिर चित्त रौद्रध्यान है । ये दोनों आत्मोन्नति के ध्यान नहीं है । अतः धर्मध्यान की

साधना में इनका सावधानी पूर्वक त्याग किया जाता है । (३) इनके सिवाय आत्म लक्ष्य के किसी भी विषय में चित्त को तल्लीन कर एकाग्र करना धर्मध्यान है । (४) उससे आगे बढकर सूक्ष्म व सूक्ष्मतर विषय में केन्द्रित होने पर शुक्लध्यान की(प्राथमिक)अवस्था आती है । शुक्लध्यान की आगे की अवस्था केवलज्ञान प्राप्ति के समय एव उसके बाद ही है जो मोक्ष प्राप्ति के कुछ सैक ड पूर्व होती है । वह योग निरोध अवस्था अ तिम ध्यान स्वरूप है । छद्मस्थ और केवली के ध्यान का स्पष्टीकरण इस प्रकार है- दो ध्यान-

अ तोमुहुत्त मेत्त , चित्त-वत्थाण एग वत्थुम्मि ।
छउमत्थाण झाण , जोग निरोहो जिणाण तु ॥३॥

अर्थ- अ तर्मुहूर्त समय मात्र के लिये किसी भी एक वस्तु(तत्त्व) विचार में चित्त का स्थिर हो जाना यह छद्मस्थों का ध्यान है । योग निरोध करते समय एव योग निरोध हो जाने पर जो आत्म अवस्था होती है वह केवलियों का ध्यान है । अ तर्मुहूर्त के बाद छद्मस्थ को कोई भी अन्य चल विचार या अन्य ध्यान हो जाता है । बहुत वस्तुओं के आल बन की अपेक्षा विषयान्तर की अपेक्षा ध्यान ल बे समय तक भी रह सकता है ।- ***'ध्यान शतक,' गाथा-४ ।***

छद्मस्थों का ध्यान शुभ-अशुभ दोनों तरह का हो सकता है और अध्यान अवस्था भी बहुत समय रहती है । केवलियों के योग निरोध अवस्था के समय शुक्लध्यान है शेष दीर्घकालीन उम्र अध्यान अवस्था हक्त । इस प्रकार ध्यान को समझ कर अशुभ से शुभ ध्यान में आत्मा को तल्लीन, स्थिर करने से धर्मध्यान की साधना की जा सकती है । आत्मा को धर्मध्यान में तल्लीन करने के आल बनभूत विषय- १. आत्मस्वरूप २. कर्मस्वरूप ३. भवभ्रमणस्वरूप ४. कषाय

स्वरूप ५. सिद्धस्वरूप ६. स्वदोष दर्शन ७. परगुण दर्शन ८. स्वदृष्टि पुष्टि (आत्म दृष्टि पोषण) ९. परदृष्टि त्याग १०. पुद्गलासक्ति त्याग ११. अकेलेपन का चिंतन- एकत्वानुप्रेक्षा, अनित्यत्व, अशरणत्व, अन्यत्व आदि चिंतन तथा जिनभाषित किसी भी तत्त्व का स्वरूप या भगवदाज्ञा का स्वरूप ।

कोई भी विषय की पस दगी में ध्यान यही रखना चाहिये कि उसमें शारीरिक, इहलौकिक, सुखस योग, दुःखवियोग, पर-अहित रूप, अशुभ विषय नहीं होना चाहिये ।

सार- (१) शुभ ध्यान आत्मा के लिये हितकर है, महान कर्म निर्जरा का हेतु है । (२) अशुभध्यान कर्मब ध का हेतु है । (३) चित्त की च चल अवस्था रूप **अध्यान** भी अनेक कर्मों की वृद्धि करने वाला है । (४) चित्त की शा त या सुप्त अव्यक्त अवस्था रूप **अध्यान** में आश्रव कम होने के साथ निर्जरा भी कम होती है ।

अतः इन चारों अवस्था में प्रथम अवस्था आत्मोन्नति में ज्यादा उपयोगी है । यह समझकर महान निर्जरा के हेतु रूप शुभध्यान अर्थात् धर्मध्यान में आत्मा को जोडने की साधना करनी चाहिये ।

वर्तमान में प्रचलित अनेक ध्यान प्रणालियों से प्राप्त अवस्थाएँ वास्तव में अध्यान रूप आत्म अवस्थाएँ है, ऐसा उपरोक्त प्रमाण व विवेचन से समझ में आ सकता है । वह उपरोक्त चौथी अवस्था अर्थात् दूसरी अध्यान अवस्था है । अतः मोक्ष प्राप्ति की साधना में वह विशेष गतिप्रद साधना नहीं हो सकती है ।

ध्यान के साथ सच्ची श्रद्धान- जैनधर्म की दृष्टि से धर्मध्यान की साधना करने वाला मुमुक्षु सम्यग्ज्ञान व सम्यग् श्रद्धान

से युक्त होना चाहिये । इसके बिना स पूर्ण स यम-तप राख के उपर गोबर लिपने के समान होता है ।

भगवद् वाणी के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ यथाशक्ति भगवदाज्ञा अनुसार श्रावक के १२ व्रत रूप देश विरति धर्म में अथवा स यम रूप सर्वविरति धर्म में साधक का पुढषार्थ अवश्य होना चाहिये । उसका इन दोनों प्रकार के धर्मों के प्रति श्रद्धा निष्ठा होनी चाहिये । किन्तु ' ये तो क्रियाका ड हक्त ' ऐसे शब्दों या भावों से आत्मा में उपेक्षावृत्ति नहीं होनी चाहिये ।

श्रावकों के आगमिक विशेषणों में सर्वप्रथम विशेषण 'जीवादि पदार्थों का ज्ञाता' होना बताया गया है ।

सम्यक्त्व के स्वरूप में भी जीवादि पदार्थों का ज्ञान व श्रद्धान आवश्यक अ ग कहा है ।

ध्यान तप है उसके पूर्व सम्यग्ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान एव यथाशक्ति देशविरति या सर्वविरति चारित्र आवश्यक है । इन तीनों (ज्ञान,दर्शन,चारित्र)की उपस्थिति में ही तप-ध्यान आदि, आत्म साधना के अ ग रूप होकर विकास करा सकते हक्त । अतः तप या ध्यान की साधना में अग्रसर होने वाले साधक को अपनी सम्यग् ज्ञान सम्यग् श्रद्धान तथा सम्यग् चारित्र की भूमिका को सुरक्षित रखते हुए आगे बढना चाहिये ।

सामान्य ज्ञान वाले छद्मस्थों की अपेक्षा विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थों के कथन को प्रमाणभूत मानना और विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थों की अपेक्षा सर्वज्ञानी केवलज्ञानी वीतराग भगवान के कथनों को विशेष प्रमाणभूत मानना, यह निर्णय बुद्धि रखकर शुद्ध श्रद्धा के साथ शुद्ध आचरण करना चाहिये ।

चारों ध्यान के जो लक्षण हक्त तथा जो आल बन हक्त,

अनुप्रेक्षाएँ है, उनमें वर्तते हुए जब स्थिर अवस्था आती है, तब यह ध्यान होता है । उसके पूर्व वह साधक उस ध्यान के आल बनादि रूप अवस्था में रहता है ।

आल बन, लक्षण, भावना आदि के माध्यम से ही जब स्थिर परिणाम अवस्था होती है, तब वह शुभ या अशुभ ध्यान होता है । अतः शुभध्यान अवस्था प्राप्त करने के लिये उनके आल बन आदि में रहते हुए तल्लीन व स्थिर परिणाम होने का अभ्यास करना ही धर्मध्यान की साधना है । आल बन रहित या शरीर के अ ग अथवा श्वास के आल बन की साधना केवल अस्थिर चित्त की अस्थिरता को कम करने का उपाय मात्र है । उससे आगे बढकर किसी भी आत्म अनुप्रेक्षा में, धर्म तत्त्वानुप्रेक्षा में, अध्यवसायों को, चित्त को, स्थिर करना तथा भगवदाज्ञा की अनुप्रेक्षा में, आत्मअहित करने वाले अपायों-आश्रवों की अनुप्रेक्षा में, कर्म विपाक अनुप्रेक्षण में या स सार तथा लोक स्वरूप के अनुप्रेक्षण में आकर, अध्यवसायों को एकाग्र-स्थिर करना; यह आत्मोन्नति रूप एव तप रूप धर्मध्यान की साधना होती है । इस प्रकार समझपूर्वक धर्मध्यान की तप साधना करना ही श्रेयस्कर है ।

ध्यान की अन्य कोई परिभाषा करना शुद्ध नहीं कहा जा सकता । क्यों कि यदि **मन को निश्चेष्ट करना ध्यान कहा जाय** तो वह आर्तध्यान में कैसे लागू होगा और धर्मध्यान, रौद्रध्यान कैसा होगा । ये भी तो ध्यान ही हक्त ।

अतः ध्यान की अन्य कोई परिभाषा जो इन आगमोक्त चारों ध्यान में पूर्ण घटित नहीं हो सकती, वह परिभाषा अध्यान स्वरूप ही कहलायेगी ।

अध्यान स क्षेप में दो प्रकार का है- शा त सुप्त चित्त

अवस्था और च चल चित्त अवस्था । अन्य परिभाषाओं वाले प्रचलित ध्यान भी इन अध्यानों में समाविष्ट होते हक्त ।

आगम निरपेक्ष होकर कोई उसे पाँचवाँ ध्यान कह दे अथवा वास्तविक ध्यान यही है शेष सब चारों अध्यान है ऐसा कहे तो यह उसका कथन आगम निरपेक्ष तथा जैनधर्म से निरपेक्ष एव बुद्धि कल्पित कहलायेगा । इसे जैनागम या जैन धर्म के ध्यान के नाम से कहना या समझना भ्रामक होगा ।

जैनधर्म का ध्यान ज्ञानपूर्वक ध्यान है । इसके चार प्रकार है जिसमें शुभ अशुभ दोनों का समावेश है । ये चारों ध्यान चित्त की तल्लीनता व स्थिरता एकाग्रता से उत्पन्न होते हक्त । दो हेय है दो उपादेय है । उन चारों के चार लक्षण है, चार-चार आल बन है । धर्म ध्यान के चार विचय-चिंतन के मुख्य विषय है, चार अनुप्रेक्षा(आत्म भावनाएँ) है, चार आल बन है । चार ढचियाँ हक्त । ये सभी उस ध्यान में पहुँचाने में उपयोगी द्वार हक्त । द्वार में प्रवेश करेगा वही अ दर पहुँचेगा । ये धर्मध्यान के द्वार हक्त । इनमें पहुँचकर साधक जब जिस किसी विषय में तल्लीन-एकाग्र होगा तो वह ध्यान दशा होगी और चल-विचल होगा वह धर्मध्यान के आल बन आदि द्वारों पर रहेगा । ध्यान के अ दर नहीं पहुँचेगा ।

साधु का जीवन ही आत्मसाधना के लिये होता है । उसकी दिनचर्या के विषय में आगम में बताया है कि प्रथम प्रहर में सदा स्वाध्याय करना और दूसरे प्रहर में ध्यान करना । स्वाध्याय के लिये चार प्रहर कहे हक्त ध्यान के लिये दो प्रहर कहे हक्त । गौतमस्वामी सरीखे गणधर ज्ञानी भी प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करते थे । इस प्रकार जैनागम तो ज्ञानपूर्वक ध्यान करना ही कहते हक्त और वर्तमान ध्यान पद्धति वाले खाना, सोना शारीरिक कृत्यों का

निषेध नहीं कर के स्वाध्याय का निषेध करते हक्त, यह आगम निरपेक्ष मानसवृत्ति है । ज्ञान से ध्यान की शुद्धि व वृद्धि होती है । कषायों से ध्यान की विकृति होती है । कषाय बाह्यवृत्ति से होते हक्त । ज्ञान स्वाध्याय अ तर्मुखी जागृति कारक है, वह ध्यान का सहयोगी है । आगम स्वाध्याय को रागद्वेष का मूलक नहीं कहा जा सकता । भगवदाज्ञा की कोई भी प्रवृत्ति को रागद्वेष नहीं कहा जा सकता । व्यक्तिगत किसी के लिये तो आश्रव के स्थान निर्जरा भूत बन सकते और वह निर्जरा के स्थान से ब ध भी कर सकते हक्त किन्तु सिद्धान्त तो ज्ञान को सदा आगे रखने वाला है । राग द्वेष के मुख्य विषयभूत स्थल इन्द्रिय-विषय, आशा, तृष्णा, हिंसादि पाप हक्त । ये सब त्याज्य है । ज्ञान, स्वाध्याय त्याज्य नहीं किंतु उपादेय है । यथासमय यथायोग्य वृद्धि करने योग्य है, आभ्य तर तप है । यह ध्यान को प्राप्त कराने का आधार है, आल बन है ।

स पूर्ण सार– किसी भी(तत्त्व आदि के) आल बन में तल्लीन और स्थिर चित्त की अवस्था आने पर ध्यान होता है ।

बिना किसी आल बन का शा त(सुस्त) चित्त या च चल चित्त या सुप्तचित्त अथवा अव्यक्त चित्त ध्यान नहीं कहा जाता है । वह अध्यान है ।

अत: किसी भी धर्म तत्त्व या आत्म तत्त्व के चिन्तन में तल्लीन होकर स्थिर होने का अभ्यास करने पर ध्यान की साधना हो सकती है । अशुभ आर्त्त, रौद्र के चिन्तनों से निवृत्त होकर धर्म तत्त्व के चिन्तन में आकर स्थिर होने का अभ्यास कर स्थिर हो जाना **धर्मध्यान** कहा जाता है ।

ध्यान के आसपास की तत्त्व विचारणा

गुप्ति– मन, वचन एव काया का निग्रह करना; उन्हें अल्प, अल्पतम प्रवृत्त करना; सहज आवश्यक चिन्तन के सिवाय अन्य स कल्पों का निग्रह करना; मन को अधिक, अधिकतर आत्म वश में करना **मनगुप्ति** है ।

वचन प्रयोग करने की उत्पन्न इच्छाओं का निग्रह करना, अल्प या अल्पतम बोलना अथवा अत्य त आवश्यक होने पर ही बोलना अन्यथा मुख पर या वचन पर अत्यधिक लगाम रखना **वचनगुप्ति** है ।

काया की च चलता, इन्द्रियों की च चलता, खाना, पीना, चलना, फिरना, मौज-सौख, देखना, सुनना आदि अनेक प्रवृत्तियों से उदासीन होकर अल्प, अल्पतम, सीमित काय-प्रवर्तन में अभ्यस्त होना **कायगुप्ति** है ।

समिति– समिति में निग्रह का विषय नहीं है । दिन रात जो भी आवश्यक कर्तव्य करना है, स यम कार्य या योग प्रवर्तन करना है, तो भले ही करते रहो, किन्तु **जय चरे जय चिट्ठे** आदि का पालन करना आवश्यक है । हर प्रवृत्ति यतना-विवेक से करना, चाहे १० घ टे बोलते रहो या १० घ टे चलते रहो या दिन रात सेवा कार्य में लीन रहो, पढना पढाना आदि करते रहो, इन्हें विवेक से एव स यम मर्यादा से करते रहो । इस प्रकार समिति में हर प्रवर्तन में विवेक रखना होता है । इसमें निग्रह की मुख्यता नहीं है ।

स्वाध्याय– आगम या आगम कथित तत्त्वों का अध्ययन, स्वाध्याय, क ठस्थ करना, अर्थ समझना, जिज्ञासाओं को पूछकर हल करना, स्वय अनुप्रेक्षण कर अर्थ परमार्थ की उपलब्धि करना, इस प्रकार से उपलब्ध हुए श्रुत या श्रुत नवनीत को यथावसर विश्लेषण कर भव्य जीवों को समझाना, ये वाचना,

पृच्छा, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप स्वाध्याय के अगहक्त।

ध्यान– (१) स योग वियोग के गाढतर स कल्प-आर्त्तध्यान है । (२) दूसरों के अनिष्ट के अत्य त स क्लिष्ट स कल्प-रौद्रध्यान है । (३) आत्मलक्षी अनुप्रेक्षाएँ(१२ भावना आदि) या तप स यमोन्नति के अनुप्रेक्षण-धर्मध्यान है। (४) अत्य त शुक्ल, पवित्र एव सूक्ष्मतम आत्म अनुप्रेक्षाएँ करना, अनुप्रेक्षा से आत्मभाव में एकमेकता एव दृढता-स्थिरता की अवस्था होना-शुक्लध्यान है । ये चारों ध्यान और ध्यान की अनुप्रेक्षाएँ, आगम तत्त्व अवागाहन रूप अनुप्रेक्षा से भिन्न हक्त ।

ध्यान और स्वाध्याय– यद्यपि आत्म तत्त्व भी आगम विहित ही है । फिर भी ज्ञान और ज्ञान के परमार्थ का अनुप्रेक्षण स्वाध्याय है । स्वाध्याय, धर्म ध्यान का आल बन है किन्तु ध्यान स्वाध्याय के पाँच भेदों से भिन्न अलग तत्त्व, अलग तप और अलग निर्जरा भेद कहा गया है । अत: इन दोनों की भिन्नता को सही रूप से समझना चाहिये । ऐसे गहन विषय पर परा के अर्थों में उलझने से समझ में नहीं आ सकते ।

पर परा से व्यवहार में कहा जाने वाला **धर्मध्यान** तो धर्माचरण के लिये रूढ है । वैसे ही दूसरे प्रहर का आगम कथित ध्यान भी उन आगमों के अर्थ का चिन्तन मनन अवगाहन के लिये रूढ प्रयोग है, क्यों कि उस दूसरे प्रहर में उत्कालिक सूत्रों का स्वाध्याय करना, गुढ से अर्थ की वाचना लेना और प्रथम प्रहर में किये गये स्वाध्याय के अर्थ परमार्थ का अनुप्रेक्षण करना इत्यादि विधानों से भी वह स्वाध्याय रूप ही ध्यान है । ऐसा आगम उल्लेखों से और स्वाध्याय के कहे गये पाँच भेदों के वर्णन से स्पष्ट है । इसी कारण ध्यान की पोरिसी का दूसरा नाम अनेक जगह **अर्थ-पोढषी** कहा गया है ।

ध्यान तप जो स्वत त्र है स्वाध्याय से भिन्न है उसे स्वाध्याय की परिभाषा से और पाँचों भेदों से अलग ही समझना होगा ।

ध्यान कब– ध्यान तप की अपेक्षा आगमों में **"पुव्वरत्तावररत्त काल समयय सि धम्म जागरिय जागरमाणे"** तथा **"जो पुव्व रत्तावररत्त काले, स पेहए अप्पगमप्पएण "** आदि वाक्य आये हक्त । इसके अतिरिक्त आगम में ध्यान की अनुप्रेक्षाएँ भी स्वत त्र कही गई है । तात्पर्य यह है कि पुद्‌गल लक्षी या पर लक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता अशुभ ध्यान है और आत्मलक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता शुभध्यान है तथा तत्त्वलक्षी तत्त्व निर्णायक अनुप्रेक्षण स्वाध्याय के भेद रूप अनुप्रेक्षा है ।

व्युत्सर्ग– मन वचन काया की स्थूल या शक्य सभी प्रवृत्तियों को समय की मर्यादा करके वोसिरा देना, स घ, समूह और स योगों को वोसिरा देना, शक्य हो जितना सर्वथा त्याग करना **व्युत्सर्ग तप** है । इसमें कायोत्सर्ग का, मौन व्रत का एव एक वस्तु या क्रिया प्रेक्षण का समावेश समझना चाहिये ।

(१) स्वाध्याय या उसके अनुप्रेक्षण रूप ध्यान घंटो तक हो सकते हक्त ।(२) व्युत्सर्ग रूप कायोत्सर्ग, मौनव्रत और एक वस्तु प्रेक्षण ये बहुत ल बे समय तक शक्ति अनुसार, स्थिरता-दृढता अनुसार हो सकते हक्त ।(३) ध्यान क्षणिक होता है मिनट दो मिनट या उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त(कुछ मिनट) तक ही रह सकता है इसका समय अधिक नहीं है ।

जाप और लोगस्स– जाप और लोगस्स आदि का पुनरावर्तन करना न स्वाध्याय है न व्युत्सर्ग है । यह प्रवर्तन आगम आधार से नहीं किन्तु पर परा मात्र से है जो कि साधक की प्रार भिक स्टेज-अवस्था है ।

नमस्कार या विनय प्रवर्तन मर्यादा से होता है । यथा- गुढ, माता, पिता आदि को प्रणाम, नमन, चरणस्पर्श, व दन एक बार या यथासमय ही उपयुक्त होता है । उसी का कोई रटन करे, बार बार प्रणाम करे, तो अनुपयुक्त होता है । गुण-कीर्तन भी यथासमय एक बार प्रकट रूप से किया जाना उपयुक्त होता

है । अतः जाप लोगस्स आदि आगम सम्मत उन्नतशील प्रवर्तन नहीं है अथवा ध्यान आदि रूप भी वास्तव में नहीं है । किन्तु ये जाप, आश्रव त्याग रूप है, प्राथमिक अवस्था रूप है, अथवा स्वाध्याय आदि करने की योग्यता रहित व्यक्ति के लिये धर्माचरण रूप या उसके आल बन रूप है ।

ध्यान आदि के कर्ता और आसन– सामान्य साधुओं का अधिक समय स्वाध्याय और उसके अनुप्रेक्षण रूप ज्ञान-ध्यान में व्यतीत होता है जो कि स्वाध्याय का चौथा प्रकार है ।

छद्मस्थ-तीर्थंकर, गच्छमुक्त जिनकल्प एव प्रतिमाधारी आदि साधकों का अधिक समय व्युत्सर्ग में व्यतीत होता है ।

कायोत्सर्ग, व्युत्सर्ग का ही एक अ ग है । जो विधि रूप से खडे-खडे ही किया जाता है और अपवाद रूप में बेठे, सोए आदि भी हो सकता है ।

स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण रूप ध्यान उत्कटुक आसन (खमासमणा देने का आसन) से करना प्रमुख विधि रूप है, शेष आसन सामान्य विधि रूप है ।

ध्यान-पद्मासन, पर्यंकासन, सुखासन, उत्कटुकासन आदि यथायोग्य आसन से किया जा सकता है ।

स्वाध्याय भी विनय युक्त किसी भी आसन से किया जा सकता है ।

कायोत्सर्ग शब्द काया की मुख्यता से कहा गया है फिर भी वास्तव में तीनों योगों का शक्य व्युत्सर्ग करना उसमें निहित- अ तर्भावित है ऐसा समझना चाहिये ।

एक तप में दूसरा तप– किसी भी तप के साथ अन्य कोई भी तप किया जाना निषिद्ध नहीं है । यथा-स्वाध्याय करते-करते आत्मध्यान में लीन हो सकते हक्त अथवा कायोत्सर्ग में स्वाधयाय का अनुप्रेक्षण या आत्मलक्षी ध्यान भी हो सकता है किन्तु एक का अस्तित्व दूसरे में एकमेक नहीं कर देना और एक के अभाव

में दूसरे का निषेध भी नहीं कर देना । यथा उपवास के साथ पौषध हो सकता है किन्तु बिना पोषध के उपवास नहीं होता है, यह निषेध भी अनुचित्त है और बिना उपवास के पौषध नहीं होता है, यह निषेध भी आगम विढद्ध है ।

आहार त्याग रूप उपवास भी एक व्रत प्रत्याख्यान या तप है, तो सावद्ययोग त्याग भी एक व्रत है । दोनों साथ में हो सकते हक्त उसका महत्व और नाम भिन्न होता है । किन्तु अलग-अलग होने का निषेध करना, एका त आग्रह रखना, जिनमार्ग के प्रतिकूल है । जिस साधक को जो ढचि, योग्यता एव अवसर हो वह एक अथवा अनेक धर्मक्रिया या तप आदि साथ में या अलग-अलग कर सकता है । कोई ऊँचे दर्जे की साधना करता है, कोई अन्य दर्जे की । किन्तु श्रद्धान, ज्ञान शुद्ध है, तो उसकी कोई भी दर्जे वाली आगम सम्मत क्रिया को एका त दृष्टि पकड कर खराब या खोटी कह देना या समझ लेना, सही और अनेका तिक दृष्टि नहीं है । किन्तु स कीर्ण एका तिक, आगम निरपेक्ष, दुराग्रहवृत्ति वाली दृष्टि है । समन्वय एव विचारक दृष्टि से, आगम के विशाल अनुप्रेक्षण से, किसी भी व्यक्ति की सही कसौटी तटस्थता-मध्यस्थता के साथ करनी चाहिये । पर परा या एका गी दृष्टि से किसी की कसौटी करना, स्वय का मान, पर परा-आग्रह या स कीर्ण दृष्टिकोण है । जो आत्मा में या अन्य में रागद्वेष की वृद्धि करने वाला होता है, उससे समभाव और परम शा ति में क्षति ही होती है किन्तु वृद्धि नहीं ।

अन्य की अपेक्षा करना उपेक्षा नहीं- दृढयोग या योगाभ्यास आदि अन्य मत का जो भी है, जैन मत में वह व्युत्सर्जन रूप कायोत्सर्ग है । उसी में उन सब का समावेश होता है । सम्यग् ज्ञान, श्रद्धान यदि सुरक्षित है तो तप रूप या अनाश्रव रूप कोई भी क्रिया साधक के लिए हितकर सिद्ध हो सकती है । उसमें किसी को हीन समझना अविवेक होता है ।

आचारा ग श्रुत २, अ. १ में विभिन्न प्रकार की सात पिंडेषणाएँ=अभिग्रह कहे हक्त । उनके अ त में कहा है **' जिसको जिसमें समाधि हो वह करे किन्तु यह नहीं सोचे कि मैं ही बढिया कर रहा हूँ, दूसरों की अच्छी नहीं है '** । किन्तु यह सोचे कि **'जिसकी जिसमें समाधि ढचि है, वह वही करता है, सभी जिनाज्ञा में उपस्थित हक्त'** ।

अतः जिनाज्ञा से बाहर हो उसकी साधना असम्यक् कही जा सकती है किन्तु जिनाज्ञा में रहते हुए कोई किसी भी एक या अनेक साधना को करे, उसे गलत दृष्टि से देखना अच्छा नहीं है ।

अपने स्थान पर आय बिल का महत्व है तो उपवास का महत्व भी अपने स्थान पर ही है ।

अपने स्थान पर स्वाध्याय का महत्व है तो सेवा का महत्व भी कम नहीं है ।

अपने स्थान पर एकल विहार भी दूसरा श्रमण मनोरथ है तो समूह की सारणा एव स रक्षण करने वाले आचार्य के लिये शीघ्र मोक्ष का फल भी कहा गया है ।

आगम में जिनकल्प और अचेलचर्या भी बतायी गयी है तो वस्त्र युक्त रहते हुए भी स यम की आराधना कही गई है । अतः स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग सभी तपों का अपना अलग-अलग महत्व एव अस्तित्व है उसे झुठलाना नहीं चाहिये, चाहे दूसरों का हो या अपना ।

अमिनेष दृष्टि विचारणा- कायोत्सर्ग के लिये जो **अनिमेष दृष्टि** या **एग पोग्गल दिट्ठी** शब्द का प्रयोग आगम में है । उसके लिये दो प्रकार की विचारणा है, **प्रथमपक्ष**- यह 'एग पोग्गल दिट्ठी' शब्द भावात्मक है, उसे चक्षु की अपेक्षा समझना स्थूल और अपूर्ण दृष्टि है । क्यों कि काया का व्युत्सर्ग करना है तो आँख को खुली रखने से कोई तात्पर्य नहीं है । आँखों का

खुला रहना अनेक दृष्यों एव विकल्पों में उलझने का स्थान है ।

अ धेरी रात में स्मशान या कहीं भी गुफा आदि में कायोत्सर्ग करने का और उसमें नाक पाँव या पुद्‌गल पर दृष्टि रखने का कोई मतलब या अस्तित्व भी नहीं हो सकता है ।

अतः उक्त अनिमेष दृष्टि शब्द से आत्मदृष्टि को एक वस्तु या एक क्रिया पर केन्द्रित कर शेष का व्युत्सर्जन कर देना ऐसा अर्थ समझना चाहिए । आँओं का ब द किया जाना सम्भव है और काया का व्युत्सर्ग करना ही है तो खुली रखने में लाभ क्या है कुछ भी देखने से दृष्टिजा क्रिया लगेगी ही । अतः यह **एक पुद्‌गल दृष्टि और अनिमेष दृष्टि** का कथन आत्म आभ्यन्तर भाव से या अ तरमन से निरीक्षण करने की अपेक्षा समझना चाहिए ।

कायोत्सर्ग तो महिनों तक भी किया जा सकता है किन्तु आँखों को अमिनेष खुली रखना अधिक समय तक सम्भव नहीं हो सकता है ।

दूसरा पक्ष– दृष्टि–चक्षु को शक्य केन्द्रित खुली रखकर इधर–उधर देखना–सोचना तो कुछ है ही नहीं स पूर्ण व्यूत्सर्जन ही करना है । फिर आँख खुली रहे उसमें कुछ तकलीफ नहीं है, ब ध करके ज्यादा समय खडे रहना कायोत्सर्ग में रहना या अप्रमत्त रहना शक्य नहीं है क्यों कि आँख ब द होने से प्रमाद आने की, निद्रा आने की शक्यता रहती है जिससे अप्रत्तभाव से स्थिर रहना मुश्किल होता है। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा आवे तो लम्बे समय में उसकी भी पूर्ण स भावना रहेगी । इससे खडे–खडे गिरने पडने की नौबत भी आ सकेगी । समाधान समन्वय– धारणानुसार गुढगम से समझना । खास ज्ञानीगम्य ।

रिसर्च क्या ध्यान है ?– रिसर्च रूप अध्ययन प्रणाली को स्वाध्याय के अनुप्रेक्षण रूप चौथे विभाग के समकक्ष ही समझना चाहिए, न कि ग्यारहवें तप के भेद रूप ध्यान में ।

पाँचवाँ आवश्यक– प्रतिक्रमण का पाँचवाँ आवश्यक काय–व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग है । उसका मौलिक स्पष्टीकरण श्वासोश्वास में ही कहा गया है अर्थात्–

देवसिक प्रतिक्रमण में–	१०० श्वासोच्छवास
रात्रिक प्रतिक्रमण में –	५० श्वासोच्छवास
पाक्षिक प्रतिक्रमण में–	३०० श्वासोच्छवास
चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में–	५०० श्वासोच्छवास
सा वत्सरिक प्रतिक्रमण में–	१००८ श्वासोच्छवास

लोगस्स का पाठ आगमों में अनेक जगह कायोत्सर्ग के बाद बोलने का स्पष्ट रूप से कहा गया है । यह स्तुति–कीर्तन का पाठ है और कीर्तन को प्रकट में बोलकर के ही उससे भक्ति प्रदर्शित की जाती है । कायोत्सर्ग में लोगस्स बोलने का आगम प्रमाण न होने से एव तर्कस गत भी न होने से श्वासोच्छवास के स्थान पर प्राथमिक स्टेज रूप में बनाई गई यह पर परा मात्र है, ऐसा समझना चाहिये । इसी कारण क्रान्तिकारी धर्मसिंह जी म.सा ने उस पर परा को परिवर्तित किया था । वह पर परा आज भी अनेक स प्रदायों में प्रचलित है वहाँ लोगस्स का कायोत्सर्ग नहीं किया जाता है और वे मौलिक श्वासोश्वास प्रणाली को भी नहीं समझते हक्त ।

सार– सारा श यह है कि समिति अलग है, गुप्ति और व्युत्सर्ग तप में भी कुछ भिन्नता है तो स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण और ध्यान का अनुप्रेक्षण भी भिन्न है और स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग तीनों अलग–अलग दसवाँ ग्यारहवाँ बारहवाँ तप है । जाप और लोगस्स आदि के रटन भी एक प्राथमिक स्टेज के लिये चलाई गई पर परा है । इन्हें उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न रखना चाहिये ।

वर्तमान के प्रेक्षाध्यान आदि क्या है– उक्त सभी पहलुओं

(स्थलों) का विचार करने पर यह निर्णय आता है कि आजकल (वर्तमान युग) के प्रचलित **प्रेक्षाध्यान निर्विकल्प ध्यान और गोय का ध्यान** आदि व्युत्सर्ग तप में समाविष्ट होते हक्त । उनमें ध्यान शब्द रूढ कर दिया गया है जो कि अशुद्ध है । उन प्राणालियों में मन का वचन का एव काया का व्युत्सर्जन ही सिखाया जाता है । स्वाभाविक चलने वाली कायप्रवृत्ति श्वासोश्वास आदि का प्रेक्षण, आत्मभाव रूप ज्ञाता दृष्टा की वृत्ति से होता है । योगों के त्याग को ही अपेक्षा से कायोत्सर्ग कहा गया है । इसीलिए इसे **योग** या हठयोग की स ज्ञा दी जाती है । यह सम्पूर्ण प्रकार का योगत्याग रूप ध्यान, व्युत्सर्ग तप है ।

जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि का या विकृत सम्यग्दृष्टि का उपवास, सामायिक, स यम आदि तप और स यम ही कहा जाता है । किन्तु सुदृष्टि नहीं होने से वह मोक्ष का हेतु नहीं होता है । मासखमण तप भी मिथ्यात्वी का तप ही कहा जाता है किन्तु वह मोक्ष हेतुक नहीं होता है । उसी प्रकार वर्तमान में प्रचलित योग व्युत्सर्ग प्रवृत्ति जिसे कि ध्यान का नाम दिया जाता है, जो कि वास्तव में अध्यान ध्यान रहित अवस्था है, उसके साथ यदि सम्यग् तत्त्वज्ञान, आगम, श्रद्धान, सम्यग् श्रावक वृत्ति या सम्यग् स यम भाव है तो ही वह उनका व्युत्सर्ग नामक बारहवाँ तप है और मोक्षहेतुक है किन्तु बाल तप नहीं है ।

यदि इन वर्तमान युग के ध्यान कर्ताओं में सम्यग् आगम श्रद्धान एव जिनवाणी की सद्दहणा प्ररूपणा, फरसना आदि शुद्ध नहीं है, श्रावक व्रतों या साधुव्रतों को यथाशक्ति पालन न करके उपेक्षा भाव रखते हक्त, स्वाध्याय ध्यान आदि व्युत्सर्ग के सिवाय तपों का अपने स्थान में महत्व नहीं मानते हक्त, एका त व्युत्सर्ग तप रूप रूढ ध्यान का आग्रह रखकर उसे ही वीतराग भाव प्राप्ति का उपाय मानते हक्त, अन्य तप आदि का महत्व नष्ट

करते है या निषेध करते हक्त, तो वे मोक्ष मार्ग की आराधना में नहीं गिने जा सकते ।

श्रावकों में कोई एक दो तीन या कोई १२ व्रत पालन करता है, कोई किसी व्रत प्रत्याख्यान को लेता है, कोई उससे भिन्न अन्य व्रत लेता है । इसी तरह की अनेक भिन्नताओं में भी वे सभी श्रावक ही कहे जा सकते हक्त ।

साधुओं में भी कोई अध्ययन में ढचि रखता है, कोई अनशन तप में वृद्धि करता है, कोई भिक्षाचरी तो कोई वैयावृत्य में आन द मानता है, कोई स्वाध्याय में, कोई ध्यान में और कोई व्युत्सर्ग कायोत्सर्ग में स्थित रहता है । तो भी सभी का अपने स्थान में महत्व है । सभी अपनी अपनी योग्य ढचि अनुसार आत्मसाधना एव तप निर्जरा में गिने जाते हक्त । इसमें किसी भी साधना को एका त वीतराग मार्ग मान कर अन्य का निषेध करना उचित नहीं है ।

वर्तमान की ध्यान प्राणाली व्युत्सर्ग तप का एक विकृत रूपक है । इसके साधक प्राय: अन्य साधनाओं का महत्व नहीं मानते हक्त तथा व्युत्सर्ग तप तो खडे रहकर शरीर का पूर्ण ममत्व एव स चार के त्याग के स कल्प से होता है किन्तु प्रचलित ध्यान यथेच्छ आसन से होता है पूर्ण शरीर के ममत्व त्याग का स कल्प भी नहीं होता है ।

कायोत्सर्ग तप शरीर निरपेक्ष होता है किन्तु वर्तमान ध्यान शरीर सापेक्ष होता है यह दोनों में अ तर है अत: ये ध्यान प्रवृत्तियाँ ध्यान नहीं है, अध्यान-ध्यान रहित अवस्था है अर्थात् व्युत्सर्ग तप का विकृत परिशेष रूप है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न- कायक्लेश, ध्यान तथा व्युत्सर्ग(कायोत्सर्ग), इन तीनों को बारह तप में पृथक-पृथक स्थान दिया है, तो इन तीनों में क्या भिन्नता है ?

उत्तर- काया को खडे बैठे या सोये किसी भी आसन से

स्थिर करने के पश्चात् एव किसी भी स यम कार्य में लगाने के बाद उत्पन्न असाता वेदना को दीनता, भय आदि से रहित होकर सहन करना, कायक्लेश है ।

निर्वात स्थान में जैसे दीपशिखा स्थिर होती है, वैसे मन को स्थिर करना तथा सूर्य की किरणें जैसे बहिर्गोल का च से केन्द्रित की जाती है वैसे ही मन को केन्द्रित करना, ध्यान है ।

मन की स्थिरता तथा केन्द्रीभूतता के अनुरूप वचन काया की एकाग्रता भी ध्यान का अ ग है ।

ध्यान बल से काया की वेदना को पराई समझना, तुच्छ समझना, शरीर से ममत्व हटाकर उसे निश्चेट करना, वैसे ही वचन और मन को भी चेष्टा रहित करना, ऐसी आत्मस्थिति का होना और आत्मस्थ हो जाने के कारण काया की वेदनाओं का आभास नहीं होना अथवा म द अनुभव होना यों तीनों योगों का शक्य अधिकतम व्युत्सर्जन करना यही **कायोत्सर्ग** है ।

प्रश्न– क्या निर्विकल्प ध्यान स भव है ?

जैनागम की दृष्टि से यह अशुद्ध वाक्य पद्धति है । निर्विकल्प होना या उसका अभ्यास करना यह व्युत्सर्ग तप है । जिसमें वचन काया के साथ मन का अर्थात् चिंतन का भी त्याग-व्युत्सर्जन किया जाता है अर्थात् निर्विकल्प होना सम्भव है । क्यों कि व्युत्सर्ग तप भी स भव ही है । किसी भी योग का अ तर पड सकता है । गाढ निद्रा में, बेहोशी में भी मन योग का अ तर पडता ही है । आत्म अध्यावसाय तो अरूपी है वे तो सदा शाश्वत रहते हक्त । किन्तु मन तो पुद्‌गल परिणामी और विरह स्वभावी है । अतः निर्विकल्प साधना का निषेध नहीं करना चाहिये ।

निर्विकल्प साधना ध्यान नहीं किन्तु ध्यान से आगे की साधना है । ध्यान ग्यारहवाँ तप है और यह निर्विकल्प साधना व्युत्सर्ग रूप बारहवाँ तप है ।

जिस प्रकार जिन मत से भिन्न तापस आदि का एक महीने का या दो महीने का स थारा भी आगम में पादपोपगमन स थारा कहा जाता है, वैसे ही जिन मत में श्रद्धा नहीं रखने वालों के उपवास आदि को तप एव व्युत्सर्ग रूप निर्विकल्प साधना को व्युत्सर्ग तप ही कहा जायेगा । किन्तु जिन वचनों में सम्यग् श्रद्धान के अभाव में वे तप मोक्ष साधन रूप अथवा आराधना रूप नहीं हो सकते क्यों कि सम्यग् दर्शन के बिना समस्त क्रियाएँ अलूणी है, पूर्ण सुफल दायक नहीं हो सकती है ।

पुनश्च– ध्यान सार–

(१) आगम तत्वों की विचारणा अनुप्रेक्षा **स्वाध्याय** है ।

(२) आत्मलक्षी एक विषय में स्थिर चित्त होना **धर्मध्यान** है ।

(३) शुक्लध्यान उसके आगे की सूक्ष्मतम ध्यान अवस्था है ।

(४) चित्त की च चलता ध्यान नहीं है । शून्य शा त चित्त भी ध्यान नहीं है। अव्यक्त चित्त भी ध्यान नहीं है, एकाग्रचित्त ध्यान है ।

(५) निर्विकल्प अवस्था व्युत्सर्ग तप की साधना है ।

(६) वर्तमान के प्रेक्षा ध्यान, निर्विकल्प ध्यान, व्युत्सर्ग तप की साधनाएँ हक्त । इन्हें भ्रम वश ध्यान कहा जाने लगा है । इन साधनाओं के कर्ता आदि यदि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान से युक्त है, व्रत प्रत्याख्यान श्रावक-व्रत, संयमव्रत में श्रद्धावान है, तो उनके व्युत्सर्गता की आराधना मोक्ष साधक होती है । सम्यग् श्रद्धान यदि जिन प्रवचन में नहीं है तो वे समस्त साधनाएँ पूर्ण फलदायी या मोक्ष फलदायी नहीं है ।

(७) व्युत्सर्ग तप बारहवाँ तप है, वह ध्यान से भी अगले दर्जे का तप है । ध्यान की अपेक्षा कठिन एव दुष्कर भी है, क्यों कि मन दुष्ट, च चल घोडे की उपमा वाला है ।

(८) मन का वचन का अल्प समय के लिये पूर्ण व्युत्सर्जन किया जाना सम्भव है, काया के स पूर्ण ममत्व का त्याग भी स भव है। काययोग का शक्य व्युत्सर्जन स भव है । सम्पूर्ण व्युत्सर्जन अयोगी अवस्था में होता हक्त ।

इस प्रकार यहाँ ध्यान स ब धी जानकारी के साथ अन्य भी सहयोगी जानकारियाँ दी गई है उसका तात्पर्य यही है कि साधक समभाव, तटस्थभाव, अनैका तिक विचारणा के साथ शुद्ध सत्य समझ को प्राप्त करे, प्ररूपण भी विवेकपूर्वक आगमानुमत ही करे तथा आचरण भी सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र से समन्वित तप-ध्यान युक्त श्रेष्ठ आराधना होवे वैसा करे ।

स क्षेप में इस ध्यान स्वरूप परिशिष्ट के अध्ययन से साधक ध्यान के स ब ध मेँ और जिनाज्ञा की आराधना में सही दृष्टि और सही समझ को प्राप्त कर मोक्षाराधना में सफलता प्राप्त करे । इसी दृष्टिकोण से यहाँ यह प्रास गिक निब ध परिशिष्ट रूप में दिया गया है । ***(भगवती सूत्र शतक-२५ उद्देशक-७ के तपवर्णन के अ तर्गत यह परिशिष्ट है ।)***

॥ ध्यान स्वरूप परिशिष्ट स पूर्ण ॥

सौजन्य दाताओं की शुभ नामावाली

(१) श्री अक्षयकुमारजी सामसुखा, मु बई
(२) श्री बी.गौतमचन्दजी का करिया
(३) श्री प्रतापमुनि ज्ञानालय, बडीसादडी
(४) श्री केवलचन्दजी जवानमलजी सामसुखा
(५) श्री मा गीलालजी जैन सामसुखा, बेलगाम सिटी
(६) श्री एल. आशकरणजी गोलेछा, राजना दगाव
(७) श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद
(८) श्री बी. मोहनलालजी अजितमलजी भुरट, बेंगलोर
(९) श्री च पालालजी ता तेड, मद्रास
(१०) श्री केवलच दजी बाबूलालजी कटारिया, प जागुटा
(११) श्री शा तिलालजी दुग्गड, नासिक
(१२) श्री एस. रोशनलालजी जैन (गोलेछा), रायपुर
(१३) मे. च पालालजी भँवरलालजी पारख, दोंडायचा
(१४) श्री मोहनलालजी डागा, पाली मारवाड
(१५) श्री चा दमलजी भ साली, बेंगलोर
(१६) श्री राजीव जैन, सुपुत्र श्री रामधारी जैन, पानीपत
(१७) श्रीमती कमलादेवी माणेकचन्द सा. चोपडा, जोधपुर
(१८) श्री ताराचन्दजी स कलेचा, मद्रास
(१९) श्री माणेकचन्दजी जैन, मद्रास
(२०) श्री एल.महावीरचन्दजी जैन रा का, गुडियातम
(२१) श्री पुखराजजी गोलेच्छा, रायपुर
(२२) श्रीमती निर्मलाबेन नीलमचन्दजी ओस्तवाल, मद्रास

(२३) श्रीमती आशालता बाफणा, धूलिया

(२४) श्री पारसमलजी किशोरकुमारजी सोल की, कोयम्बतूर

(२५) श्री हनव तराजजी डोसी(सा चोर वाले)दिल्ली

(२६) श्री धर्मीचन्दजी माढ, दिल्ली

(२७) श्री जी. सुरेशकुमारजी नाहर, अ कलेश्वर

(२८) श्री दुलीचन्दजी जैन, मद्रास

(२९) श्री च पालालजी कँवरलालजी गोलेच्छा, भिलाई(खीचन निवासी)

(३०) स्व. श्रीमती शकुनबाई अमृतलालजी गोलेच्छा, भिलाई(खीचन निवासी)

अग्रिम ग्राहक (नये)

(१) श्री जेठमलजी बोहरा, राजना दगाँव

(२) श्री लूणकरण जी स तोषकुमार जी बाफणा, राजना दगाँव

(३) एस. देवराज चेतन बाफणा, मद्रास

(४) श्री सौभाग्य सन्निधि (कु. शशीका ता कौशल), इन्दौर

(५) श्री तढण कोचर (मोना), रायपुर

साहित्य सूचि (अग्रिम ग्राहक)

(१)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर हिन्दी स पूर्ण सेट	६००/–
(२)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर गुजराती स पूर्ण सेट	६००/–
(३)	सुत्तागमे गुजराती लिपि स पूर्ण सेट	५००/–
(४)	जैनागम नवनीत गुजराती सारा श (स पूर्ण सेट)	४००/–
(५)	जैनागम नवनीत हिन्दी सारा श	४००/–